हिमालय-दर्शन

(अनेक छायाचित्रों सहित)

बदरी-केदार, गंगोत्री-यमनोत्री और कैलास-मान-सरोवर-यात्रा का प्रामाणिक यात्रा-वृत्तान्त, काश्मीर से नेफा तक के यात्रा विवरण सहित

लेखक

कृष्ण नारायण गोसावी

प्राक्कथन

श्री श्रीप्रकाश

भूतपूर्व राज्यपाल, महाराष्ट्र

आध्यात्मिक पृष्ठभूमि

श्री रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर

भूतपूर्व राज्यपाल, बिहार



प्राक्कथन

हमारे देश में यात्रा करने की प्रथा बहुत पुरानी है। देश के चारों कोनों में हमारे बड़े-बड़े मन्दिर हैं। सभी जगह से स्त्री-पुरुष लम्बी-लम्बी यात्रा करके, और नाना प्रकार के कष्ट उठाकर, कितनी ही शताब्दियों से यहां दर्शनार्थ आते रहे। इनके अतिरिक्त जगह-जगह पर बड़े-बड़े तीर्थ-स्थान हैं, जहां स्नान और दर्शन करने लोग बराबर जाते रहे। चारों धाम अर्थात् उत्तर में बदरी-केदार, दक्षिण में रामेश्वर, पूर्व में जगन्नाथपुरी और पश्चिम में द्वारका और सातों-पुरी अर्थात् अयोध्या, मथुरा, माया (हरद्वार), काशी, कांची, अवन्तिका (उज्जैन) तथा द्वारका सदा से ही प्रसिद्ध रही हैं और देशवासियों को आकर्षित करती हुई, उन्हें अपनी तरफ निमन्त्रित करती रहीं। इनकी प्रसिद्धि चारों तरफ सदा से रही है।

दूर-दूर के ग्रामों में रहनेवाले थोड़ा-थोड़ा पैसा अपनी गाढ़ी कमाई से बचा-बचाकर तीर्थ-यात्रा के निमित्त बाहर निकलते हैं और ऐसे समय भी जब बहुत कम सुविधाएं थीं, ये लोग इन पुनीत स्थानों पर जाते थे और कितने ही वापस घर नहीं आ पाते थे। रास्ते में ही कहीं उनकी मृत्यु हो जाती थी। वे इसके लिए तैयार होकर जाते थे। सड़क, रेल, मोटर आदि की अब बहुत-सी सुविधाएं हो जाने के कारण पहले से कहीं अधिक

यद्यपि वाह्य रूप से हमारे धार्मिक और आध्यात्मिक विचार एक-से समझे जायँ और उन्हें प्रदर्शित करने का प्रकार भी एक ही हो; पर हमारी समाज-व्यवस्था कुछ ऐसी रही है कि हमसब छोटी-छोटी जातियों, उप-जातियों और संकुचित समुदायों में विभक्त हो गये हैं। इस कारण यद्यपि हम सारे देश का पर्यटन कर आते हैं, मन्दिरों के दर्शन और नदियों में स्नान कर लेते हैं; पर वास्तव में हम न कुछ देखते हैं न समझते हैं और न नई-नई वातों को जानने की इच्छा ही रखते हैं। भोजन के सम्बन्ध में छूने न-छूने की प्रथा के कारण हम अपना ही भोजन स्वयं पकाकर खाते हैं, और उन्हीं पदार्थों का ही भोजन करते हैं जिनका सदा से करते आये हैं। इस कारण हम यह भी नहीं जानना चाहते कि अन्य प्रदेशों के लोगों का क्या भोजन है। वास्तव में हम अपने ही पड़ोस में रहनेवाले दूसरी जाति के लोगों के भोजन से अपरिचित रहते हैं। भोजन के सम्बन्ध में उदासीन होने के कारण सब बातों में हम उदासीन हो जाते हैं, और दूर-दूर भ्रमण करने के वाद भी यदि हमसे कोई वहाँ का हाल पूछे, तो हम वता नहीं पाते क्योंकि आँख खोलकर और चित्त लगाकर हम कुछ देखते ही नहीं।

अवश्य ही यह स्थिति शोचनीय है। हमारे लिये उचित होगा कि इसके प्रतिकार का हम प्रयत्न करें। हमारे देश के प्राकृतिक दृश्य ही वड़े सुन्दर हैं। यदि हम उन्हें समझने का प्रयत्न करें, तो हमें वे मुग्ध कर सकते हैं। पर हम तो ऐसे दृश्यों को स्वयं ही खराब कर रहे हैं। वृक्षों को काटकर, जन्तुओं को मारकर, जंगलों में आग लगाकर, इधर-उधर गन्दगी फैलाकर, हम देश के रूप को ही विगाड़ रहे हैं। फिर हमारे पूर्वजन जो सुन्दर कलाओं को छोड़ गये हैं उनका भी हमारे मन में कोई आदर नहीं रह गया है। मन्दिरों में हम जाते हैं, पर वहाँ की कारीगरी को हम नहीं देखते। सुन्दर-से-सुन्दर पत्थर के भवनों के बीच टीन के सायबान लटकाकर उन्हें भद्दा कर देते हैं। रमणीक स्थानों को गंदा करने में हमें कुछ भी संकोच नहीं होता। स्थिति में सुधार का एकमात्र उपाय यह है कि हम देश के जीवन के विविध अंगों पर अच्छा साहित्य तैयार करें और देश-वासियों को प्रेरित करें कि वे उसे पढ़ें और उससे लाभ उठावें, अपने देश को जानें और समझें, अपनी परम्पराओं का सम्मान करें और सव देशवासियों के भाव से सहानुभूति रखकर देश के एकीकरण में सहायक हों।

ऐसा विचार रखते हुए मैं श्री कृष्णनारायण गोसावी की लिखित 'हिमालय-

दर्शन' नाम की पुस्तक का स्वागत करता हूँ। हिमालय अनन्तकाल से ही हमारे देश की उत्तर सीमा का बोधक और रक्षक रहा है। इसकी छत्रछाया में हम सदा से ही बिना किसी भय के रहते आये हैं। हमारे पुराण और इतिहास में इसकी महिमा गाई गई है। इसके कितने ही स्थानों को तीर्थ मानकर पवित्रता प्रदान की गई है। यहाँ कितने ही स्वास्थ्यकर प्रदेशों में नगरियाँ बसाई गई हैं। सारे देश को यह सदा से आकर्षित करता रहा है। इसमें कितने ही प्रकार के नर-नारी रहते हैं। यहाँ से कितनी ही नदियाँ निकलती हैं। यहाँ कितने ही रत्न और औषधियाँ मौजूद हैं। इसकी जितनी ही प्रशंसा की जाय, कम है।

श्री कृष्ण नारायण गोसाईं ने हिमालय-पर्वत का विस्तृत रूप से भ्रमण कर, उसके भिन्न-भिन्न स्थानों का वर्णन अपनी पुस्तक में किया है और पुरानी रोचक गाथाएँ भी सुनाई हैं। मैं उन्हें बधाई देता हूँ कि उन्हें समुचित रूप से हिमालय-ऐसे पर्वत का परिचय प्राप्त करने का सुअवसर मिला। मैं उनकी प्रशंसा करता हूँ कि उन्होंने अपने अनुभवों को लिपिबद्धकर अपने देशवासियों के हित के लिए इस पुस्तक की रचना की। मुझे आशा है कि इसका पर्याप्त प्रचार होगा और बहुत-से लोग इससे प्रेरित होकर अवश्य ही हिमालय के, केवल उन्हीं स्थानों पर जिन्हें तीर्थस्थान माना गया है, नहीं जावेंगे, पर ऐसे और भागों को देखने के लिए भी सहर्ष उद्यत होंगे जहाँ साधारण तौर से किन्हीं देव-देवियों का निर्देश न होने के कारण अब तक यात्रीगण नहीं जाते थे।

इस पुस्तक का प्राक्कथन लिखने के लिए मुझे निमन्त्रित कर लेखक ने जो मेरा सम्मान किया है, उसके लिए मैं अनुगृहीत हूँ। मेरी शुभकामना है कि जिस

सम्पादक के दो शब्द

'हिमालय-दर्शन' के प्रकाशन की एक कहानी है। जब यह पुस्तक श्री रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर (भू० पू० गवर्नर, बिहार) ने कन्नड़ में प्रकाशित की तो इसको पर्याप्त प्रशंसा प्राप्त हुई। मुझे उसके प्रति उत्सुकता जगी तो कन्नड़ न जानते हुए भी उसको देखने का अवसर मिल गया। दिवाकरजी ने बतलाया कि उसका हिंदी-अनुवाद भी हो रहा है और उसके लिए कोई उपयुक्त प्रकाशक चाहिए। मैंने एक-दो जगह उसकी चर्चा भी की; पर आजकल के प्रकाशक हल्का-साहित्य प्रकाशित करने के लिए अधिक उत्कण्ठा दिखाते हैं। ऐसा साहित्य जो युवक-युवतियों के हृदयों को गुदगुदाये, उनकी चोंचलेबाज़ी का प्रदर्शन करे और वयस्कों का मन बहलाये। फलतः मुझे कुछ समय इसके लिए प्रतीक्षा ही करनी पड़ी।

इसी बीच इस ग्रन्थ के लेखक—श्री कृष्णनारायण गोस्वामी से मेरी भेंट हुई तो मुझे ऐसा लगा कि यह व्यक्ति तो मानो गंगा और हिमालय के सामंजस्य का साक्षात् स्वरूप है—शान्त, सौम्य होते हुए भी प्रचण्ड—गंगा की तीव्र-धारा और उत्तुंग हिमालय की चोटियों के समान प्रखर। उसके व्यक्तित्व में उनकी सारी रचना झलक उठी और बाद में उनकी रचना में उनका व्यक्तित्व प्रभासित हुआ। मैंने 'हिमालय-दर्शन' का अनुवाद देखा। वह पाण्डुलिपि मेरे पास महीनों रही। मैंने उसके अनुवाद की भाषा की विविधता को एकरूपता में ढालने का प्रयत्न

भू० पू० राज्यपाल) से भूमिका लिखाई जाय। इसके लिए मैं लेखक को साथ ले देहरादून पहुँचा और बाबूजी (श्रीप्रकाशजी) से मिलकर इस पुस्तक की रूपरेखा बताई तथा गोसावीजी ने अपने कुछ यात्रा के अनुभव आदि सुनाये। श्रीप्रकाशजी हिमालय की यात्रा आंशिक रूप में स्वयं भी कर चुके हैं इसलिए उनकी जिज्ञासा बढ़ी और उन्होंने गोसावीजी से प्रश्न करके उनकी यात्रा के गहरे अनुभव का अवगाहन कर लिया। वे भूमिका लिखने के लिए तैयार हो गये और उन्होंने इसके लिए तिथि भी निश्चित कर दी।

भूमिका लिखी जाने के पश्चात् इस ग्रन्थ के प्रकाशन के प्रति अनेक प्रकाशकों में अभिलाषा उत्पन्न हो गई। दो-तीन जगह चर्चा चलाने के पश्चात् दिशि-देवतात्मा नगाधिराज की कहानी आत्माराम एण्ड संस के मालिक श्री रामलाल पुरी ने प्रकाशित करने का निश्चय प्रकट किया।

इस पुस्तक में एक ओर जहाँ यात्रियों-सैलानियों आदि के लिए मार्ग-दर्शन का विवरण दिया गया है और पैदल से लेकर मोटर-मार्ग तक का विस्तृत वर्णन देकर इसे उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है, वहाँ स्थल-स्थल पर गिरि-कन्दराओं के निवासी योगी-महात्माओं के सम्पर्क का बोधक, स्फूर्तिजनक और आत्मतुष्टिकर अनुभव का संस्पर्श भी कराया गया है। पुस्तक को केवल गाइड या पथ-प्रदर्शक न बनाकर हिमालय की गुहाओं में निहित तत्त्वों की ओर पाठक को आकर्षित करने का सहज स्वाभाविक वर्णन इस प्रकार किया गया है जिसकी ओर हर भारतीय पाठक का ध्यान अनायास आकर्षित होगा। वास्तव में इस छोटे-से ग्रन्थ में गागर में सागर भरने का प्रयत्न किया गया है।

हिमालय आज देश में व्यापक चर्चा का विषय बन गया है। अभी तक वह हमारा प्रहरी—सन्तरी माना जाता रहा है और उसकी पवित्रता, आध्यात्मिकता एवं सौन्दर्य हमें आकर्षित करते रहे हैं। आज वह इससे अधिक बन गया है—राजनीतिज्ञों की दृष्टि भी उसकी ओर लग गई है—इसलिए इस पुस्तक में हिमालय के सभी खण्डों के मानचित्र और फोटो भी दे दिये गये हैं।

हिमालय पर हिन्दी में ही नहीं, भारतभर की अन्य भाषाओं और विश्वभाषा अंग्रेजी तक में अनेक पुस्तक-पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुई हैं, पर वे सभी एकांगी हैं—सम्पूर्ण हिमालय के सभी यात्रा-स्थलों और प्रवास-स्थानों का वर्णन उनमें नहीं है—हाँ, एक-एक खण्ड का सचित्र वर्णन टूरिस्ट-गाइड के रूप में अंग्रेज़ी में

अवश्य छपा है जो सरकारी टूरिस्ट ब्यूरो से प्राप्त हो सकता है; किन्तु इन पुस्तिकाओं में वर्णित स्थानों के सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक महत्त्व का दिग्दर्शन नहीं कराया गया है, क्योंकि उनका वह उद्देश्य नहीं है—वे तो सामान्यतः यात्रियों-प्रवासियों के लिए पथ-प्रदर्शक का काम देती है। इसके अतिरिक्त वे नये फैशन के सैर-सपाटा पसन्द करनेवालों के लिए ही लिखी गई हैं। जिन यात्रियों की विचार-धारा आध्यात्मिकता, योग-शक्ति एवं सांस्कृतिक महत्ता की कायल है उन्हें उपरोक्त पुस्तिकाओं से कुछ नहीं मिल सकता। 'हिमालय-दर्शन' उनसे भिन्न है। इस ग्रन्थ में गरीब और सर्वसामान्य श्रद्धावान यात्रियों की सुविधा की दृष्टि से यात्रा और उनकी सुख-सुविधाओं का वर्णन यथास्थान किया गया है जिससे अधिकाधिक लोग उससे लाभ उठा सकें।

इस पुस्तक की तैयारी में जिन-जिन महानुभावों का सहयोग प्राप्त हुआ है वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं। वास्तव में यह कृति है तो श्री गोसावीजी के ३५ वर्षों के निरन्तर हिमालय-भ्रमण, त्याग-तपस्या और आध्यात्मिक दृष्टि का फल; पर भगवान् कृष्ण ने जब गिरिराज को अपनी उँगली पर उठा लिया था तो सभी ग्वाल-बाल भी लाठी-डण्डों और लकड़ियों का सहारा लगाकर उस श्रेय के भागी बन गये—इसी प्रकार गोसावीजी की तपस्या के फल में थोड़े-बहुत सहारा लगाने-वाले भी प्रसाद के भागी बन गये और गोसावीजी के नाम के साथ उनका नाम भी 'हिमालय-दर्शन' के साथ जुड़ गया। ऐसे सहायकों में पी० आई० बी० के श्री काशीनाथ, टूरिस्ट ब्यूरो की कु० पांडे तथा श्री कड़प्पा धन्यवाद के पात्र हैं।

आशा ही नहीं, विश्वास है कि हिन्दी-जगत् इस अभिनव एवं परिपूर्ण 'हिमा-

नम्र निवेदन

'हिमालय-दर्शन' का एक चित्र मेरे वचपन में ही मेरे पिताजी ने ध्यान करने के लिए योग्य स्थान का जिक्र करते समय दर्शाया था। उन्नत पहाड़ों से घिरा हुआ, नदी-किनारे पर निसर्गदत्त फल-फूलों से सुसज्जित अरण्य के मध्य, सुन्दर पशु-पक्षियों के वीच में जलप्रपात से थोड़ी दूर गुफा या देवालय में ध्यान लगाने से शीघ्र समाधि-सुख प्राप्त होता है। इसी चित्र को मैंने सामने रखकर योगाभ्यास के उद्देश्य से सारे हिमालय में ३५ साल तक १५,००० मील यात्रा करके, कई योग्य स्थानों में जप, तप, ध्यान, एकांत-सेवन में समय विताया। लेकिन जनसाधारण को इससे विशेष लाभ क्या? 'हिमालय-दर्शन' में वहुत ही गूढ़ार्थ भरा हुआ है। कई लोग दर्शन का अर्थ दर्शनशास्त्र मानते हैं तो कई प्रवासप्रिय लोग आँखों को आनन्द देने-लायक रमणीय दृश्यों को ही याद करते हैं। कई साधक इसे योगभूमि मानते हैं, तो कई ऐशो-आराम के लिए इसी को भोगभूमि वना लेते हैं। इसलिए मुझे खास-खास विचार सामने रखकर आनन्द-लाभ कराने के लिए यह 'हिमालय-दर्शन' लिखना पड़ा।

हिमालय-यात्रा का नाम सुनते ही पहले कई लोग घवरा जाते थे, लेकिन वह वात अव नहीं रही। फिर भी कई रमणीय यात्रा स्थानों में आसानी से अभी भी नहीं पहुँच सकते। काश्मीर, शिमला, मसूरी, मनाली, नैनीताल, दार्जिलिंग आदि स्वास्थ्यकर स्थानों के लिए वहुत-सी सुविधाएँ (रेल-मोटर-विमान) प्राप्त हैं। लेकिन श्री वदरी-केदार, गंगोत्री-यमनोत्री, कैलास, अमरनाथ, परशुराम कुण्ड-जैसे यात्रास्थानों को अभी आसानी से नहीं पहुँच सकते। मोटर-मार्ग की काफ़ी दूर तक व्यवस्था हो गई है, परन्तु मसूरी या अन्य स्वास्थ्यवर्धक स्थानों के जैसे टार्ड रोड नहीं वन पाये हैं। फिर भी यात्रियों को कई प्रकार के कष्ट उठाकर जान वचाना भी कभी-कभी मुश्किल हो जाता है। इससे पुरानी पैदल-यात्रा ही सुरक्षित है। मैं दोनों अवस्थाओं में यात्रा कर चुका हूँ। ज़्यादातर पैदल-यात्रा करने से ही मुझे खूब आनन्द मिला और अव भी घूमते जाने में ही आनन्द मानता हूँ।

लेकिन आजकल खाने-पीने की चीज़ें पहले से ८-१० गुनी महँगी हो जाने के

कारण गरीब लोगों को भी मोटर में जल्दी जाकर एक बार यात्रा खतम करके घर लौटने में आनन्द मानना पड़ता है। इसलिए मोटर, जहाँ तक मिलती है उन सब रास्तों का मान-चित्र के साथ यात्रा-वर्णन दिया गया है।

हिमालय में अनेक प्रकार की सामग्री भरी पड़ी है। संशोधकों के लिए खनिज सम्पत्ति ही मुख्य विषय हो, तो वनस्पति और प्राणिशास्त्र के लिए मुख्य विषय यही होता है। भोगियों के लिए पिकनिक के स्थान ही मुख्य हों तो योगी-तपस्वियों के लिए आश्रम-गुफा या एकान्त स्थान ही मुख्य हो जाता है। इसलिए सबको सन्तुष्ट करना कठिन काम है। कई लोग वहाँ के इतिहास-भूगोल को ही महत्त्व देते हैं तो कई लोक-गीत-नृत्य, कला-कौशल आदि को ही प्रधान मानते हैं। हरेक विषय पर हजारों पन्ने लिखने-योग्य सामग्री भी नगाधिराज के राज्य में भरी पड़ी है। ये सब विषय एक ही ग्रन्थ में लाना सारे हिमालय को एक ही फोटो में खींच लेने के समान विफल प्रयत्न होगा। इसके लिए सर्वश्री राहुलजी, काका कालेलकर, स्वामी सत्यदेव, आनन्द ब्रह्मचारी और अन्य कई लेखकों के ग्रन्थ देख सकते हैं।

इस पुस्तक में साधारण मध्यम वर्ग की जनता के लिए आसानी से मोटर-बस, घोड़े, डाँडी आदि वाहनों के सहारे यात्रा करने-लायक सब स्थानों का संक्षिप्त वर्णन और ठहरने-लायक धर्मशाला-चट्टी, होटल का परिचय दिया गया है। हरेक आदमी अपनी दृष्टि और बुद्धि से हिमालय का वास्तविक सौन्दर्य लूटे; केवल कवि या लेखक की कल्पना से नहीं, इसलिए नियत-स्थान तक सरल साधन (मोटर आदि) से पहुँचना ही आसान है। भारत के सिरो   हि मालय की रक्षा

नम्र निवेदन

'हिमालय-दर्शन' का एक चित्र मेरे वचपन में ही मेरे पिता
के लिए योग्य स्थान का जिक्र करते समय दर्शाया था। उन्न
हुआ, नदी-किनारे पर निसर्गदत्त फल-फूलों से सुसज्जित अर
पशु-पक्षियों के वीच में जलप्रपात से थोड़ी दूर गुफा या देवालय
शीघ्र समाधि-सुख प्राप्त होता है। इसी चित्र को मैंने सामने र
के उद्देश्य से सारे हिमालय में ३५ साल तक १५,००० मील यात्र
स्थानों में जप, तप, ध्यान, एकांत-सेवन में समय विताया। ले
को इससे विशेप लाभ क्या? 'हिमालय-दर्शन' में वहुत ही गूढ़
कई लोग दर्शन का अर्थ दर्शनशास्त्र मानते हैं तो कई प्रवासप्रिय
आनन्द देने-लायक रमणीय दृश्यों को ही याद करते हैं। कई सा
मानते हैं, तो कई ऐशो-आराम के लिए इसी को भोगभूमि वना
मुझे खास-खास विचार सामने रखकर आनन्द-लाभ कराने के लि
दर्शन' लिखना पड़ा।

हिमालय-यात्रा का नाम सुनते ही पहले कई लोग घवरा ज
वात अव नहीं रही। फिर भी कई रमणीय यात्रा स्थानों में आसानी
पहुँच सकते। काश्मीर, शिमला, मसूरी, मनाली, नैनीताल,
स्वास्थ्यकर स्थानों के लिए वहुत-सी सुविधाएँ (रेल-मोटर-वि
लेकिन श्री वदरी-केदार, गंगोत्री-यमनोत्री, कैलास, अमरनाथ,
जैसे यात्रास्थानों को अभी आसानी से नहीं पहुँच सकते। मोट
दूर तक व्यवस्था हो गई है, परन्तु मसूरी या अन्य स्वास्थ्यवर्धक
टार्ड रोड नहीं वन पाये हैं। फिर भी यात्रियों को कई प्रकार के क
वचाना भी कभी-कभी मुश्किल हो जाता है। इससे पुरानी पैदल-य
है। मैं दोनों अवस्थाओं में यात्रा कर चुका हूँ। ज़्यादातर पैदल-या
मुझे खूव आनन्द मिला और अव भी घूमते जाने में ही आनन्द मान

लेकिन आजकल खाने-पीने की चीजें पहले से ८-१० गुनी महँग

विषय-सूची

मर्ग, पहलगाँव, श्रीनगर (काश्मीर); डलहौजी, शिमला, सोलन, कसौली, चिनी, कुल्लू, मनाली (पंजाब-हिमाचल); चकरौता, मसूरी, नैनीताल, रानीखेत, अलमोड़ा, कौसानी (उत्तर प्रदेश); काठमांडू, पोखरघाटी (नेपाल)। दार्जिलिंग, कुर्सियांग, कालिपोंग (पश्चिमी बंगाल), गंगटोक (सिक्किम) और पुनाखा (भूटान) आदि हैं। इन स्थानों में ठहरने का प्रबन्ध और देखने-योग्य स्थानों का भी वर्णन दिया गया है। इन सब स्थानों को स्वयं देखने और दूसरे ग्रन्थों से भी एकत्रित करके लिखने में मुझे ३५ साल यात्रा करनी पड़ी है। इसमें कोई स्थान रह गया हो तो पाठक या प्रवासप्रिय लोग सूचित करें जिससे अगले संस्करण में उसका समावेश कर दिया जाय। प्रत्येक व्यक्ति (पूरा पढ़कर) यात्रा करके खुद आनन्द प्राप्त करे तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

—कृष्ण नारायण गोसावी

विषय-सूची

आध्यात्मिक पृष्ठभूमि

रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर
भूतपूर्व राज्यपाल, बिहार

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्॥
(गी० १०/४१)

प्रकृति में परमात्मा की पूर्णता का और परमात्मा में प्रकृति की परिपूर्णता का अनुभव करना भारतीय संस्कृति का वैशिष्ट्य है। जैसे छोटे-से विशुद्ध शान्त जलाशय में नीलाकाश प्रतिबिम्बित होता है वैसे प्रकृति की रम्य, अद्भुत, अनन्त वस्तुओं में परमात्मा अपने तेज का अंश प्रकट करता है, तो इसमें आश्चर्य नहीं। इसीलिए भगवान् कृष्ण ने गीता के दसवें अध्याय में 'स्थावराणां हिमालयः'-दर्शन की घोषणा की है। हिमालय का अनन्त वैभव, रहस्यमय अगम्यता तथा उसकी रुद्रभव्यता, आदि का रहस्य, हिमाचल का दैवी अन्तःस्वरूप, ये सब इस एक ही मंत्र में पूर्ण प्रकाशित हुआ है। प्रकृति का यह आन्तरिक दैवी रूप—भारतीय जन-जीवन में प्रकृति-पूजा—भय या अज्ञानवश नहीं आया। पर

प्रज्ञान-मात्र है। इसीलिए भगवान् कृष्ण ने यह भी कहा है—'कालोऽस्मि लोक-क्षयकृत्प्रवृद्धो'।

यह भारतीय संस्कृति का निर्भयतम दर्शन है। यहाँ न भय का नाम है, न मूढ़ता का, क्योंकि सबके हृदय में बसा हुआ वह कहता है—

'बुद्धियोगं ददाम्यहम्'

मैं बुद्धि-योग देता हूँ' अर्थात् बुद्धि के द्वारा परमात्मा से जुड़ने की कुशलता ही सदैव, सर्वत्र ब्रह्मदर्शन तथा ब्रह्मपूजन की प्रेरणा देती है। यही सर्वत्र ब्रह्मदर्शन का प्रेरणा-स्रोत कहलाता है।

इसकी तह में गहरा दर्शन है। कारण है वेद, उपनिषद्, पुराण-काल से अब तक वह एक महान् तपोभूमि है, पुण्यभूमि है, इसलिए पवित्र है, पावन है। वह तपोमय, पुण्यमय, परमात्मा की अनन्त, अगाध शांति और अनुपम आनन्द का स्थान बना हुआ है।

भारतीय हृदय को हिमालय के दर्शन से जो परमानन्द होता है उसका पूर्ण चित्रण करना असम्भव है। स्थान-स्थान पर, काल-काल में, उस अनन्त, अद्भुत, अगाध, रुद्रभीकर तत्त्व का दर्शन करना भारतीय संस्कृति का अन्तिम उद्देश्य है और हिमालय उस अनिर्वचनीय सत्य का अनिर्वचनीय प्रतीक है। इसका भी पूर्ण वर्णन वैसे ही असम्भव है, जैसे परब्रह्म का पूर्ण वर्णन असम्भव है। स्वामी रामतीर्थ ने जब हिमालय-दर्शन किया तो वह उनको निद्रस्थ परमात्मा-सा प्रतीत हुआ। स्वामी रामतीर्थ ने इसे एक ही वाक्य में काव्य-वाणी में ध्वनित किया, क्योंकि भारतीय दर्शन के अनुसार जड़ में चैतन्य सुप्त रहता है, चैतन्य में मन, मन में विज्ञान, और उस विज्ञान में सत्य, ज्ञान, शक्ति-सौन्दर्य, सज्जनता और आनन्दादि के महातत्त्व-रूप परब्रह्म वास करता है। इसीलिए भारतीय हृदय प्रकृति में परमात्मा की पूर्णता का अनुभव करना चाहता है। यह उसका महान् उद्देश्य है। भारतीय जीवन का यह रहस्य है। भारतीय संस्कृति के इतिहास ने भारतीयों द्वारा भिन्न-भिन्न काल में अलग-अलग तरीके से उसे पहचाना है।

जिसे जड़ कहते हैं उसीको उपनिषद् में अन्नकोष कहा है। ईशावास्योपनिषद् कहता है, "वैसे समग्र विश्व में ईश का आवास होने पर भी सबको उसके तेजोंऽश का अनुभव नहीं होता।" किन्तु सामान्यावस्था में ध्यानावस्था का यह अनुभव सबको नहीं आता। श्री विद्यारण्य ने कहा है—"आनन्द परमात्मा की

शक्ति है। आनन्द में अनन्त का अनुभव आता है। आनन्द को कन्नड़ भाषा में 'हिग्गु' कहते हैं। 'हिग्गु' का दूसरा अर्थ है विस्तृत और प्रसारित होना। संस्कृत में इसको 'यो वै भूमा तत् सुखं' कहा है। 'अल्पे न सुखं' बृहत् में ही सुख है, अल्प होने से, संकुचित होने से, सिकुड़ने से मरण है। हिमालय में इस बृहत् का प्रत्यक्ष-दर्शन होता है। इसीलिए उसके दर्शन से सबको ब्रह्म होने की प्रेरणा मिलती है। उस प्रेरणा का ब्रह्मानन्द अनन्तानुभव की पृष्ठभूमि ही हिमालय-दर्शन है। हिमालय के दर्शन से देखने वाले को परमात्मा की आनन्द-शक्ति का अनुभव होता है।

हिमालय-दर्शन के इस ब्रह्मानन्द का, उसकी प्रेरणा के महत्त्व का, उसके अनन्तानुभव का वर्णन वेदकालीन मुनियों से लेकर आधुनिक योगिराज श्री अरविन्द तक ने किया है। अनेक द्रष्टाओं ने उस अनन्त का वर्णन किया है। इसके अलावा पुराण और इतिहास के अनेक महापुरुषों के जीवन हिमालय से प्रेरित हुए हैं। यह सब तो निरालम्ब परमात्मा की दिव्य लीला-सी लगती है। इन सारी बातों से उसकी दैवी शक्ति का दर्शन होता है।

वेद का हिरण्यगर्भ ऋषि एक मंत्र द्वारा कहता है—

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(ऋ० [illegible] १२१ [illegible])

ऋग्वेद के ऋषियों ने समुद्र को आत्मा बनाकर [illegible] विराजित सत्ता) देनेवाले परब्रह्म को हिमालय के रूप में देखा। [illegible] सागरों को

सभी देवताओं के परे का परब्रह्म है।

इस प्रसङ्ग की पृष्ठभूमि स्पष्ट करती है कि हिमालय भारतीय दर्शन के लिए किस प्रकार आध्यात्मिक पृष्ठभूमि बनकर खड़ा है। वेद-उपनिषद् की भी पृष्ठ-भूमि बना हुआ यह हिमालय आज भी भारत को आध्यात्मिक आनन्द देता है और पुराणकाल में भी अनेक कथाओं का प्रेरणा-स्रोत रहा है। वेदों का संहितीकरण करनेवाले, महाभारत के प्रणेता श्री कृष्णद्वैपायन की यह तपोभूमि है, अर्थात् यहाँ बदरीक्षेत्र में ही वेदों का सम्पादन हुआ था, महाभारत ग्रंथ लिखा गया था और प्राचीन भारत के ज्ञान का संग्रह करके पुराणादि ग्रन्थों का निर्माण यहीं हुआ था। यह भावना ही भारतीयों को हिमालय-जैसा अद्भुत आनन्द देनेवाली है। वेद-उपनिषद्-काल से लेकर, अनन्त ज्ञान का संग्रह करके उसको सूत्रबद्ध करने-वाला व्यास एक थे या दो अथवा सत्ताईस, यह प्रश्न अत्यन्त गौण है। सदियों तक ज्ञान-साधना तथा साहित्य-सेवा की प्रेरणा देने वाला यह व्यक्तित्व हिमालय-जैसा ही भव्य कहा जायगा। हिमालय जैसे भव्य पीठ पर बैठकर ही ऐसा दिव्य व्यक्तित्व खिल सकता था। व्यास के दिव्य व्यक्तित्व में हिमालय-जैसा भव्य पीठ भारतीय प्रतिभा का अद्भुत नमूना है।

श्री व्यास के अठारहों पुराणों में आनेवाले नर-नारायण, गौरीशंकर ने भी हिमालय को अपना आधार अथवा पादपीठ बनाया है। नर-नारायण और गौरी-शंकर दोनों तपस्वी थे और गौरी के तप का क्या कहना! शंकर के लिए उन्होंने जो घोर तप किया उसके परिणामस्वरूप शंकर को कैलाश छोड़कर नीचे उतरना पड़ा और इसी प्रसंग में गौरी 'कुमारसम्भव' की रचना का कारण बनी। समस्त विजय का मूल यह तपस्या है जिसके द्वारा नर-नारायण और गौरी-शंकर ने भारतीय जनों को यह पाठ दिया। यह तपस्या केवल कष्ट-निवारण के लिए नहीं थी, वरदान के लिए भी नहीं थी; यह नव-जीवन के निर्माण के लिए थी। हिमालय तप की कहानियों का संग्रह है। इन कहानियों को अमर बनाने के लिए मानो स्थान-स्थान पर तीर्थ-क्षेत्र बने हैं। इसमें से वसिष्ठाश्रम भी एक स्थान है। यह बद्री-केदार के मध्य में स्थित है। यहीं विश्वामित्र के क्षात्रतेज को वसिष्ठ के ब्रह्मतेज के सम्मुख झुकना पड़ा था। यहीं सभी प्रकार के संहारकारी साधनों से सम्पन्न विश्वामित्र को साधनहीन वसिष्ठ के सम्मुख हीन-तेज बनकर "धिक् बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलं" कहते हुए ब्रह्म-तेज की साधना में रत रहने

की प्रेरणा मिली थी। इसी स्थान में शकुंतला को आश्रय मिला था जो विश्वामित्र के तप के पुण्य-रूप अवतरित हुई और उसने भरत को जन्म दिया था। यहीं स्थित मरीचाश्रम में भरत का पालन-पोषण हुआ और उसने भारतवर्ष की नींव डाली। एक तरह से यह भारत का प्रेरणा-स्रोत है।

भगवान् बुद्ध—वर्तमान विश्व में करुणा का सन्देश देनेवाले भगवान् बुद्ध का जन्म हिमालय में हुआ था। नेपाल के अन्दर जो लुम्बिनी-उपवन है, वह हिमालय के चरणों में है, जहाँ भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ था। इसी उपवन में उनको बाल्यावस्था में सर्वाधिक आनन्द का अनुभव हुआ था। यही आनन्दानुभव उनके भावी साधनों की नींव थी। आगे वैराग्योदय के बाद सात वर्ष के तप में उनको उस आनन्द का अनुभव नहीं हुआ। कहते हैं उन्होंने एक बार अपने गुरु अलार्कलाम से पूछा, "क्या मुझे आँवले के पेड़ की छाया में जो आनन्दानुभव हुआ था, वह पुनः होगा?"

श्री मत्स्येन्द्रनाथ—भारतीय योगविद्या में हठयोग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हठयोग के कई अनुभव तथा प्रक्रियाएँ आज वैज्ञानिक कसौटी पर आश्चर्यजनक सिद्ध होती हैं। भगवान् शंकर को ही हठयोग का आदि-आचार्य माना जाता है। हठयोग की विवेचना करनेवाली पोथियों में लिखा है कि जब भगवान् शंकर पार्वती को योग-विद्या की बात बता रहे थे तब उनकी समाधि लगी। भगवान् विष्णु ने सोचा, कहीं शंकर बताना ही बन्द न कर दें अतः मछली के रूप में 'हूँ-हूँ!' कहने लगे। अन्त में जब सारी बात भगवान् शंकर के ध्यान में आई, तो वह एक बालक के रूप में प्रकट हुए। वही मत्स्येन्द्रनाथ हैं। . . बन्नारन

और उन्होंने गुरु को पुकारा तो वे वैसी ही अवस्था में सजीव ऊपर आये। कीचड़-मिट्टी कुछ भी उनके शरीर को नहीं लगा था। राजा गोपीचन्द, राजा भर्तृहरि, रानी मैनावती आदि इनके शिष्यों ने इनके योग-मार्ग का प्रचार किया।

श्री योगिराज गोरखनाथ—एक बार मत्स्येन्द्रनाथ हिमालय में प्रवास करते-करते जयश्री नगर पहुँचे। वहाँ पर एक ब्राह्मण ने आदरपूर्वक उनको भिक्षा दी। वह ब्राह्मण तेजस्वी था, किन्तु उसकी पत्नी उदास थी। मत्स्येन्द्रनाथ ने इसका कारण पूछा। ब्राह्मण से पता चला कि वह निस्सन्तान है। मत्स्येन्द्रनाथ ने विभूति देकर कहा, "इसका सेवन करो, सन्तान होगी।" मत्स्येन्द्रनाथ चले गये। वहीं पर खड़ी एक पड़ोसी स्त्री ने कहा, "वह राख मत खाओ।" उसने डराया। उस ब्राह्मण-पत्नी ने विभूति वहीं कूड़ा फेंकने के स्थान पर फेंक दी।

बारह वर्ष बीते एक दिन 'अलख !' कहते हुए मत्स्येन्द्रनाथ वहाँ आये। उन्होंने ब्राह्मणी से पूछा, "अब तेरे लड़के की अवस्था बारह साल की होगी, वह कहाँ है ?" ब्राह्मणी घबड़ाई। उसने सारी बात कह दी। मत्स्येन्द्रनाथ ने कूड़ा फेंकने के स्थान पर जाकर पुकारा—'अलख !' और वहाँ पर एक बारह वर्ष का लड़का प्रकट हुआ। उसने मत्स्येन्द्रनाथ को प्रणाम किया। वही गोरखनाथ हैं। मत्स्येन्द्रनाथ ने उसको सब योगविद्या सिखाई। गोरखनाथ ने योग-विद्या की अत्यन्त उन्नति की।

गोरखनाथ के दो शिष्य—गैबीनाथ और चर्पटीनाथ थे। इन दो शिष्यों ने योग-विद्या का भारत-व्यापी प्रचार किया। गोरखनाथ योग-विद्या के साथ कवि भी थे। उन्होंने गोरख-संहिता, गोरक्ष-सहस्रनाम, गोरक्ष-शतक, गोरक्ष-गीता, गोरक्ष-पिष्टिका, विवेक-मार्तण्ड आदि ग्रन्थ लिखे हैं। ये सब संस्कृत-ग्रन्थ हैं। कहते हैं, हिन्दी में भी उन्होंने कुछ लिखा है। नाथ-सम्प्रदाय का विशेष प्रचार उत्तर-भारत तथा बिहार, नेपाल आदि में है। हिमालय इनकी साधना-भूमि रही है। यही उनका स्फूर्ति-स्थान रहा है।

इस सम्प्रदाय का एक आश्रम कर्नाटक में भी है। धारवाड़ से कुछ ही मील पर नागरगाली स्टेशन से पाँच-छः मील की दूरी पर पहाड़ी की चोटी पर यह स्थान है। यह आश्रम अत्यन्त सुन्दर है। वहाँ से हुबली-धारवाड़ा के विद्युत-दीप दिखाई देते हैं। वहाँ एक साथ सौ-दो सौ लोग जायें तो भी खाना पकाकर खा सकते हैं, इतना स्थान है। सामान ले जाना पड़ता है।

श्री शंकराचार्य—भारत के महान् आचार्य, अद्वैतवादी वेदान्ती आद्यशंकराचार्य ने हिमालय में अपना एक मठ—जोशीमठ—स्थापित किया। बद्रीनाथ में नारायणमूर्ति की स्थापना की, काश्मीर में जाकर वहाँ पर भी शारदापीठ को भेंट दी और अपने जीवन की इहलीला भी वहीं समाप्त की।

श्री प्रभुदेव—कर्नाटक के महान् वीरशैव सन्त श्री वल्लभप्रभु अथवा श्री प्रभुदेव भी हिमालय गये थे। केदारनाथ के पास एक गुहा में उन्होंने साधना की और वहीं उनकी शून्य-समाधि लगी। उन्होंने अपने साहित्य में उस अद्भुत अनुभव का वर्णन किया है। शून्य के साथ समर सैक्य का वह वर्णन अपूर्व है।

श्री मध्वाचार्य—द्वैत-सम्प्रदाय के संस्थापक श्री मध्वाचार्य तीन बार बद्रीनाथ गये थे। वहीं श्री वेदव्यास से उनको उपदेश मिला था। श्री नारायण पंडिताचार्य ने मध्वाचार्य का जीवन-चरित्र 'सुमध्व-विजय' लिखा है। 'सुमध्व-विजय' में छठा और सातवाँ सर्ग हिमालय के वर्णन से लिखा गया है। उसमें लिखा है कि श्री मध्वाचार्य को वेदव्यास का दर्शन हुआ और श्री वेदव्यास के आज्ञानुसार उन्होंने अपना भाष्य लिखा। इससे पहले उन्होंने वहाँ तपस्या की थी।

जब हम काव्य-संसार में पहुँचते हैं तब महान् कविश्रेष्ठों-द्वारा इस महोन्नत पर्वत का देवत्व पहिचानने में आता है। कालिदास के 'कुमारसम्भव' का प्रारम्भ इस रम्य पर्वतराज से ही होता है—

> अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
> पूर्वापरौ वारिनिधीवगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥

—अर्थात्, "पूर्व-पश्चिम समुद्रों में एक ही समय स्नान करनेवाला सिन्ध

'कादम्बरी' गद्यकाव्य ही हिमालय का रस-रूप मालूम होता है। सम्पूर्ण विश्व-साहित्य में, एक पर्वत का इतने अद्‌भुत विवरण के साथ काव्य-रसोत्पत्ति का कारण होना, विस्मयकारी संकेतों के रूप में खड़ा होना, विरल है। हिमालय की रसकान्ति का कादम्बरी में जैसा वर्णन किया है, वैसे मनोरम ढंग से प्रकाशित करनेवाला दूसरा काव्य है ही नहीं। राजा भागीरथ की तपश्चर्या से नारायण के पाद में स्थित गंगादेवी शिवजी के सिर पर अवतरित होकर फिर हिमालय पर्वत-शिखरों में वहती हुई मैदानी भागों में आई। इस पुण्यसलिला ने यहाँ की भूमि की समृद्धि वढ़ा दी है।

इसमें स्थित दर्शन का ढंग ही निराला है। वह 'आनन्दवल्लीति' उपनिषद्-मंत्र का रूपक है। परमात्मा तो आनन्द-स्वरूप है। उनके आनन्द को हमें शुद्ध मन से अपने अन्दर उतार लेना होगा। वाद में वह हमारे प्राणों में उतरकर अन्तः शक्तियों को पुनर्जीवित करेगा। यही भाव भगीरथ के गंगा-साक्षात्कार में छिपा हुआ है। हिमालय ही सिन्धु, ब्रह्मपुत्र, गंगा, यमुना, गंडक आदि कई नदियों का मूल-स्थान है। वेद-पुराणादि प्राचीन ग्रन्थों में इसके वारे में काफ़ी वर्णन आया है।

छायावाद के सौन्दर्य-उपासक युगकवि सुमित्रानन्द पन्त हिमालय की निसर्ग-सुषमा को देखकर मोहित हुए विना न रह सके। वे अपनी 'हिमाद्रि' शीर्षक की कविता में लिखते हैं—

मानदण्ड भू के अखण्ड हे
पुण्यधरा के स्वर्गारोहण
प्रिय हिमाद्रि, तुमको हिमकण से
घेरे मेरे जीवन के क्षण।
मुझ अंचलवासी को तुमने
शैशव में आशा दी पावन;
नभ में नयनों को खो, तव से
स्वप्नों का अभिलाषी जीवन।
... ...
नैसर्गिक शोभा से परिवृत,
गुह्य अदृश्य शक्ति से रक्षित !

रामधारीसिंह 'दिनकर' की ये पंक्तियाँ कितनी सुन्दर है—

मेरे नगपति मेरे विशाल !
साकार दिव्य गौरव विराट्
मेरी जननी के दिव्य भाल !

छायावाद के सौन्दर्योपासक श्री जयशंकर 'प्रसाद' ने अपने प्रतिष्ठित काव्य-ग्रन्थ 'कामायिनी', जिसकी तुलना आज की गीता से की जानी चाहिए, पुस्तक का प्रारम्भ भी सुन्दरता के प्रतीक हिमालय को लेकर किया है। मनु जब प्रलय के पश्चात् हिमालय के उत्तुंग शिखर पर विचार-मग्न बैठे हैं तो प्रसाद जी कहते हैं :—

हिम गिरि के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छाँह।
एक पुरुष भीगें नयनों से, देख रहा था प्रलय-प्रवाह।

इस प्रकार हिन्दी के आधुनिक कवियों ने भी हिमालय को अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित की हैं।

आधुनिक तत्त्ववेत्ता

स्वामी विवेकानन्द—इस दर्शन-प्रपंच के आधुनिक काल में स्वामी विवेकानन्द तो सदैव हिमालय के इस देवतात्मा के सम्मुख नतमस्तक खड़े रहे हैं। कहते हैं, वे बचपन से हिमालय में जाकर रहने का स्वप्न देखते थे। उनकी आकांक्षा थी तत्वज्ञान के जन्मस्थानरूपी हिमालय में जा बसने की। उन्होंने कहा है—"यही मेरी आशा है। यही मेरी हार्दिक प्रार्थना है।" वे अपने अल्मोड़ा के व्याख्यान में कहते

स्वामी रामतीर्थ—स्वामी रामतीर्थ आधुनिक दार्शनिकों और अनुभवियों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। दैवी अनुभवों के क्षेत्र में स्वामी रामतीर्थ की हिमालय-यात्रा चिर-स्मरणीय है। स्वामी रामतीर्थ ने उसका जो वर्णन किया है उसमें योगानुभव का अद्भुत दर्शन होता है। वे यमुनोत्री से, भीतरी मार्ग से, गंगोत्री की ओर जा रहे थे। एकान्त मार्ग था, उस समय उन्होंने जो अनुभव किया, उसका वर्णन अविस्मरणीय है। वे कहते हैं—

"यहाँ, दुग्ध-धवल कान्तियुक्त शिखरों से पापभीरु देवदार वृक्षों का चिर-साहचर्य है। उनके सरल स्वभाव का वर्णन 'राम' किन शब्दों से करेगा! ...यहाँ परमात्मा, पर्वत-रूप से निद्रस्थ है, वृक्ष-रूप से श्वासोच्छ्वास ले रहा है, पशु के रूप में विचरण करता है, मानव के रूप में अपने स्वाभाविक ऐश्वर्य के साथ संचार करता है। हिमालय में इसका प्रत्यक्ष अनुभव आता है। 'राम' ऐसे प्रदेश में संचार करता जा रहा है। तीन रात्रियों में गिरि-गुहाओं में विश्रामकर 'राम' गंगोत्री जा पहुँचा। यहाँ केवल मेघ छाया है, इसलिए इसे 'छायापथ' कहते हैं। यमुना का उद्गम-स्थान 'वन्दरपूँछ' और 'हनुमान-मुख' से होकर यह छायापथ गुज़रता है। इसके दोनों ओर की रंग-विरंगी पुष्पलताएँ पर्वत पर कलापूर्ण शाल ओढ़ाती हैं। मकरन्दपूर्ण केशर, इत्रासु वनस्पति तथा पुष्पलताएँ जहाँ तक दृष्टि जाती है, फैलती गई हैं।

"ऐसे वातावरण में लता-पुष्पों के बीच, हिम-तुषारों से अलंकृत ब्रह्मकमलों ने उसको सजाया है। जब-जब इस प्रदेश पर दृष्टि जाती है, ऐसा लगता है स्वर्ग-मर्त्य का नियंत्रण करनेवाले देवाधिदेव का सिंहासन यही है। यहाँ के हरे-भरे मैदानों को देखकर लगता है जैसे वे देवताओं के भोजनोत्तर नृत्य के लिए बिछाये गये कालीन हैं।

"प्रातः का समय, छायापथ के दोनों ओर मोतियों की भाँति चमकनेवाले
हिमकणों को भूला नहीं जा सकता। कमल-प[illegible] [illegible]कनेवाले हिमबिन्दु मानव-
जीवन की क्षणभंगुरता का बोध कराते हैं। [illegible] रण में प्रकाश-
मान आत्म-सूर्य के प्रतिबिम्ब की तरह ही [illegible] थी, तब
अनुभव होता था, हे मानव! तू एक क्षुद्र प्र[illegible]
वाले अनन्त कोटि ब्रह्मांड का स्वामी है? तु[illegible]
क्षुद्रहिमकण नहीं, किन्[illegible]

कहते हैं। 'राम' स्पष्ट शब्दों में यही घोषित करता है। हिमालय के नन्दन-वन नव चैतन्य लानेवाला चैतन्य-धन तू ही है। सभी शोभा और वैभव तुझसे ही निर्माण हुए हैं। तू ही उसका कारण और स्वामी है ...।

"हिमालय के विकट मार्ग में चलते समय बाल-यमुना को पार करना पड़ा। आगे छः-सात सौ गज लम्बी और पैंतालीस गज चौड़ी एक हिमकन्दरा में से यमु बहती है। यहां से आगे रास्ता अदृश्य हो जाता है। 'राम' को एक पग भी यमुना नहीं बढ़ने देती थी। मार्ग पूर्ण अवरुद्ध था। लेकिन वज्र-तुल्य के सामने से हर कठिनाई को दूर होना ही पड़ता है। आखिर पश्चिम की तरफ शिखरों पर चढ़कर आगे बढ़ गये। थोड़ी दूर जाने के बाद छोटे-छोटे पौधों भरा एक मैदान आया। नानाविध रंग-बिरंगे फूलों ने अपनी सुगन्ध से स्वागत किया। 'राम' को काफ़ी व्यायाम हो चुका था। साथ आये हुए कुलियों में कई थककर लौट गये थे। दो बेहोश होकर गिर पड़े थे। एक के मुख से निकलने लग गया। फिर भी दो व्यक्तियों ने साथ दिया। इस प्रकार 'राम' एकान्त मिलने लगा। थोड़ी दूर जाने पर चौथा भी जमीन पकड़ गया। उसका शून्य जाने के कारण पानी खोद करके हिम के नीचे से लाना पड़ा। इस प्रकार कुली थककर वापस चले गये। अन्त में एक पहाड़ी ब्राह्मण साथ चला। उसके पास हिम काटने की कुल्हाड़ी, एक दूरबीन, एक काला चश्मा और एक लाल शाल—यही सब सामान था। सुमेरु पर्वत के शिखर पर पहुँचने में श्वासोच्छ्वास लेना भी कठिन हो गया। किन्तु वहां भी 'राम' को दो गरुड़ पक्षी देखने को मिले। हिम की वर्षा

स्वामी रामतीर्थ—स्वामी रामतीर्थ आधुनिक दार्शनिकों और अनुभवियों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। दैवी अनुभवों के क्षेत्र में स्वामी रामतीर्थ की हिमालय-यात्रा चिर-स्मरणीय है। स्वामी रामतीर्थ ने उसका जो वर्णन किया है उसमें योगानुभव का अद्‌भुत दर्शन होता है। वे यमुनोत्री से, भीतरी मार्ग से, गंगोत्री की ओर जा रहे थे। एकान्त मार्ग था, उस समय उन्होंने जो अनुभव किया, उसका वर्णन अविस्मरणीय है। वे कहते हैं—

"यहाँ, दुग्ध-धवल कान्तियुक्त शिखरों से पापभीरु देवदार वृक्षों का चिर-साहचर्य है। उनके सरल स्वभाव का वर्णन 'राम' किन शब्दों से करेगा !···यहाँ परमात्मा, पर्वत-रूप से निद्रस्थ है, वृक्ष-रूप से श्वासोच्छ्‌वास ले रहा है, पशु के रूप में विचरण करता है, मानव के रूप में अपने स्वाभाविक ऐश्वर्य के साथ संचार करता है। हिमालय में इसका प्रत्यक्ष अनुभव आता है। 'राम' ऐसे प्रदेश में संचार करता जा रहा है। तीन रात्रियों में गिरि-गुहाओं में विश्रामकर 'राम' गंगोत्री जा पहुँचा। यहाँ केवल मेघ छाया है, इसलिए इसे 'छायापथ' कहते हैं। यमुना का उद्‌गम-स्थान 'वन्दरपूँछ' और 'हनुमान-मुख' से होकर यह छायापथ गुज़रता है। इसके दोनों ओर की रंग-विरंगी पुष्पलताएँ पर्वत पर कलापूर्ण शाल ओढ़ाती हैं। मकरन्दपूर्ण केशर, इत्रासु वनस्पति तथा पुष्पलताएँ जहाँ तक दृष्टि जाती है, फैलती गई हैं।

"ऐसे वातावरण में लता-पुष्पों के वीच, हिम-तुषारों से अलंकृत ब्रह्मकमलों ने उसको सजाया है। जव-जव इस प्रदेश पर दृष्टि जाती है, ऐसा लगता है स्वर्ग-मर्त्य का नियंत्रण करनेवाले देवाधिदेव का सिंहासन यही है। यहाँ के हरे-भरे मैदानों को देखकर लगता है जैसे वे देवताओं के भोजनोत्तर नृत्य के लिए विछाये गये कालीन हैं।

"प्रातः का समय, छायापथ के दोनों ओर मोतियों की भाँति चमकनेवाले हिमकणों को भूला नहीं जा सकता। कमल-पत्र पर चमकनेवाले हिमविन्दु मानव-जीवन की क्षणभंगुरता का वोध कराते हैं। यह हमारे शुद्ध अन्तःकरण में प्रकाशमान आत्म-सूर्य के प्रतिविम्व की तरह ही कभी उसपर दृष्टि पड़ती थी, तव अनुभव होता था, हे मानव ! तू एक क्षुद्र प्राणी है या इन हिमकणों में चमकनेवाले अनन्त कोटि ब्रह्मांड का स्वामी है ? तुझे यह जानना चाहिए कि तू एक क्षुद्रहिमकण नहीं, किन्तु अनन्त ज्योति में प्रकाशमान दिव्य ज्योति है। सारे वेद यही

करते हैं। 'राम' स्पष्ट शब्दों में यही घोषित करता है। हिमालय के नन्दन-वन में नव चैतन्य लानेवाला चैतन्य-घन तू ही है। सभी शोभा और वैभव तुझसे ही निर्मित हुए हैं। तू ही उसका कारण और स्वामी है"'।

"हिमालय के विकट मार्ग से चलते समय बाल-यमुना को पार करना पड़ा। आगे छ-सात सौ गज लम्बी और पैंतालीस गज चौड़ी एक हिमकन्दरा में से यमुना बहती है। यहाँ से आगे रास्ता अदृश्य हो जाता है। 'राम' को एक पग भी आगे यमुना नहीं बढ़ने देती थी। मार्ग पूर्ण अवरुद्ध था। लेकिन वज्र-तुल्य संकल्पशक्ति के सामने से हर कठिनाई को दूर होना ही पड़ता है। आखिर पश्चिम की तरफ़ से शिखरों पर चढ़कर आगे बढ़ गये। थोड़ी दूर जाने के बाद छोटे-छोटे पौधों से भरा एक मैदान आया। नानाविध रंग-बिरंगे फूलों ने अपनी सुगन्ध से हमारा स्वागत किया। 'राम' को काफ़ी व्यायाम हो चुका था। साथ आये हुए कुलियों में से कई थककर लौट गये थे। दो बेहोश होकर गिर पड़े थे। एक के मुख से रक्त निकलने लग गया। फिर भी दो व्यक्तियों ने साथ दिया। इस प्रकार 'राम' को एकान्त मिलने लगा। थोड़ी दूर आने पर चौथा भी ज़मीन पकड़ गया। उसका गला सूख जाने के कारण पानी खोज करके हिम के नीचे से लाना पड़ा। इस प्रकार सब कुली थककर वापस चले गये। अन्त में एक पहाड़ी ब्राह्मण साथ चला। उसके पास हिम काटने की कुल्हाड़ी, एक दूरबीन, एक काला चश्मा और एक लाल शाल—यही गर सामान था। सुमेरु पर्वत के शिखर पर पहुँचने में श्वासोच्छ्वास लेना भी कठिन

के समान दीखने लगा। सुमेरु पर्वत का हिमाद्रि नाम पूर्ण सार्थक है।

"संसार के जीवो! युवतियों के कपोल पर दीखनेवाली अरुणिमा और अंग-अंग पर चमकनेवाले रत्नाभरण सुमेरु-पर्वत के सामने अल्पांश भी नहीं हो सकते। राजमहलों का वैभव इस रम्य भूमि के सामने नगण्य है। यह याद रखें। किन्तु आत्मस्वरूप के परिचय से ऐसे कई सुमेरु पर्वतों को अपने अन्तःकरण में हम देख सकते हैं। उस स्थिति में निसर्ग स्वतः तुम्हारी सेवा करने को तत्पर हो जाता है।

"हे व्योमन्, तुम अब निरभ्र हो गये। भारत के ऊपर अज्ञान फैलानेवाले मेघो! हट जाओ। इस पवित्र भूमि पर तुम्हारी छाया नहीं पड़ सकती। हिमालय की हिमराशियो! तुम अपनी पावनता को इसी भांति सुरक्षित रखो। यह तुम्हारे स्वामी की आज्ञा है!

"निसर्ग के साथ तुम्हारा अन्तःकरण समरस हो गया तो निसर्ग भी अपना अन्तःकरण खोलकर दिखा सकती है। भगवान स्वयं सहायक होकर 'राम' को गंगोत्री तक सुरक्षित पहुंचा गया!"

श्री स्वामी रामतीर्थ के हिमालय-दर्शन में मार्गदर्शन और काव्य के कान्तिमय आविर्भाव और निसर्ग-चेतन में परमदेवत्व देखकर सभी तल्लीन हो जाते हैं। इसी भांति हिमालय में अनुभव-दर्शन पानेवाले कई महान् योगी हैं। किन्तु राम के अतिरिक्त अरविन्दजी का ही अनुभव मंत्र-भरा है। काश्मीर के शंकर पर्वत पर जब वे गये तो उन्होंने एक अनिर्वचनीय मौन शान्ति, नवजीवन शक्ति को अपने में समाकर मूक मन से एकान्त अनुभव किया। उनका यह अनुभव ही 'अद्वैत' नामक काव्य में अभिव्यक्त हुआ है। हिमालय की अनन्त प्रशान्तता अनिर्वचनीय एकान्तता से श्री अरविन्द-जैसे ऋषि को आध्यात्मिक मौन अनुभव हुआ, तो यह आश्चर्य की बात नहीं। भारत के पुण्य-पुरुषों तथा नेताओं ने हिमालय के विषय में कोई-न-कोई अपना दिव्य अनुभव प्रकट किया है।

श्री अरविन्द—लेखक को पाण्डिचेरी में स्थित अरविन्दाश्रम में 'हिमालय' एक कविता लिखी मिली। श्री अरविन्द को हिमालय की नीरवता में परम पुरुष की वाणी सुनाई देती है। उस कविता का अविकल अनुवाद इस प्रकार है—

"घूम रहा था ऊंचे तख्त-ए-सुलेमान पर,
जहां अवस्थित लघु मंदिर शंकराचार्य का;

एकाकी, अनन्त-अभिमुख बस एक शिला पर
रोमांस व्यर्थ कर शेष जगत् के काल-कूल से।

× × ×

निराकार एकान्त व्याप्त था मेरे चहुँदिशि,
सबकुछ था बन गया अनोखा और अनामी;
एकाकी अज, विश्वातीत, एक सत्ता थी
शिखरहीन, तलहीन सदा के लिए स्थाणु थी।

× × ×

नीरवता जो परम पुरुष की केवल वाणी
अविज्ञात, आरम्भ शब्द से हीन अन्तमय
क्षण में दिखी-सुनी सारी वस्तुएँ मिटाती
एक सकल-वर्णन-अतीत चोटी पर राजित

× × ×

इक निर्जन एकान्त, शून्यता, शान्त अचंचल
गूढ़ प्रकृति रह मूक शिखर पर।"*

—श्री अरविं

रवीन्द्रनाथ ठाकुर को तो भारत के अधिदेवता का स्वर्णरंजित शिखर का किरीट प्रतीत हुआ। "अम्बर चुम्बित भाल हिमालय शुभ्र तुषार किरीटिनि।" यहाँ के हंस-पक्षियों के सम्बन्ध में विश्वकवि ने अनेक पंक्तियाँ लिखी हैं—

"Like a flock of ho[illegible] fl[illegible]

आनन्ददायी होता है।

श्री काका कालेलकर हिमालय के सम्बन्ध में इस प्रकार कहते हैं—"हिमालय-यात्रा करने की प्रवृत्ति हरेक भारतीय में स्वाभाविक है। सिन्धु, गंगा, ब्रह्मपुत्र आदि नदियाँ हिमालय की पुत्री हैं। इसलिए प्रत्येक सरिता-भक्त को एक-न-एक बार अपने ननिहाल हिमालय में जाकर आनन्द प्राप्त करने की इच्छा होती है। हिमगिरीन्द्र का वैभव संसार के समस्त सम्राटों के वैभव से अत्यधिक श्रेष्ठ है। हिमालय हमारा महादेव भी है, सारे विश्व का वैभव इसी से बढ़ता है, लेकिन फिर भी यह इनसे अलिप्त, विरक्त, शान्त तथा ध्यानस्थ होकर रहता है। हिमालय में जाकर इन गुणों को धारण करने की शक्ति जिस यात्री में हो, वही यात्री अपनी यात्रा में विश्राम और विजय-प्राप्ति कर सकता है। धन्य हैं ऐसे विजयी व्यक्ति !

हिमालय के विषय में उसकी सच्ची महिमा को दिखाने के लिए कोई बाहर के आधार (साक्ष्य) की जरूरत नहीं पड़ेगी। आजकल भी वहाँ पर बसे हुए गुप्त योगी और तपस्वी दुनिया के आधुनिक वैज्ञानिकों को चकित करते हुए साक्षी रूप में जीवित हैं।

इस ग्रन्थ में जगह-जगह हिमालय की पवित्र तपोभूमि से आजकल भी प्राप्त होने लायक योगियों के कई अनुभवों को श्री गोस्वामीजी ने दिया है। यह सब देखने से भारतीयों के लिए हिमालय में एक भव्य पर्वत ही नहीं, उनकी दिव्यात्मा का व्यक्त भौतिक रूप भी है। इसमें कोई सन्देह नहीं।

श्री जवाहरलालजी ने हिमालय को एक ज़िन्दा पहाड़ के नाम से पुकारा है। राजकीय और आर्थिक दृष्टि से तो इस महान् पर्वतावली का मूल्य आँकना अशक्य है। स्कन्द पुराण में कहा है, देवताओं के कई सौ युग बीतने पर भी हिमालय का सम्पूर्ण वर्णन करना असाध्य है। फिर भी आखिर में एक चमत्कारिक सत्य घटना के साथ इस हिमालय के 'भूमानन्द' का वर्णन समाप्त करूँगा। यह सच्ची घटना हमारे प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू के सम्बन्ध में है। उनका जन्म हिमालय के एक योगी के आत्मसमर्पण से हुआ है जो श्री मदनमोहन मालवीयजी के पत्र से मालूम पड़ा। यह पत्र दिल्ली की 'शेरे-ए-पंजाब' पत्रिका में छपा था, जिसका सारांश इस प्रकार है—

"पं० मोतीलालजी नेहरू एक बार पंडित दीनदयालु शास्त्री आदि सज्जनों के के साथ काश्मीर गये थे। उस समय रोज सवेरे-शाम साधु-सन्तों का दर्शन

करने का कार्यक्रम रखा गया था। एक दिन शाम को एक महावृक्ष की शाखा पर समाधिस्थ बैठे हुए और डाल से लटकते हुए कमंडलु को देखकर ही मोतीलालजी को बड़ा कुतूहल हुआ।

वहाँ के लोगों से पूछने पर मालूम हुआ कि यह साधु बड़े सवेरे नीचे स्नान के लिए उतर आता है और जो कोई उस लटकते हुए कमंडलु में भिक्षा डाल दे तो खा लेता है, नहीं तो उपवास करता है। यही उनका नित्य कार्यक्रम था।

मालवीयजी के पत्र में आगे की बात इस प्रकार है—"यह सब सुनने पर हमारी उत्सुकता बढ़ गई। दूसरे दिन सवेरे ही हम उस पेड़ के नीचे पहुँचे। लेकिन उस समय वे साधु स्नान करने चले गये थे। थोड़े समय पश्चात् साधु महाराज जल-भरे लोटे के साथ वापस आ गये।"

"योगी महाराज की उम्र काफी हो चुकी थी। फिर भी उनके चेहरे से आत्म-तेज टपका पड़ता था। देखनेवाले अपने-आप नम्र हो जायें, ऐसा व्यक्तित्व था उनका।

"हम सबने साधु-महाराज को प्रणाम किया।

" 'आप क्या चाहते हैं?' उन्होंने पूछा। हम सबने पं० मोतीलालजी को दिखाकर विनती की, 'इन्हें पुत्र-लाभ होना चाहिए, महाराज!'

"योगिराज ने मोतीलाल जी को गौर से देखकर कहा, 'इन्हें पुत्र-प्राप्ति का योग नहीं है।"

"उस समय दीनदयालुजी ने कहा—'भगवान की नज़र बदलने की क्रिया आप जानते हैं? आपसे अगर नहीं हुआ तो और किससे साध्य है? धर्मशास्त्र, पुराण

कहते-कहते साधु का चेहरा उतरता गया और वे निस्तेज होकर ही वृक्ष पर चढ़कर फिर से तपश्चर्या में बैठ गये। हम सब वापस आ गये।

"दूसरे दिन हम सब फिर उन साधु महाराज के दर्शनार्थ गए; लेकिन उस पेड़ के नीचे साधु का शरीर गतप्राण होकर पड़ा देखकर हम सब चकित हो गये। योगी ने अपना सारा तप-प्रभाव मोतीलालजी को दे दिया था।

"इस घटना के दस महीने बाद पण्डित मोतीलालजी के घर में आजका दिगंत-विश्रांत कीर्तिशालीपुत्ररत्न पैदा हुआ।"

वह रत्न ही हमारे प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू हैं।

आजकल विश्व के राजकीय रंगमंच पर नैतिक प्रभाव के ऐसे नायक के तौर पर इस पुत्र-रत्न ने हिमालय-जैसे अत्यन्त भव्य व्यक्तित्व को प्राप्त किया। श्री जवाहरलाल जी में हिमालय के योगी की गुप्त शक्ति का विकास हो तो आश्चर्य ही क्या! हिमालय के निगूढ़ भूम-दर्शन के लिए इससे बढ़कर और साक्षी क्या मिल सकती है!

श्री गोसावीजी ने हिमालय-भ्रमण के अद्भुत अनुभव को प्राप्त किया है, स्वतः हिमालय की दिव्य सात्त्विक किरणों का प्रत्यक्ष अवलोकन किया और उच्च विमानों से हिमगिरि के शिखरों को शुभ्र गलीचे की तरह विस्तृत देखा है; तब यह विचार उन्हें स्वतः आ गया कि उसकी आध्यात्मिक पृष्ठभूमि क्या है। अब तो देवतात्मा हिमालय में आध्यात्मिक भूमानुभव ही मूर्त रूप में प्रकट हुआ है। इसीलिए इस विषय को यहाँ प्रस्थापित किया गया है।

गोसावीजी की भ्रमण की मनोरंजक घटनाएँ और सूक्ष्म विवरण की तात्त्विक पृष्ठभूमि को जानने की आवश्यकता से ही इस लम्बी प्रस्तावना को लिखना अनुचित न समझा गया।

हिमालय में भ्रमण करनेवालों को इस हिमालय-दर्शन से आन्तरिक भूमान प्राप्त हुआ तो मैं इस ग्रन्थ का प्रकाशन सार्थक समझूँगा।

विषय-प्रवेश

ऋषिकेश की एक सुन्दर सन्ध्या। मेरी कुटिया के बाहर, चारों ओर सूर्य की स्वर्ण-रश्मियाँ फैली थीं। भगवान् सूर्य ध्यानावस्था में हिमालय के अन्तरंग में उतर रहे थे। सारा विश्व तप्त स्वर्ण के आवरण में शोभायमान था। मैं अपनी कुटिया के बाहर आया और मैंने देखा एक जटाधारी साधु मेरे सामने आ रहे हैं।

मेरे संस्कारों ने मुझे उनके सामने नत-मस्तक किया। मैंने प्रणाम किया और उन महापुरुष ने गम्भीर वाणी में कहा, "तूने जो कुछ किया है ठीक ही किया है, बेटा! ऐसे ही अपना भार नारायण पर डालकर साधना करने जाओ। यहाँ किसी साधु-संन्यासी को गुरु नहीं बनाना। यहाँ से दो मील पर एक अच्छी कुटिया है। वहाँ जाकर रहो।" यह कहकर वे महात्मा चले गये।

मैं आश्चर्य से विमूढ़ था। वह साधु कौन है? वह मेरे पास क्यों आया? कहाँ से आया और कहाँ गया? इस तरह के कई प्रश्न मेरे सामने आये। किन्तु उन दिनों की मेरी मनःस्थिति आज से भिन्न थी। उन्नीस सौ पचीस में मैं चौबीस साल का था। भावना प्रबल थी। किसी आध्यात्मिक सिद्धि की आकुलता मेरे हृदय में करवट ले रही थी और मुझे किसी अज्ञात दिशा में प्रोत्साहन दे रही थी। मैंने वहीं मौन रूप और स्थिर भाव से खड़े योगिराज हिमालय के अन्तरंग में प्रवेश करके उनसे समरस होने की ठानी। मुझे विश्वास था कि कोई अज्ञात दैवी शक्ति

ौर आत्मविश्वास पैदा किया है। हिमालय में जैसी सुन्दर और रम्य पर्वत-ालाएँ हैं वैसे ही अत्यन्त पुण्य पर्व और पवित्र क्षेत्र भी हैं। हिमालय शब्द के ाथ-ही-साथ अनेक योगी-महात्माओं के चित्र मानवी कल्पना में रमने लगते हैं, किन्तु वास्तविक स्थिति भिन्न है। वह अत्यन्त गम्भीर है। इन रम्य गिरि-शिखरों और कन्दराओं में भयानक एकाकीपन है। मौत की घाटी की भाँति छोटे-छोटे रास्ते हैं। जब हिमालय के उत्तुंग गगनचुंबी दुग्ध-धवल शिखरों पर ध्यान जाता है तब यदि कहीं देव का आधार छूटा, कहीं मन की समता गई, तो न जाने कब पैर के नीचे का हिम-खंड खिसककर, पिघलकर अथवा हमारा पैर फिसलकर हम अनाद्यनंत खड्ड में समा जायँगे—इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। ऐसी यात्रा का आधार है धैर्य। वह खून में समा जाय, जीवन का ही एक स्वभाव बन जाय तभी ऐसी यात्राएँ संभव हैं। इसके लिए भगवदनुग्रह की आवश्यकता है। ऐसे समय पर, 'हम सबकी रक्षा करनेवाली कोई अनन्त शक्ति है', यह श्रद्धा अत्यावश्यक है। यह सब होने पर भी हड्डी तराशनेवाली और खून को जमा देनेवाली ठंड। इस ठंड में शिखरों पर शिखर चढ़ते जाना, रास्ते पर अनन्त संकटों से जूझना, चोर-डाकू या जंगली जानवरों से निबटना, इन सबसे बचकर वहाँ पाना क्या है? क्या वहाँ भगवान शंकर हैं? क्या वहाँ अनुभूति की प्राप्ति हो सकती है? ऐसे सन्देह के समय उन जटाधारी की बातों से नहीं, उनके स्वानुभव-पूर्ण आश्वासन से मुझे शान्ति मिलती थी। अपने साध्य की प्राप्ति में अधिक श्रद्धा निर्माण होती थी। ऐसा लगता था कि प्रत्येक मनुष्य के हृदयस्थ परमात्मा किसी निश्चित उद्देश्य के लिए उस मनुष्य के जीवन का खिलौने की भाँति उपयोग कर लेता है, उस साधना के लिए आवश्यक साधन तथा शक्ति उसको देता है। जब कभी मैं अपनी हिमालय-यात्रा के इतिहास का विचार करता हूँ, मुझे ऊपर के शब्दों की सत्यता का अनुभव-सा होता है।

मैं यह नहीं जानता कि मेरे हृदयस्थ देव ने मेरी इन हिमालय-यात्राओं से कौन-सा उद्देश्य साधा है; किन्तु मैं अनुभव करता हूँ मेरा जीवन ही यात्राओं के लिए है। बचपन से मुझे लगता है, मैं यात्रा के लिए ही पैदा हुआ हूँ, चलना ही मेरा जीवन है। इसके पीछे हृदयस्थ देव का उद्देश्य न जानने पर भी, जब कभी हिमालय-यात्राओं में मुझे अतिशय कष्ट और यातनाओं का अनुभव करना पड़

मृत्यु का मुकाबला करना पड़ा, टट और भूख से अकुलाना पड़ा, तो मैं क निराश नहीं हुआ। यात्रा से मुंह मोड़ने की इच्छा कभी नहीं हुई। सदैव पुनः उत्तुंग भूमोन्नत, एकान्त दुग्ध-धवल गिरि-शृंगों पर स्वच्छन्द विचरण करने की इच्छा तीव्र हुई है। मैंने कई बार अपनेसे ही पूछा है कि इस उत्कर्ष के मूल क्या है? मुझे कभी इसका स्पष्ट उत्तर नहीं मिला। सम्भवतः बचपन में ही की मृत्यु से एकान्त में पड़े जीव को हिमालय के रुद्र-भव्य एकान्त में समाध मिला हो, अथवा किसी अमृत-शान्ति के दान के लिए परमात्मा ने बचपन में ह मुझे मातृ-सुख से वंचित किया हो। यह रहस्य है। जीवन का रहस्य भला हम जानें? जीवन ही रहस्य है। वह एक रहस्य का फन्द-सा है जो रहस्यों के छिलके से लिपटकर फैलता जाता है। हम अपने साढ़े तीन हाथ के इस गज से उस रहस्य को नापने का कितना ही प्रयास क्यों न करें, वह रहस्य रहस्य ही है। जीवन के प्रश्न प्रश्न ही रहते हैं। हां, इतना ही जानता हूं, स्त्री-जाति सम्पर्क से अनभिज्ञ पिता अपने घर में स्वयं एकान्त-भजन और परम्परागत में पड़े हुए थे। बचपन से ही मुझे ध्रुव की कहानी, ऋषियों का तप-महात्म्य, एकान्त-चिन्तन की बातें बताते थे। उनके अरण्य-सचार की कहानियां रम्य उद्बोधक होती थीं। आगे जैसे-जैसे अवस्था के साथ समझ बढ़ने लगी, ज्ञानेश्वरी गीता के छठे अध्याय में आनेवाले ध्यान-क्रम का विषय मुझे बड़ा प्रिय लगने लगा। यह सब मुझे पिता की देन थी। वही मुझे गीता और ज्ञानेश्वरी सुनाते थे।

ज्ञानेश्वर ने ध्यान के लिए नदी-किनारा, शिवालय तथा पर्वत-शिखरों का महत्त्व गाया है। इन तीनों के साथ एकान्त का महत्त्व भी कहा है। न जाने क्यों मेरा म तो ा न मे

वार-वार गीता के इन दो श्लोकों का चिन्तन और स्मरण करता था—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिन कुशोत्तरम् ॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्जा द्योगमात्म विशुद्धये ॥

—गी० अ० ६, श्लो० ११-१२

तथा इन श्लोकों का रहस्य अन्तरार्थ अनुभव करने की इच्छा तीव्र होती थी। परिणामस्वरूप मैंने अपनी दीवार पर एक काला गोल चिह्न करके एकाग्र होकर उसको देखने-बैठने का प्रयास भी किया। बहुत देर तक ऐसा करने से जो-कुछ अनुभव हुआ, उससे मैं चकित हो गया। आँखों के सामने जो काला निशान था, वह सफेद होते-होते एक प्रकाश-विन्दु-सा दीखने लगा। एकाग्रता में जो यह अद्भुत शक्ति है, उसके अनुभव से हरिस्मरण को प्रेरणा मिली। उसके बाद के कुछ और अनुभवों से योग-जीवन की ओर मन आकर्षित हुआ। परिणामस्वरूप इस पथ के पथिकों तथा पथ-प्रदर्शकों को देखने, उनसे मिलने तथा उनके अनुभवों से लाभ उठाने की इच्छा तीव्र होने लगी। मेरी हिमालय-यात्रा में शाश्वत शान्ति की इच्छा के साथ योगियों के सम्पर्क की इच्छा भी एक प्रवल कारण है। किन्तु जब यह संकल्प उदित हुआ था, तब हिमालय-यात्रा की कल्पना नहीं थी और उन दिनों यह साध्य भी नहीं था।

१९२० ई० में मेरे पिताजी का स्वर्गवास हो गया और घर में घटित एक छोटी-सी घटना से भ्रमण ही मेरे मन के समाधान का साधन हुआ। उन्हीं दिनों हमारे गाँव के एक सज्जन को अहमदावाद-कांग्रेस देखने की इच्छा हुई; किन्तु उनमें अकेले यात्रा करने का साहस और धैर्य नहीं था। उनके लिए किसी साथी की आवश्यकता थी और मेरे लिए यह स्वर्ण-सुयोग था। उनके पास धन था, पर धैर्य नहीं था और मेरे पास धैर्य था पर धन नहीं था। हमारी अन्धे-लंगड़े की जोड़ी बन गई। घर में पिताजी का स्वर्गवास हो गया था, भाई-बन्धुओं में मधुर सम्बन्ध नहीं रहा था, मन मुर्झा गया था, एकाकी जीवन अन्य बातों से ऊब गया था। ऐसी स्थिति में अहमदावाद-कांग्रेस जाने की बात सुखद लगी और मैंने घर छोड़कर प्रस्थान कर दिया। उसके बाद फिर कभी वापस जाकर घर में नहीं रहा।

अहमदावाद-कांग्रेस में जो गया तो वहाँ से साबरमती-आश्रम में रहने का

निश्चय करके आश्रम में गया। उन दिनों श्री काका कालेलकर वहाँ थे। आश्रम में रहने की अपनी इच्छा प्रकट की। वहाँ पर मेरे परिचित श्री शिवराय देसाई थे। उन्होंने भी मेरे विषय में काका कालेलकरजी से कहा, श्री कालेलकरजी ने कहा—"यहाँ आश्रम में किसी को निःशुल्क नहीं लेते हैं पन्द्रह रुपये मासिक दे सकते हैं उन्हीं को प्रवेश मिल सकता है।"

यह सुनकर मैंने चुपचाप अपनी कमीज की चार सोने की बटनें, कमर चाँदी का कमरबन्द, हाथ की सोने की अँगूठी और अपने पास जो पचीस नकद थे, यह श्री काका कालेलकर के सामने रखकर कहा, "यह मेरी पूँजी इससे जितने दिन मुझे आश्रम में रख सकते हैं, रख लीजिए।"

मेरी बात सुनकर श्री काका कालेलकर को आश्चर्य हुआ। उस सम किसी अज्ञात धैर्य से भर गया था। मेरे जीवन में एक प्रकार का निश्चिन्त मैं स्थिर-सा हो गया था। मेरे मन ने निश्चित कर लिया था कि गांधी जी के रहना चाहिए। उस दृढ़ विचार को मैंने च्युत नहीं होने दिया।

काका कालेलकर ने भी मेरे निश्चय का अनुभव किया होगा। उन्होंने अन्दर बुलाया। आश्रम-प्रवेश हुआ, साथ-ही-साथ स्वावलम्बन की दीक्षा मिल धुनाई, कताई, बुनाई आदि की शिक्षा मिली। आश्रम में मेरा आत्मविश्वास ब मेरे धैर्य में वृद्धि हुई। गांधीजी के पास आने-जानेवाले अनेक महापुरुषों व्यक्तिगत सम्पर्क प्राप्त हुआ। उनके सम्पर्क से व्यक्तिगत जीवन की संकुचि आकांक्षाओं से उठकर जीवन के उच्च ध्येय की अभिलाषा हुई। साथ-साथ उ

बुनाई सिखाने के लिए शिक्षक के नाते हिन्दुस्तान-भर का भ्रमण करने के लिए दरवाज़ा खुला था। यह सब दैव-नियोजित था। मेरी हिमालय-यात्रा में इन सबका क्या और कैसे उपयोग हुआ, इसका सविस्तार वर्णन आगे समय-समय पर आयेगा। अब यह एक प्रश्न है कि महात्मा गांधी-जैसे महान् व्यक्ति के साथ रहकर उनके अन्य अनुयायियों की भाँति, उनके आवाहन पर राष्ट्रीय स्वातंत्र्य-समर में न जाकर मैं हिमालय की ओर कैसे मुड़ा, यह एक गूढ़ प्रश्न है। इसके उत्तरस्वरूप मुझे लगता है कि जैसे गांधीजी की आध्यात्मिक प्रवृत्ति ने मुझे आकर्षित किया वैसे ही उनके इर्द-गिर्द राजनीतिज्ञों का जो वातावरण था, उसमें जो एक कृत्रिमता रहती थी, उससे मैं वहां से कुछ विरक्त भी हुआ। साथ-साथ बचपन से जो एक प्रकार की एकान्त प्रियता का विकास होता जा रहा था, वह मुझे हिमालय की ओर प्रेरित कर रहा था और साथ-साथ वह, हिमालय की देवात्मा में प्रशान्त एकान्त है, ऐसा कहता हुआ पुकार रहा था।

साबरमती-आश्रम में जीवन का विस्तार हुआ, उसमें विशालता आई; किन्तु जीवन की अस्वाभाविकता नहीं मिटी। जीवन में स्वाभाविकता नहीं आई। गहरी शान्ति नहीं आई। एकाग्रता नहीं मिली। इससे हिमालय के प्रशान्त एकान्त की इच्छा होने लगी। मेरी एकान्तप्रियता एक बार मुझे नागपुर जेल की काल-कोठरी के कष्ट से बचा चुकी थी। मैं जब अँधेरी कोठरी में बन्द किया गया तो वहाँ तुलसी, मीरा, सूर, कबीर के भजन मस्त होकर गाने लगा और जेल के वार्डर-सिपाही आदि वहाँ आकर भजन सुनने लगे। अधिकारियों को पता लगा तो उन्होंने मुझे काल-कोठरी से निकाल बाहर किया। इस अवधि में ध्यान, चिन्तन, मनन आदि योग-साधन अबाध रूप से चल रहा था। इस मनःस्थिति में ही एक दिन हृदय में हिमालय की आज्ञा-पुकार-सी आई। ऐसा लगा कि वहीं मेरा जीवन-सर्वस्व है। जैसे माँ के पुकारने पर बच्चा नहीं रुक सकता, माँ की पुकार पर माँ के पास जाने के लिए आकुल-व्याकुल हो तड़प उठता है, ऐसी थी मेरी स्थिति। क्या यह अन्तर्वाणी थी? आत्मा की पुकार थी? हिमालय की पुकार थी? हृदयस्थ परमात्मा की पुकार थी? मैं नहीं जानता। इस प्रवृत्ति को क्या नाम दिया जाना चाहिए, यह मैं नहीं जानता; और हरएक भावना और प्रेरणा को कोई न कोई नाम देने का आग्रह भी क्यों? मैं इतना ही समझ सका कि मुझे कोई न कोई एकान्तिक शक्ति हिमालय की ओर पुकार रही है और उस पुकार के विरुद्ध

चलना असम्भव है। मेरी व्याकुलता बढ़ी और मैं पूज्य बापूजी तथा काका कालेलकरजी के आशीर्वाद लेकर हिमालय की ओर चल पड़ा। काका कालेलकरजी ने मुझे हरिद्वार के श्री केदारनाथ शर्मा के नाम एक परिचयपत्र दिया और मैं १९२५ में हरिद्वार आ पहुँचा।

हिमालय ! यह एक नया ही संसार है। सदैव घर की चारदीवारी के अन्दर अथवा कार्यालय में बैठनेवाले लोगों को, इसकी कल्पना भी नहीं हो सकती है। विश्व के इस अनुपम, प्रशान्त और रुद्र-भव्य एकान्त की कल्पना यहाँ आकर ही हो सकती है, अन्यत्र कहीं नहीं। सिन्धु नदी से ब्रह्मपुत्र नदी तक पन्द्रह सौ मील सुदीर्घ विशाल लम्बाई के साथ-साथ दो-तीन सौ मील चौड़ाई का यह प्रदेश भारत का भाल-प्रदेश-सा सिर उठाकर खड़ा है। हिमालय का स्मरण ही एक अद्भुत आनन्द देता है। मानव अपने संकुचित आवरण के ऊपर उठकर, प्राणि-जगत् तथा वनस्पति-जगत् से सम्पर्क प्राप्त कर, कुहरे और बादलों की ओढ़नी ओढ़े पर्वतों की चोटियों पर पक्षियों से होड़ लेता-लेता, गगन विहारकर गगनचुम्बी शिखरों से आकाश छूने के लिए सिर उठाए खड़े हिमालय के चरणों में नतमस्तक हो जाता है।

हिमालय की औसत ऊँचाई १८००० फीट है। उसके ४८ शिखर २३००० फीट से २९१४१ फीट तक ऊँचे हैं। उसमें सर्वोच्च एवरेस्ट २९१४१ फीट ऊँचा है तो कांचनगंगा २८१६८ फीट है। धवलगिरि २६७९५ फीट और नन्दादेवी २५६४५ फीट ऊँचा है। इसके अतिरिक्त भारतीय हृदय को आह्लाद देनेवाले पवित्र तीर्थ-स्थल श्री कैलास, मानसरोवर, यमनोत्री, गंगोत्री, केदार, बदरीनाथ, अमरनाथ आदि-आदि भिन्न स्थान हैं। यहाँ की पवित्रता यहाँ की पावनता भारतीय न

प्रकाश को भी अगम्य, ऐसा स्थान है जहाँ हाथी, चीता, भूरे और काले भालू, तेंदुआ, गंडक, कस्तूरी-मृग आदि का पशु-संसार फैला है। कभी-कभी और कहीं-कहीं १४००० फीट से अधिक उँचाई पर भी दुग्ध-धवल, सफेद शंख पड़े मिलते हैं। यह सब देखकर भूगर्भवेत्ताओं ने यह निश्चय किया है कि कभी यहाँ समुद्र था। यदि यह सच है तो प्रकृति-माता की महान् गहराई की कल्पना से सिर चकराने लगता है। समुद्र की गहराई से वहाँ वह गौरीशंकर-जैसे अपना उन्नत किरीट उठा सकती है तो भला वह क्या नहीं कर सकती?

हिमालय की करुणा रूपी-अनन्त जलराशि को लेकर कई नदियाँ भारत को सुजलाम् सुफलाम् तथा शस्य श्यामलाम् बनाती हैं। वेग से दौड़नेवाली इन नदियों को पार करने के लिए नदी पर अनेक स्थानों पर नैसर्गिक हिम-सेतु उपलब्ध हैं। जहाँ ऐसे प्राकृतिक हिमसेतु नहीं हैं वहाँ स्थान-स्थान पर निराधार लोहे की रस्सियों से बँधे हुए अधर भूलनेवाले पुल हैं। काश्मीर तथा नेपाल के कई स्थानों पर देवदार के खंबे गाड़कर वहीं पैदा होनेवाली एक विशेष जाति की घास की डोरों से भूलनेवाले पुल बनाये गये हैं। कई स्थानों पर भव्य गगनचुम्बी वृक्षों ने सघन होकर सुन्दर स्वाभाविक पुल बना दिये हैं। इन सब व्यवस्थाओं के होते हुए भी कई स्थानों पर ऐसे ही स्वाभाविक आकस्मिक खतरों की कमी नहीं है। कल कौन-सा पर्वत-खण्ड खिसक जायगा, यह कौन जाने? जैसे हिमालय के गर्भ में अनन्त खनिज द्रव्य, असंख्य वनस्पतियाँ छिपी हैं वैसे ही अकल्पनीय अनन्त प्रकार की रौद्र-लीलाएँ भी छिपी हुई हैं। इन दैवी लीलाओं को हिमालय के रुद्र-रम्य, बहुभीकर तांडव को प्रणाम करके, उनके दिव्य-दर्शन और दैवी रक्षणा में अटूट श्रद्धा रखकर ही यात्रिक को आगे बढ़ाना चाहिए।

हिमालय के दैवी खतरों के साथ कुछ मानवीय-ख़तरे भी हैं। उनमें सबसे बड़ा खतरा कथित साधु-महात्माओं से सर्वसामान्य धार्मिक वृत्ति के मनुष्यों को है जिनके हृदय में हिमालय के साथ साधु-संन्यासी तथा योगियों की भावना जुड़ी होती है। हिमालय अनादि काल से महान् योगियों की तपोभूमि रही है। वहाँ ऐतिहासिक परम्परा, सामान्य जनमानस की श्रद्धा तथा सद्भाव का लाभ लेकर मानवों का शिकार करनेवाले ढोंगी, धूर्त साधु कुछ कम नहीं हैं। प्रत्यक्ष लूट-खसोट न करने पर भी स्व-सेवा के लिए, विशिष्ट प्रकार की साधना के लिए, अनेक प्रकार की सेवा के लिए, अनेक प्रकार का अदृश्य प्रलोभन देकर यात्रियों

को अपनी ओर आकर्षित कर लेनेवाले साधु या योगी समझे जानेवाले लोग बहुत मिलते हैं। संभवतः इसीलिए उस जटाधारी साधु ने 'यहाँ किसी को गु मत बनाना' कहकर मुझे आदेश दिया और सावधान किया होगा। इसका अर्थ नहीं है कि यहाँ कोई सच्चा योगी है ही नहीं। ऐसे अनेक योगियों के दर्शन क मैंने अपने-आपको धन्य माना है और अपने कष्टप्रद प्रवास की कृतार्थता का अनु भव किया है जो अपनी यौगिक शक्ति से पूज्य बने हैं। वे यात्रियों को अपन अतीन्द्रिय-शक्ति से अनिरीक्षित सहायता देते हैं। जब कभी ऐसे योगियों का होता है, उनके मुख से उनके आत्मानुभव सुनने को मिलते हैं तब हम कृतार्थ अनुभव करते हैं। साथ-साथ इन आँखों ने वेषधारी संन्यासियों का न भी देखा है। ऋषिकेश में ही ऐसा एक नाटकीय प्रसंग आया था।

ऋषिकेश में ही मुझे हिमालय के संन्यास-जीवन की विविधतापूर्ण झाँकी मि गई थी। ऋषिकेश में भारत की प्राचीन संस्कृति की रक्षा के लिए तथा प्रकाश फैलाने के उद्देश्य से कुछ संस्थाएँ बनी हैं। स्वामी श्री शिवानन्द की 'दिव जीवन' संस्था (डिवाइन लाइफ सोसाइटी) भी उनमें से एक है। इसके श्री शिवानन्द सरस्वती का भव्य व्यक्तित्व चित्ताकर्षक है। वह अपने पूर्वाश्रम सिविल सर्जन थे। जब उन्होंने भारतीय संस्कृति की महानता तथा योग-शक्ति अलौकिकता का अनुभव किया तो संन्यास लेकर ऋषिकेश में एक महान् सं की स्थापना की। मैं अपने मित्र श्री केदारनाथ शर्मा के द्वारा उनके सम्पर्क में स्वामीजी को संगीत से बड़ा प्रेम है। मुझे भी कुछ भजन तथा भक्ति-गीत गाने

की क्या आवश्यकता है—अथवा जहाँ अंतरंग नहीं रंगा है वहाँ वाहरी कपड़े रंगने से क्या लाभ ? इस तरह के गेरुवे कपड़ों में मुझे कोई खास विश्वास या आकर्षण नहीं था। इसके अलावा एक वात और थी। महात्मा गांधीजी के सावरमती-आश्रम से हिमालय आते समय श्री काका कालेलकर ने मुझसे दो वचन लिये थे—एक तो यह है कि मैं संन्यास नहीं लूंगा, दूसरा यह कि मैं क्षेत्रों का अन्न नहीं खाऊँगा। संन्यासियों को क्षेत्र का मुफ्त अन्न मिलता है। अनेक पुण्यात्माओं ने साधु-सन्तों के लिए अन्न-क्षेत्र खोले हैं और वहुत-से आलस्य-योगी अथवा आलस्य-भोगी गेरुए कपड़े पहनकर क्षेत्र की रोटी चवाकर, संन्यास की मस्ती में झूमते-घूमते हैं। कालेलकरजी को मेरा ऐसा आलस्यभोगी योगी वनना स्वीकार नहीं था। महात्मा गांधीजी के कर्मयोग और इस निष्क्रिय आलस्यमय संन्यास योग का ३६ का सम्वन्ध था तथा आश्रम की शिक्षा मेरे रक्तगत थी, परिणामस्वरूप मैं श्री शिवानन्द के संन्यासियों के लाल समुद्र में खादीधारी श्वेत द्वीप वनकर रह गया।

किन्तु एक दिन की वात है। स्वामी शिवानन्दजी का वड़ा जलूस निकला था। हाथी पर वैठे थे स्वामीजी। उनके पीछे गेरुवे वस्त्रधारी संन्यासी-मंडली का शानदार समारोह था। इसी वीच में मैं एक सफेद खद्दरधारी था। किसी ने अकस्मात् मुझ पर गेरुआ वस्त्र फेंका। मैं चकित होकर चारों ओर देखने लगा। तव मुझसे कहा गया—"फोटो लिया जा रहा है।" फोटो के लिए "क्षण-भर मुझे संन्यासी के दिव्य जीवन का स्वांग वनाना पड़ा।" आगे इसी वात पर मैंने स्वामी जी से चर्चा की। दिव्य-जीवन के लिए गेरुवे कपड़े का स्वाँग भरने की भला क्या आवश्यकता ? किन्तु उन दिनों उनका प्रामाणिक विश्वास था कि समाज-सेवा के लिए स्वाँग की आवश्यकता है। उनकी मान्यता थी कि इससे सहायता मिलती है। संभव है आज उनके इस विश्वास में परिवर्तन हो गया हो, क्योंकि आज उनके आश्रम में अन्य पोशाक के लोग भी पाये जाते हैं। सूट-वूट वाले साधक भी साधना करते दिखाई देते हैं। जहाँ तक मैंने सोचा है, समाज-सेवा अथवा जन-जागृति की आधार-शिला सेवकों या साधकों की कर्तृत्व-शक्ति है, न कि वाह्य आडम्वर। वाह्य आवरण आन्तरिक विकास के ऐश्वर्य-रूप में होना चाहिए। तभी उसमें दैवी आकर्षण-निर्माण होता है, नहीं तो सारा लक्ष्य वाह्य आडम्वर में लगा रहता है और आन्तरिक विकास विकृत होता जाता है।

यद्यपि ऋषिकेश में मैं अने[illegible] संस्थाओ[illegible] आया, फिर

भी मेरा जीवन उस अपरिचित जटाधारी के शब्दों में स्पन्दित हो रहा था। वहाँ का स्वर्गाश्रम, गीता-भवन तथा अन्य कई संस्थाएँ प्राचीन आर्य-संस्कृति के ज्ञान का प्रचार करना चाहती थी। मैं स्वर्गाश्रम के एक कोने के कमरे में रहता था। दिन-भर प्रशान्त शान्त प्रकृति से तन्मय होने का प्रयत्न करता रहता था। पढ़ने के लिए गीता और महाराष्ट्र के महान् सन्त एकनाथ महाराज का भागवत, जिसको एकनाथी भागवत कहते हैं, मेरे पास थे। उनका पारायण चलता था। उसके बाद सन्ध्या-जप आदि का आन्तरिक आहार मिलता था। खाने के लिए स्वयपाक। कुछ कच्ची-पक्की खिचड़ी पकाकर खा लेता था। सन्ध्या के समय निर्मल पावन गंगा-प्रवाह की ओर घूमने जाता रहता। उनकी सुखद गोदी में उनका दिव्य संगीत सुनता बैठा रहता। मैं भी मूक, वहाँ पर चारों ओर आकाश में गिर तानकर खड़े पर्वत-शिखर भी मूक; हम मूक वाणी से कुछ बोलते, वहाँ की स्वर्गीय शान्ति का अनुभव करते। इसमें मैं प्रसन्न होता। वहाँ से पुनः अपने कमरे पर आता तो पुनः ध्यान, सन्ध्या, पठन आदि कार्यक्रम था ही। ऐसे ही ध्यान में मुझे एक अद्भुत अनुभव हुआ जिसने मेरे जीवन की दिशा ही बदल डाली। मौन के गह्वर में से मानो हिमालय के हृदय ने मेरे हृदय को अपने पास पुकारा। वह अत्यन्त विचित्र पुकार थी, अति शक्तिशाली थी। जैसा उस जटाधारी ने कहा था, मैं नारायण-स्मरण कर रहा था कि अन्दर एक सन्देह मँडराने लगा—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां
ये जनाः पर्युपासते।

बढ़ूंगा, क़दम-क़दम पर मुझे दैवी सहायता का अनन्य अनुभव आयेगा, इस विश्वास से यात्रा के लिए तैयार हुआ। अनन्य-भाव से परमात्मा का चिन्तन करने से अपने योग-क्षेम की चिन्ता से हम मुक्त हो सकते हैं, इसका अनुभव मुझे हिमालय-यात्रा में आया। इस अनुभव के रंग-विलास का अनुभव यदि मेरी इस यात्रा में आता जायगा तो मेरी यात्रा सफल होगी, इस भावना से मैं भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम करके उनके स्थिर रूप के दर्शन के लिए चल पड़ा।

१-उत्तराखण्ड-यात्रा

[बद्री-केदार, गंगोत्री-यमनोत्री और अल्मोड़ा, नैनीताल, पिंडारी ग्लेशियर, मसूरी-चकराता और कैलाश-मानसरोवर आदि।]

हिमालय की गहन और गम्भीर गिरि-कन्दराओं में यात्रा करके भगवान् की अनन्त लीला का अनुभव प्राप्त करने के निश्चय से जब मैं चला, तो मैंने इस यात्रा को क्रमपूर्वक ही करने का निश्चय किया। अतः मैंने ऋषिकेश से वापस हरिद्वार आकर वहीं से यात्रा प्रारम्भ की। हिमालय-यात्रा के लिए हरिद्वार ही महाद्वार है, इसीलिए इसका यह नाम पड़ा। इसको हरिद्वार, हरद्वार और गंगाद्वार भी कहते हैं। वास्तव में बदरीनाथ और केदार के लिए यही द्वार है।

यात्रारम्भ

हरिद्वार में आकर मुझे ठहरना तो था नहीं, अतएव मैंने वहाँ के अपने परम मित्र केदारनाथ शर्मा से मिलकर पैदल-यात्रा प्रारम्भ कर दी। मुझे यात्रा में आनेवाली विघ्न-बाधाओं की कुछ भी चिन्ता नहीं थी और किसी प्रकार की साधन-सामग्री भी मुझे साथ नहीं लेनी थी क्योंकि वह एक परीक्षा थी; साधन-मार्ग था। मेरे पास पहले से ही एक कम्बल, एक डिब्बा, दो खादी के तहमद और तीन दिन के लायक खिचड़ी का भी सामान था। मेरी यात्रा इसी से प्रारम्भ हुई

यमनोत्री आदि मुख्य स्थान भी हैं। यहाँ पंचबदरी, पंचकेदार, पंचप्रयाग, पंचगंगा, दो काशी और सतोपन्थ आदि कई मुख्य स्थान हैं। सम्पूर्ण यात्रा एक ही बार करनी कठिन है। अतः इसे दो भागों में विभक्त किया गया है। सुविधा की दृष्टि से एक बार केदार-बदरी की ओर, दूसरी बार गंगोत्री-यमुनोत्री की ओर यात्रा करनी चाहिए।

गढ़वाल का जनजीवन—उत्तराखण्ड के गढ़वाली लोग सरल, प्रामाणिक और मेहनती होते हैं। इनका सहवास हितकर होता है। चोरी तो इस तरफ़ बहुत कम होती है। यहाँ परोल, गंगारी ब्राह्मण, राजपूत, खसिया, ठाकुर और भोटिया आदि जाति के लोग रहते हैं। यहाँ ९६ प्रतिशत हिन्दू लोग और बाकी भोटिया लोग रहते हैं। भोटिया माना और कुमायूं घाटी की तरफ़ रहते हैं। उनके संस्कार हिन्दुओं से भिन्न हैं। इनके जीवन के सम्बन्ध में कैलास-यात्रा में भी लिखा जायगा। यहाँ का मुख्य व्यवसाय खेती, पशुपालन, ऊन कातना, बुनना, व्यापार और कुली आदि का काम है। गढ़वाल के व्यावसायिक केन्द्र दुगड्डा, लैन्सडौन, पौड़ी, श्रीनगर, कोट-द्वार, टिहरी, नरेन्द्रनगर, उत्तरकाशी, चामोली, जोशीमठ आदि हैं। यहाँ गढ़वाल का कुछ ऐतिहासिक भूगोल भी दिया जाएगा। उत्तराखण्ड-यात्रा में यहाँ के लोगों की सहायता लेना आवश्यक है। ये लोग बोझ उठाने के लिए डाँडी, कण्डी और झंपानों में यात्रियों को आराम से नियत स्थान पर पहुँचाने के लिए तथा नौकरी करने के लिए भी अच्छे हैं। गरीबी के कारण ये लोग गन्दे रहते हैं, किन्तु आजकल काफ़ी सुधार हो गया है।

यात्रा के लिए आवश्यक सामग्री

यात्रा में चलने से पहले वहाँ की आवश्यक बातों को जानने के लिए 'हिमालय दर्शन'-जैसी कोई पुस्तक मार्गदर्शन के लिए साथ रखनी चाहिए क्योंकि इससे रेल, मोटर, पगडण्डी आदि का ज्ञान होगा। इसमें दिये हुए नक्शे के अनुसार ठहरने का स्थान, देखने-योग्य दृश्य, देवी-देवताओं के मन्दिर, स्नान करने के अनुकूल स्थान आदि के बारे में पहले से ही जान लेना अच्छा है। मोटर से यात्रा करनेवालों को उसका समय और किराया मालूम कर लेना चाहिए, क्योंकि पहले से ही उत्तम प्रबन्ध कर लेने से ठीक समय पर पहुँचकर वापस आने में सुविधा रहती है।

यात्रा में जानेवाले सुयोग्य और समझदार आदमी के आज्ञानुसार ही सबको

चलना चाहिए। एक टोली में चार-पाँच आदमियों से अधिक न हों, तो सभी सुविधाएँ मिल जाती हैं और ठहरने का भी उचित प्रबन्ध हो जाता है। अधिक लोगों के एक साथ चलने से विचार और स्वभाव की भिन्नता से तथा निवास की असुविधा से बड़ा कष्ट होता है।

पर्वतीय प्रदेश की यात्रा मैदानी भाग की यात्रा से बिलकुल अलग होती है। प्रारम्भ में कई दिनों तक जलवायु और मार्ग अनुकूल नहीं पड़ते। यहाँ के शीत से बचने के लिए अनुकूल पोशाक (वस्त्र) बनवा या खरीद लेनी चाहिए। दो कंबल, शाल, स्वेटर, गरम कोट, टोपी, मोजे, मफलर आदि कपड़े अवश्य ही साथ रखने चाहिए। इसके अतिरिक्त मोम बूट (कपड़े का जूता) रेनकोट (बरसाती) और छतरी भी बहुत जरूरी है।

श्री बदरीनारायण का मंदिर वैशाख-शुक्ल पक्ष की अक्षय-तृतीया को खुलता है, इसलिए मार्ग में सभी दर्शनीय स्थानों को देखते हुए नियत समय पर वहाँ पहुँचना चाहिए। इस दृष्टि से चैत्र मास के अन्तिम सप्ताह में ही हरिद्वार पहुँच जाना उचित है। दक्षिण भारत के यात्री एक मास पूर्व ही घर से निकलकर रास्ते के विभिन्न स्थानों को देखते हुए समय पर पहुँच जायें तो अच्छा है।

पहाड़ों के मार्ग में जगह-जगह पानी नहीं पीना चाहिए, क्योंकि कई जगह अच्छा पानी नहीं है। मार्ग की थकावट मिटाने के बाद स्वच्छ जल ही पीना चाहिए, इसलिए एक वाटर-बैग भी साथ रखना चाहिए। यात्रा में कुछ औषधियाँ और बर्तन आदि साथ रखने से सुविधा होती है। चाय पीने वालों के लिए एक स्टोव और दूध का डिब्बा आवश्यक है। सूखा मेवा, बादाम, अखरोट आदि स्निग्ध पदार्थों का सेवन क

सूचनाएँ इसलिए दी जा रही हैं कि किसी अनजान यात्री को वहाँ जाकर पछताना न पड़े और वह पहले से ही उचित प्रवन्ध करके आनन्दपूर्वक यात्रा कर सके।

आजकल पैदल चलनेवाले कम हो गये हैं। मोटर से जानेवाले यात्री दस-पन्द्रह दिनों में ही यात्रा करके वापस आ सकते हैं और यदि कार हो तो सात दिन में ही वापस आ सकते हैं। ये सभी नियम सर्वसाधारण के लिए हैं, अतः इन बातों को पहले ही जान लेना अच्छा है।

इसके लिए 'हिमालय-दर्शन', साथ रखना सुविधाजनक है। जिससे जहाँ यात्रा करे, वहाँ का वर्णन पढ़कर वहाँ की सुविधा-असुविधा के अनुसार पहले ही से तैयारी कर ले।

हरिद्वार

हरिद्वार से ही यात्रा का वास्तविक आरम्भ समझना चाहिए। मोक्षदायी सप्तक्षेत्रों में हरिद्वार एक है। यह स्थान शिवालिक पर्वत-माला के पार्श्व में हिमालय से निकलकर मैदान में आनेवाली गंगानदी के किनारे पर बसा हुआ है। यहाँ से उत्तर की ओर दृष्टि दौड़ाने से एक के पीछे एक कितने ही पर्वत-शृंग समुद्र की लहरों की तरह नीलाकाश में सिर ऊँचा किये खड़े दिखाई देते हैं। इनके पीछे शुभ्र किरीटधारी हिम-शिखरों को देखने से इनका विस्तृत स्वरूप दृष्टिगोचर हो जाता है। हरिद्वार में देखने-योग्य अनेक स्थान हैं जिनमें मुख्य का वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

हर की पौड़ी (ब्रह्मकुण्ड)—राजा भर्तृहरि ने इस स्थान पर तप की थी। प्राचीन काल में गंगाजी यहाँ स्थित ब्रह्मकुंड से होती हुई जाती रही होंगी। किन्तु अब तो सामने के चंडी पर्वत के नीचे से हुई प्रयाग, काशी तथा पटना होती हुई गंगासागर में समा जाती ब्रह्मकुंड में जो जल है वह 'दूधिया बाँध' से निकली हुई नहर का है नहर रुड़की होती हुई कानपुर जाती है। इस नहर से हरिद्वार-नि को कोई भय नहीं है; क्योंकि 'दूधिया बाँध' जहाँ बना हुआ है, व यांत्रिक व्यवस्था है जिससे आवश्यकतानुसार पानी की निकासी जाती है। 'ब्रह्मकुंड' में नित्य स्नान करनेवाले लाखों नर-नारी इस स्पर्श से अपनेको पुनीत मानते हैं। संध्या समय हरि की पौड़ी पर

आरती का दृश्य अत्यन्त मनोरम एवं दर्शनीय होता है। हजारों यात्री फूलों भरे दोनों में बत्ती जलाकर गंगा में बहाते रहते हैं। रात में प्रज्ज्वलित बत्तियों वाले ये फूलों के दोने गंगा में दूर-दूर तक बहते हैं, जिन्हें देखकर दर्शकों के में उमंग पैदा होती है और भावुकों के मन उमड़ पड़ते हैं। घटा-निनाद में . के साथ जो आरती होती है वह देखने-योग्य होती है। हरिद्वार में गगा-स्नान तर्पण, श्राद्ध आदि मुख्य कर्म किये जाते हैं।

मूलगगा चंडी पहाड़ के नीचे से बहती है। यही गंगा अपनी विशालता . कई शाखाओं में प्रकट करती हुई हिमालय से मैदानों में फैलती है। इससे बांध नहरों का निर्माण हुआ है। इससे करोड़ों आदमियों को गन्ना, चावल, साग-सब्जी आदि पैदा करने की सुविधाएँ मिलती हैं। जिन जिलों में वर्षा कम होती है वह. इसकी नहरें जीवनदायिनी गंगामाई के रूप में प्राणदायक बन गई हैं। जिस प्रकार वृन्दावन, अयोध्या आदि कई क्षेत्रों में नदी के बहुत दूर चले जाने से बालुका मय नीचे घाटों ने भयानक रूप धारण किया है वैसे ही कभी हर की पौड़ी और इत्तर घाट भी शून्यता से रुद्र-रूप धारण करते थे। गंगाजी का असली रूप अब यहाँ दिखाई देता है।

आजकल हरिद्वार केवल यात्रास्थान ही नहीं रहा, यहाँ पर प्रवासियों—सैर-सपाटे के लिए सैलानी मुसाफिरों—का एक केन्द्र बन गया है। उत्तर-भारत में पंजाब, उत्तर-प्रदेश, बिहार, राजपूताना, मध्यप्रदेश आदि प्रान्तों में काफी गरमी पड़ती है, इसलिए धनवान लोगों ने और विशेष रूप से पंजाबियों ने हरिद्वार को अपने विलास का स्थान बना लिया है। सरकार ने म

होकर गंगा, गायत्री, बदरीनारायण, श्रवणनाथ, विल्वकेश्वर महादेव, मायादेवी, मनसादेवी, कालभैरव आदि कई मन्दिरों के दर्शन करते हैं और सन्ध्या-समय कई संस्थाओं और मण्डलियों से भजन, कीर्तन, कथा आदि श्रवण करके तथा साधुओं के सत्संग-द्वारा आनन्दपूर्वक दिन व्यतीत करते हैं। गंगा प्लेटफार्म पर धार्मिक विचार के श्रद्धालुओं के अतिरिक्त चाट-चटनी और पूरी-मिठाई में मौज उड़ाने वाले तथा सांसारिक सुख भोगनेवाले भी कम नहीं होते। आजकल तो यह धीरे-धीरे विलास का स्थान बनता जा रहा है, फिर भी शुद्ध धार्मिक विचारवालों को कोई बाधा नहीं आती। ३०-४० वर्ष पूर्व यहाँ जो वातावरण था वह अब बिलकुल बदल गया है। यहाँ शहर की सभी सुविधाएँ उपलब्ध होती जा रही हैं और साधु-महात्माओं के नाम पर गेरुआ वस्त्रधारी नकली संन्यासियों का आडम्बर बढ़ता जा रहा है। फिर भी कभी-कभी एक-आध अच्छे योगी, महात्मा मिल जाते हैं। प्रसंगवश ऐसे ही एक महात्मा के बारे में आगे दिया जा रहा है।

योगीदेवजी—कुंभ-मेला भारतवर्ष में जिन चार स्थानों पर होता है, वे स्थान ये हैं—नासिक, उज्जैन, प्रयाग और हरिद्वार। तीन साल के अन्दर यह मेला उस नक्षत्र और राशि के अनुसार इन स्थानों में होते हुए, फिर बारह साल में उसी एक स्थान पर आ जाता है—अर्थात् हर बारह साल में इनमें से प्रत्येक स्थान में बड़ा कुंभ-मेला होता है। उस समय यहाँ पर स्नान करने के लिए लाखों श्रद्धालु जन, साधु-महात्मा और कई अच्छे योगी भी आ जाते है। सन् १९२७ में जब हरिद्वार में कुंभ हुआ था, उस समय वहाँ पचीस लाख यात्री एकत्रित हुए थे। इनमें योगीदेव भी एक थे। मैंने गंगाघाट पर घूमते हुए इनकी योग-शक्ति देखी। एक स्थान पर एक पंजाबी और एक बिहारी सज्जन के साथ उनका वार्तालाप चल रहा था। मैं भी वहाँ बैठ गया। आगे इनकी अनुभवपूर्ण वार्ता प्रवचन के रूप में बदल गई, जिसे सुनने के लिए हजारों प्रतिष्ठित व्यक्ति इकट्ठे हो गये। जब वे राजयोग के सम्बन्ध में आन्तरिक गूढ़ अनुभवों के कई चमत्कार दिखाने लगे, तो वहाँ पर बैठे हुए लोग सुबह के चार बजे तक न उठ सके। राजा करतारसिंह नामक एक लब्धप्रतिष्ठ धनवान सज्जन भी वहाँ पहुँचे। उस समय वहाँ गलीचा, दरी आदि बिछ गयीं और अन्य जिज्ञासु भी इकट्ठे हो गये।

योगीदेव का भव्य व्यक्तित्व, ओजस्वी वाणी और अनुभवपूर्ण सिद्धि देखकर राजा साहब भी अपने-आपको भूल गये। राजा साहब जब यहाँ आये थे तो रानी

साहिबा को कार मे ही छोड़ आये थे। जब बहुत समय बीत गया तो एक नौकर ने आकर सूचना दी कि राजा साहब को रानी ने बुलाया है। यह बात योगीदेव ने भ सुनी और इसी बात का उदाहरण देते हुए उन्होंने बतलाया कि योग मे बाधा क्यों होती है? उन्होंने समझाया—"देखा? राजा रानी के लिए हैं, लेकिन रानी राजा के लिए नही—हम खाने के लिए हैं, खाना हमारे लिए नही है; हम मकान के लिए हैं, मकान हमारे लिए नहीं है।" इसी प्रकार उन्होंने स्पष्ट बतलाया कि "यह विपरीत स्थिति जब तक नही बदलती, तब तक योग-साधन नहीं होता। हम जड वस्तुओं मे फँसकर सारे समय को इन्द्रिय-भोग मे ही व्यतीत करते हैं। मौज मे आकर कोई भी योगाभ्यास नही कर सकता। उसके लिए कठिन तपस्या, योग्य गुरु का सहवास और भगवद् कृपा की आवश्यकता है। प्रयत्नमात्र से योग-सिद्धि नही मिलती, स्वयं को सम्पूर्ण रूप से ईश्वरार्पण करने से भगवद्-सिद्धि होती है। इसके लिए शारीरिक, मानसिक और नैतिक शक्तियो से ऊपर उठकर साधना करनी चाहिए। योग मे बुद्धिबल के भरोसे रहने से धोखा खाना पड़ता है। इसपर अपना सर्वस्व भगवान् को समर्पित करके, तदाश्रित होकर ही साधना-प्रवचन सुनते हुए हम सब रात-भर वहीं बैठे रहे।

राजा करतारसिंहजी पर योगीदेवजी का अच्छा प्रभाव पड़ा। इसी से मुझे भी कई दिनो तक उनकी कोठी पर महात्माजी के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। एक दिन वे मुझे साथ लेकर गगा के किनारे दूधिया बाँध के ऊपर गये और वहाँ उन्होंने नेति, धोति आदि क्रियाएँ करके दिखाईं। जब वे गगा मे तैरने लगे तो उन्हे धारा के विरुद्ध बहते हुए देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। कारण पूछने पर

इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए। जब ये बम्बई गए थे, तो इनकी सिद्धि के सम्बन्ध में सुनकर लाखों लोग चौपाटी पर जमा हो गये थे। वहाँ इनका प्रवचन हुआ। प्रवचन के बीच में जब वर्षा प्रारम्भ हुई तो योगीदेव ने उसी समय सबको रोककर वर्षा बन्द कर दी और दो-तीन घण्टे प्रवचन करने के पश्चात् जब सब चले गये तो पुनः जोर की वर्षा हुई। ये कई बार बालक का-सा रूप धारण कर लेते थे और कई बार विश्वरूप दिखाते थे! इस प्रकार मैंने इनके साथ रहते हुए अनेक बातें देखीं। उस समय ये सब बातें अखबार में भी छपीं। योगियों को पहचानने के लिए भी विशेष ज्ञान की आवश्यकता है, अन्यथा फँसने का भय रहता है। यहाँ तो एक उदाहरणमात्र दिया गया है।

हरिद्वार के मुख्य स्थानों का वर्णन इस प्रकार है—

ऋषिकुल ब्रह्मचर्य-आश्रम—साबरमती से श्री काका कालेलकर की चिट्ठी लेकर मैं ऋषिकुल में श्री केदारनाथजी के यहाँ गया। इस संस्था में केवल सनातनी (त्रिवर्ण के) बालकों को ही प्रवेश मिलता है। उन्हें वेद-वेदांग आदि संस्कृत-विद्या के साथ धार्मिक बातें सिखाई जाती हैं। इस संस्था का एक आयुर्वेद कालेज भी है जहाँ आयुर्वेद के पूरे शिक्षण के उपरान्त सर्टिफ़िकेट दिया जाता है। ऋषिकुल में रहते समय मैंने दरी बुनना, चरखा चलाना आदि कार्य प्रारम्भ किया था, लेकिन यहाँ के पुराने विचार के अध्यापक और विद्यार्थियों ने इसका विरोध किया, अतः यह कार्य बन्द करना पड़ा। पं० केदारनाथजी और मनोहरलालजी भार्गव आदि कई सज्जनों के सहयोग से मैंने इस कार्य को पुनः प्रारम्भ किया था। वहाँ के गांधीविरोधी लोगों के द्वारा आपत्ति करने पर भी मैंने दो-तीन बार इन उद्योगों को प्रारम्भ किया था। अब वहाँ क्या है, पता नहीं।

गुरुकुल-आश्रम—हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्दजी ने इसकी स्थापना की थी। यह संस्था पहले गंगा-पार काँगड़ी में थी। १९२३ में गंगा की बाढ़ में वह गाँव बह जाने से, यह संस्था सन् १९२८ में नये ढंग से बनी हुई आलीशान इमारतों में आ गई है। यह स्थान कनखल और ज्वालापुर के बीच हरिद्वार से चार मील दूरी पर है। यहाँ के यज्ञ-मण्डप, वेदभवन, बच्चों का और कालेज-विभाग का निवासगृह, पुस्तकालय, स्कूल, कालेज, गौशाला, कृषि विभाग, आयुर्वेद कालेज, रसशाला, पाकशाला, अतिथि भवन, अस्पताल, गुरुजनों के लिए निवासस्थान आदि सब देखने लायक हैं। यहाँ की शिक्षा-पद्धति वेदों के साथ-साथ आधुनिक विषयों से सम्मिश्रित है। कई सौ

विद्यार्थी यहाँ पर अपनी छोटी उम्र से लेकर कालेज-कोर्स पूरा करने तक वेदान्त, विद्यालंकार आदि कई पदवियों के साथ बाहर निकलते हैं। भारत के नेता यहाँ पहुँचते हैं। यहाँ के सालाना जलसे में आर्यसमाजी लोग और इतर महीनों तक यहाँ आकर रहते हैं। यह संस्था भारत-भर में प्रसिद्ध है। इसे ही सब बातें जानी जा सकती हैं।

आचार्य अभयदेवजी जब यहाँ के प्रिन्सिपल थे तब मैंने यहाँ खादी-विभाग में काम किया था। मैंने गाधी-आश्रम के ग्रामोद्योग शिक्षणालय में इसे सिखाने का कार्य किया था, गुरुकुल में भी दरी बनाने का उद्योग प्रारम्भ किया। उस समय सब विद्यार्थी कातते थे और खादी भी पहनते थे। मैंने शहद की मक्खी पालने का कार्य भी शुरू किया था। गांधी-सेवा-सघ का मेम्बर होने के कारण सब रिपोर्ट वर्धा को भेजनी पड़ती थी। मधुमक्खी-पालन का पूरा काम सीखने के लिए मैं गाधी सेवा सघ की तरफ से त्रावणकोर भी हो आया और बाद में मैंने देहरादून में 'हिमालय मधुमक्खी-पालक संघ' भी खोला था जिसका वर्णन आगे किया गया है। अब आचार्य अभयदेव जी 'श्रीअरविन्द-निकेतन' नामक सस्था खोलकर वहीं अपने गाँव चरथावल में हैं जिसका शिलान्यास श्रीमान् रगनाथ रामचन्द्र दिवाकर ने किया और बगलौर के श्री अरविन्द-मण्डल का उद्घाटन आचार्य अभयदेवजी ने किया। मेरा और उनका सम्बन्ध बहुत पुराना है। गुरुकुल में इन्होंने मुझ से सेवा ली। हरिद्वार जाने वाले इस संस्था को अवश्य देखें। अब इसका स्वरूप बदल गया है।

महाविद्यालय—गुरुकुल के समान यहाँ भी छोटे लड़कों का प्रवेश होता है और गरीब सस्था होने के कारण यहाँ वेद-विद्या के साथ परिश्रम का भी पाठ पढ़ाते हैं

राधाकृष्ण, व्यासजी आदि के कई मन्दिर देखने-योग्य हैं। यहाँ का रामकृष्ण-सेवाश्रम तो बीमारों की सेवा में सदैव तत्पर रहता है। यहाँ साधु, संन्यासी और गरीबों को मुफ़्त दवा मिलती है। इनके अलावा चैतन्यदेव की कुटी, दादूबाग, कन्या-गुरुकुल, वानप्रस्थाश्रम, श्री अरविन्द योग-मन्दिर, योगाश्रम, गुरुमण्डलाश्रम, निरंजनी अखाड़ा आदि कई संस्थाएँ इन तीनों बस्तियों के बीच में हैं। गंगापार शिवालिक पर्वत की चोटी पर जो चंडी का मंदिर है वह भी देखने-योग्य है। वहाँ से हिमशिखर दीखते हैं। बिड़ला-घाट पर भोलागिरि आश्रम, गीता-भवन आदि कई देखने-योग्य स्थान हैं।

धर्मशालाएँ—हरिद्वार, कनखल-क्षेत्र में नरसिंह भवन, बीकानेर, लखनऊ वाली, सिंधी, पंजाबी, गुजराती, बंगाली, मद्रासी, मलाबारी, सूरजमल, मोदी-भवन, बिड़लाभवन, भाटिया-भवन, मेरठवाली आदि कई धर्मशालाएँ हैं। श्री नंजुडजी शास्त्री और उनके जेष्ठ पुत्र वेंकटेश मूर्ति की मेहनत से कर्नाटक धर्मशाला सोसायटी बनी है और इसके लिए गंगा-किनारे योग्य स्थान भी प्राप्त हो गया है। थोड़े ही दिनों में काम शुरू होनेवाला है। यहाँ कई होटल भी हैं।

हरिद्वार के मुख्य-मुख्य स्थानों को देखकर बदरी क्षेत्र के लिए पैदल-यात्रा प्रारम्भ की जाती है। थोड़ी दूर जाने के पहले भीमगोड़ा मिलता है। अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा भीम ने यहीं पर रोका था। यहाँ एक कुण्ड है जिसमें स्नान करके यात्री भीम का दर्शन करते हैं। यहाँ से ३ मील दूर सप्त-स्रोत है जहाँ पर सप्त-ऋषियों का मंदिर और कई साधकों की कुटिया हैं।

सप्त-स्रोत—यह स्थान प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। राजा भगीरथ की तपस्या से गंगाजी भूमि पर उतर आई और उनके पीछे-पीछे चलती हुई सप्त-ऋषियों के आश्रम के पास सात धाराओं में बहती हुई आगे सागर तक चली गई। इसी तरह हिमालय में हरएक तीर्थक्षेत्र के पीछे एक-एक गाथा है जिन्हें भावुक लोग पुराणों में पढ़ सकते हैं। यहाँ पर महत्त्वपूर्ण स्थानों का ही वर्णन किया जाता है, नहीं तो यह ग्रन्थ तीन-चार गुना बड़ा हो जायगा और कई भागों में छापना पड़ेगा। मेरा विचार यात्रियों और प्रवासियों को उस स्थान तक योग्य रास्ते से पहुँचाने लायक विवरण देना है और कई जगह जो-जो सुविधाएँ मिल सकती हैं उनके बारे में यथाशक्य परिचय देना है।

श्री बदरी-केदार यात्रा

ऋषिकेश (११०० फीट)—हरिद्वार से श्री बदरी-केदार यात्रा प्रा करने पर भी उत्तराखण्ड-यात्रा का मुख्य केन्द्र ऋषिकेश ही है। रास्ते सत्यनारायण मन्दिर, रामनगर के पास आत्मविज्ञान-भवन, पशुलोक, आश्रम आदि देखते हुए त्रिवेणी-संगम पर पहुँचा जाता है। ऋषिकेश ठहरने के लिए बाबा काली कमलीवाले की धर्म-शाला, सिंध-पंजाबी दे- जगाधरीवाली धर्मशाला, आन्ध्र धर्मशाला, नेपाली आदि मुख्य क्षेत्र हैं यहां पर सब प्रकार की सुविधाएँ मिल जाती हैं। यहाँ कई साधु के आश्रम हैं। इनमें डेढ़ मील पर कैलास-आश्रम है और आगे थोड़ी दूरी श्री स्वामी शिवानन्दजी के 'दिव्यजीवन-संघ', रामाश्रम आदि कई दर्शनीय हैं। गंगाजी के पार गीता-भवन, परमार्थ-निकेतन और स्वर्गाश्रम भी स्थान हैं। सत्संग होता है और ठहरने की सब प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हैं ऋषिकेश में भरतजी का मन्दिर देखने-योग्य है। साधना के लिए यहाँ के सब आश्र में सुविधा है। यहाँ से हिमालय और गंगाजी का दृश्य देखने-योग्य है। ऋषिकेश मुनि की रेती होती हुई एक सड़क नरेन्द्रनगर को जाती है, जहां से यात्री टेहर धरासू होते हुए गंगोत्री-यमनोत्री जा सकते हैं। मोटर से केदार-बदरी लक्ष्मण-झूला देखते हुए गंगा की दाईं तरफ लक्ष्मण-झूला और पैदल चलनेवा लक्ष्मणझूला-पार करके गंगा की बाईं तरफ गरुड़चट्टी होते हुए देवप्रयाग पहुँच हैं, जो यहाँ से ४४ मील दूर है। गंगा पर लोहे की रस्सियों पर लक्ष्मण-झूला है जो यात्रियों के देखने-योग्य है। सारे भारत में ऐसा कोई पुल नहीं है। बीच

राधाकृष्ण, व्यासजी आदि के कई मन्दिर देखने-योग्य हैं। यहाँ का रामकृष्ण-सेवाश्रम तो बीमारों की सेवा में सदैव तत्पर रहता है। यहाँ साधु, संन्यासी और गरीबों को मुफ़्त दवा मिलती है। इनके अलावा चैतन्यदेव की कुटी, दादूबाग, कन्या-गुरुकुल, वानप्रस्थाश्रम, श्री अरविन्द योग-मन्दिर, योगाश्रम, गुरुमण्डलाश्रम, निरंजनी अखाड़ा आदि कई संस्थाएँ इन तीनों बस्तियों के बीच में हैं। गंगापार शिवालिक पर्वत की चोटी पर जो चंडी का मंदिर है वह भी देखने-योग्य है। वहाँ से हिमशिखर दीखते हैं। बिड़ला-घाट पर भोलागिरि आश्रम, गीता-भवन आदि कई देखने-योग्य स्थान हैं।

धर्मशालाएँ—हरिद्वार, कनखल-क्षेत्र में नरसिंह भवन, बीकानेर, लखनऊ वाली, सिंधी, पंजाबी, गुजराती, बंगाली, मद्रासी, मलाबारी, सूरजमल, मोदी-भवन, बिड़लाभवन, भाटिया-भवन, मेरठवाली आदि कई धर्मशालाएँ हैं। श्री नंजुडजी शास्त्री और उनके जेष्ठ पुत्र वेंकटेश मूर्ति की मेहनत से कर्नाटक धर्मशाला सोसायटी बनी है और इसके लिए गंगा-किनारे योग्य स्थान भी प्राप्त हो गया है। थोड़े ही दिनों में काम शुरू होनेवाला है। यहाँ कई होटल भी हैं।

हरिद्वार के मुख्य-मुख्य स्थानों को देखकर बदरी क्षेत्र के लिए पैदल-यात्रा प्रारम्भ की जाती है। थोड़ी दूर जाने के पहले भीमगोड़ा मिलता है। अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा भीम ने यहीं पर रोका था। यहाँ एक कुण्ड है जिसमें स्नान करके यात्री भीम का दर्शन करते हैं। यहाँ से ३ मील दूर सप्त-स्रोत है जहाँ पर सप्त-ऋषियों का मंदिर और कई साधकों की कुटिया हैं।

सप्त-स्रोत—यह स्थान प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। राजा भगीरथ की तपस्या से गंगाजी भूमि पर उतर आईं और उनके पीछे-पीछे चलती हुई सप्त-ऋषियों के आश्रम के पास सात धाराओं में बहती हुई आगे सागर तक चली गईं। इसी तरह हिमालय में हरएक तीर्थक्षेत्र के पीछे एक-एक गाथा है जिन्हें भावुक लोग पुराणों में पढ़ सकते हैं। यहाँ पर महत्त्वपूर्ण स्थानों का ही वर्णन किया जाता है, नहीं तो यह ग्रन्थ तीन-चार गुना बड़ा हो जायगा और कई भागों में छापना पड़ेगा। मेरा विचार यात्रियों और प्रवासियों को उस स्थान तक योग्य रास्ते से पहुँचाने लायक विवरण देना है और कई जगह जो-जो सुविधाएँ मिल सकती हैं उनके बारे में यथाशक्य परिचय देना है।

श्री बदरी-केदार यात्रा

ऋषिकेश (११०० फीट)—हरिद्वार से श्री बदरी-केदार यात्रा करने पर भी उत्तराखण्ड-यात्रा का मुख्य केन्द्र ऋषिकेश ही है। र. सत्यनारायण मन्दिर, रामनगर के पास आत्मविज्ञान-भवन, पशुलोक, व आश्रम आदि देखते हुए त्रिवेणी-संगम पर पहुँचा जाता है। टहरने के लिए बाबा काली कमलीवाले की धर्म-शाला, सिंध-पंजाबी जगाधरीवाली धर्मशाला, आन्ध्र धर्मशाला, नेपाली आदि मुख्य क्षेत्र यहाँ पर सब प्रकार की सुविधाएँ मिल जाती हैं। यहाँ कई साधु के आश्रम हैं। इनमें डेढ़ मील पर कैलाश-आश्रम है और आगे थोड़ी श्री स्वामी शिवानन्दजी के 'दिव्यजीवन-संघ', रामाश्रम आदि कई दर्शनीय हैं। गंगाजी के पार गीता-भवन, परमार्थ-निकेतन और स्वर्गाश्रम भी स्थान हैं। सत्संग होता है और ठहरने की सब प्रकार की सुविधाएँ ऋषिकेश में भरतजी का मन्दिर देखने-योग्य है। साधना के लिए यहाँ के सब आ में सुविधा है। यहाँ से हिमालय और गंगाजी का दृश्य देखने-योग्य है। ऋषि मुनि की रेती होती हुई एक सड़क नरेन्द्रनगर को जाती है, जहाँ से यात्री टे धरासू होते हुए गंगोत्री-यमनोत्री जा सकते हैं। मोटर से केदार-बदरी लक्ष्मण-झूला देखते हुए गंगा की दाईं तरफ लक्ष्मण-झूला और पैदल लक्ष्मणझूला-पार करके गंगा की बाईं तरफ गरुडचट्टी होते हुए देवप्रयाग हैं, जो यहाँ से ४४ मील दूर है। गंगा पर लोहे की रस्सियों पर लक्ष्मण-झूला है जो यात्रियों के देखने-योग्य है। सारे भारत में ऐसा कोई पुल नहीं है। बी

यमनोत्री जानेवाले ऋषिकेश से नरेन्द्रनगर, टेहरी, धरासू होते हुए वरकोट (गंगाणी) तक मोटर से, फिर २६ मील पैदल चलकर यमनोत्री जाते हैं या सीधे धरासू से उत्तरकाशी तक मोटर से और फिर ५६ मील पैदल चलकर गंगोत्री पहुँच सकते हैं।

गरुड़-चट्टी—स्वर्गाश्रम तो मेरे लिए आत्मदर्शन का मार्गदर्शक बन गया। यहाँ के सुखद एकान्तिक जीवन के 'भूमानन्द' से ही प्रेरित होकर मैंने सारे हिमालय की यात्रा की। मेरे जैसे मस्त होकर घूमनेवालों के लिए यह स्थान मार्गदर्शक-स्तम्भों का काम करेगा। अपनी-अपनी संस्कृति, भावना और साधना के अनुसार हरेक को अलग-अलग अनुभव हो सकते हैं। इसलिए जहाँ आवश्यक समझूँगा, वहीं पर थोड़ा-सा अपना अनुभव भी देता जाऊँगा।

यहाँ से ४ मील की दूरी पर ५५०० फ़ीट की ऊँचाई पर 'नीलकंठ' महादेव हैं जो दर्शनीय हैं। यहाँ एक मन्दिर और धर्मशाला है। यहाँ से हिमालय की बर्फीली चोटियों और देश के मैदानों का चित्ताकर्षक दृश्य दिखाई देता है। यहाँ पर नेपाल-राजा की एक गढ़ी है और इस पहाड़ में कई प्रकार की वनस्पतियाँ मिलती हैं।

ऋषिकेश से पैदल चलने में हिमालय का प्रशान्त प्रकृति-दर्शन देखने को मिलता है। मेरी यात्रा तो आत्मस्फूर्ति से शुरू हुई थी और मुझे हरेक वस्तु में उसका दर्शन करते हुए सब सुख-दुःखों को समान मानकर दिव्य शक्ति का अनुभव करना था, इसलिए एक कंबल के सिवाय डेढ़-दो हाथवाले खादी के टुकड़ों से ही सर्दी सहन करके यात्रा पूर्ण की। मुझे कहीं एक काँटा भी न लगा और मैं बीमार भी नहीं पड़ा। मैं यहाँ से लक्ष्मण-झूला पार करके प्रशांत वातावरण में गरुड़-चट्टी पहुँचा। इस स्थान में गरुड़जी का मन्दिर और एक धर्मशाला है। यहाँ पर एक बगीचा है। साधकों के लिए दो-तीन कुटीरें बनी हैं। मैं कई बार यहाँ आकर एकान्त में रहता था। यहाँ पर कलकत्ता के एक महाशय घास की कुटिया बनाकर गायत्री-पुरश्चरण कर रहे थे। उनका नाम पंडित भोलानाथ शर्मा था। उन्होंने मुझे अपनी कुटिया में ही ठहराया और दूसरे दिन जब मैं चला तो मेरी छोटी गठरी उठाकर वे एक मील तक मेरे साथ आये और आशीर्वाद के साथ मुझे विदा किया। आगे मैंने बन्दर-भेल चट्टी में स्नान करके खिचड़ी बनाने के लिए गठरी खोली तो चावल-दाल के बीच में चाँदी के दस रुपये पाये। यह सब गुप्तगामी परमात्मा का ही खेल है। नहीं तो यह प्रेरणा पंडित भोलानाथजी को कैसे हुई? और मेरे पास

रुपया-पैसा नही है, यह उन्हे कैसे पता लगा ? उसकी अगाध लीला का वर्ण करना सहस्रमुख के शेष के लिए भी कठिन है। इसी से मैं केदारनाथ-यात्रा · बदरीनारायण तक पहुँच सका। यहाँ पर महाराज मैसूर की तरफ से मेरे स्वाग की तैयारी की गई थी। मेरे पास कोई विशेष समान नही था, इसलिए रोज १५ २० मील चला जाता था, दो दिन के लिए खाद्यान्न बचा हुआ था। भगवान् भरोसे पर रास्ता चलना और सब भार भी उन्हीं पर डालकर सब सहन · जाना ही मेरा कर्तव्य था। कल की फिक्र या आगे की चिन्ता तो थी ही नही मुझे इस यात्रा में नित्य कई नये अनुभव प्राप्त होते गये और यात्रा भी आनन्द पूर्ण हो गई।

जैसे श्रीगोविन्द अपने वाहन गरुड पर आरूढ होकर भक्तो के योगक्षेम लिए दौड पडते हैं, वैसे ही गरुड़-चट्टी में मुझे श्री भोलानाथजी से इसी प्रकार क अनपेक्षित सहायता मिली, और इसीने आगे हिमालय के परमदैविक अन्तर्दर्शन सहायक होकर महाद्वार ही खोल दिया। यहाँ प्रकृति के रमणीय वैभव मे मैं अ आपको भूल गया। सर्वत्र अचिंतनीय दैवी सहायता मिलती गई। सब तरफ भग वान् का करुणा-हस्त फैला हुआ था। गरुड-चट्टी से केदारनाथ होते हुए बदरीनारा यण तक के दृश्य ने और गंगोत्री-यमनोत्री के मंगल-क्षेत्र के अनिर्वचनीय दृश्य मुझे मुग्ध कर दिया। यहाँ का वर्णन शब्दो से पूर्ण तो होगा नही, और सा वस्तु भी सती को पति से मिली हुई गुप्तसिद्धि की तरह गोप्य है। क्या वर्णन करूँ. यहाँ पर प्रकृति, संस्कृति और व्यक्तित्व का विकास, सभी एक से एक बढ़ · अनन्वयालंकार की तरह स्पर्धा करते दीखते थे। गौरीकुण्ड से थोडी दूर चलने

समय सामने के सभी मकान, धर्मशालाएँ आदि बर्फ से ढकी हुई थीं। मैं उसी पर चलता हुआ मन्दिर के चबूतरे पर बैठ गया। मन्दिर का पिछला भाग बर्फ से गिर गया था। तीनों तरफ के हिमशिखरों पर सूर्यास्त की स्वर्ण-कांति छाई हुई थी। इस स्वर्णिम दृश्य से मेरे अन्दर चैतन्यदायक शक्ति प्राप्त हो रही है, यह अनुभव भी हुआ। इसी समय वहां एक दिव्य योगी का दर्शन हुआ। उनकी सहायता से मैं बच गया। बदरी के रास्ते में मैसूर के श्री कृष्णराज वडेयर बहादुर का सहारा मिलने से यात्रा आनन्दपूर्वक पूर्ण हुई। मैं परीक्षा में जीत गया और भगवान् पर सब भार डालकर चलने से सब सिद्ध हो जाता है—इसका भी मुझे पूरा-पूरा विश्वास हो गया। (इसका सम्पूर्ण वर्णन केदारनाथ में मिलेगा।)

देवप्रयाग—भागीरथी और अलकनन्दा दोनों के संगम पर देवप्रयाग स्थित है। यहां पर नदी पार करने के लिए पुल है। रहने के लिए कई धर्मशालाएँ हैं। पोस्ट आफिस, तारघर, डाक-बँगला और सुन्दर बाजार होने से यहां अनेक आवश्यक सुविधाएँ मिल जाती हैं। गंगा के दाहिने किनारे से आनेवाला मार्ग यहीं पर आकर मिलता है। मैं जिस पगडंडी से आया, वह बायें किनारे से देवप्रयाग आती है। यहां पर बदरीनारायण के पण्डे भी रहते हैं, जिनसे यात्रियों को सब सुविधाएँ मिलती हैं। ऋषिकेश से यहां तक ५-६ स्थानों में स्नान करने की अनुकूलता है।

यात्री संगम में लोहे की कड़ी पकड़कर स्नान करते हैं और बाद में रघुनाथ-मन्दिर, क्षेत्रपाल, बैतालशिला, इन्द्रद्युम्न, भरत-मन्दिर और बिल्व-लिंगों के दर्शन करके केदारनाथ बदरीनाथ को जाते हैं। यहां पितरों के पिण्ड भी समर्पण किए जाते हैं। रावण-वध करने से श्रीराम पर जो दोष आया था उस दोष को दूर करने के लिए राम ने यहां तपस्या की थी। मोटर से जानेवाले कीर्तिनगर होते हुए श्रीनगर पहुँचते हैं। पैदल चलनेवाले पुल को पार करके बाईं ओर होकर जाते हैं। बीच में लगनेवाली चट्टियों का विवरण अन्त में दिया गया है। देवप्रयाग से श्रीनगर २४ मील दूर है। कोटद्वार से आनेवाला मोटर-मार्ग श्रीनगर के पास आकर मिलता है। पौड़ी और लैन्सडौन भी उसी तरफ हैं।

श्रीनगर और कीर्तिनगर—श्रीनगर कीर्तिशाह ने बसाया है और कीर्तिनगर भी उन्होंने ही बसाया है। यहां पर ठहरने के लिए बाबा काली कमलीवाले की धर्मशाला है। वहां पोस्ट आफ़िस, दवाखाना, तार घर और अच्छा बाजार होने के कारण हर जरूरी वस्तु मिल जाती है।

श्री शंकराचार्य के शिष्य पद्मनाभजी ने गंगा के उस पार कमलेश्वर और कलकेश्वर महादेव के दर्शनीय मन्दिरों की स्थापना की है। इसके अतिरिक्त यहाँ नागेश्वर, राजेश्वर, अष्टावक्र महादेव के मन्दिर भी हैं। गरमी में काफी गरमी होती है।

रुद्रप्रयाग—देवप्रयाग से मोटर-द्वारा ५९ मील चलकर रुद्रप्रयाग मिलता है। यहाँ पर अलकनन्दा और मन्दाकिनी दोनों का संगम होता है। यहीं से अलकनन्दा पार करके मन्दाकिनी के किनारे केदारनाथ का मार्ग है। यहाँ प कालीकमलीवालों की धर्मशाला है। सीधे बदरीनारायण जानेवाले अलकनन्दा किनारे-किनारे कर्णप्रयाग, नन्दप्रयाग, चमोली होते हुए सीधे जोशीमठ मोटर से पहुँच सकते हैं। केदारनाथ जाने के लिए यात्री लोग संगम में स्नान कर रुद्रनाथ का दर्शन करके अगस्त्यमुनि पहुँचते हैं। यहाँ (अगस्त्यमुनि में) धर्मशाला दुकानें व हाई स्कूल आदि हैं। यात्री यहाँ से गुप्तकाशी तक मोटर-द्वारा जाते हैं रास्ते में शोणितपुर में कई मन्दिर और मूर्तियाँ प्रेक्षणीय हैं। यह सब देखते हुए गुप्तकाशी पहुँचा। इस प्रकार लगातार बारह दिन चलकर मैं हरिद्वार से पहुँच सका। यह स्थान हरिद्वार से १२५ मील है।

गुप्तकाशी—यहाँ से हिमालय का स्वर्गीय दृश्य देखकर मन और मस्तिष्क हो गये। यहाँ पर कई धर्मशालाएँ और दूकानें हैं। विश्वनाथ-मंदिर के आँगन गुप्तगंगा, गोमुख और गजमुख से निकलकर मणिकर्णिका-कुण्ड में गिरती है। पर गुप्त दान देने की प्रथा है। शोणितपुर में रहने पर भी केदारनाथ के पण्डे से पीछे लग जाते हैं। यहाँ से सामने ऊखीमठ दिखाई देता है जहाँ छः मास

त्रियुगी-नारायण पहुंचा। यहां ब्रह्मकुण्ड में स्नान और विष्णुकुण्ड में आचमन करके नारायण का दर्शन किया। यहां सभी यात्री सरस्वती-कुण्ड में तर्पण देकर सामने अग्निकुण्ड में हवन करते हैं। यहां ठहरने के लिए धर्मशालाएं और दूकानें हैं। गंगोत्री से बूढ़ा केदार होते हुए त्रियुगीनारायण पहुंचकर केदारनाथ पहुंचा जाता है। यहां से केदारनाथ १३ मील है।

गौरीकुण्ड—त्रियुगी-नारायण से गौरीकुण्ड पांच मील है। गौरीकुण्ड में गर्मजल के स्रोत हैं जिनमें यात्री स्नान करते हैं। यहां पर गगनचुम्बी वृक्षों के बीच में से मन्दाकिनी मन्द-मन्द बहती है। दूर से ही बर्फीले पर्वत चमकते हुए दिखाई देते हैं। यहां के गंधक के स्रोतों में नहाने से शरीर हल्का हो जाता है। गौरी का दर्शन करके रामवाड़ा होते हुए केदारनाथ पहुंचा जाता है। यह मार्ग बहुत कठिन है क्योंकि सर्वत्र बर्फ ही बर्फ रहती है। यात्री चाहें तो बीच में रामवाड़ा चट्टी में विश्राम कर सकते हैं। मैं जब यहां पहुंचा था उस समय यहां कोई नहीं था। यहां से आगे कड़ी चढ़ाई है और बीच-बीच में हिम भी रहता है। उसमें चलना आसान नहीं। यहां की यात्रा आरम्भ करने के कई दिन पहले ही आ जाने से मेरे सम्मुख जो कठिनाइयां उपस्थित हुईं, उनका वर्णन आगे है। गौरीकुण्ड तक मोटर-सड़क बनकर तैयार है।

केदारनाथ

मैं यात्रा से कई दिन पहले ही केदारनाथ पहुंच गया था। उस समय यहां पर बर्फ काफ़ी थी। मार्ग तैयार करनेवाले बर्फ काटकर मार्ग बना रहे थे। उन्होंने मुझसे कहा कि मन्दिर व सम्पूर्ण केदार बर्फ से ढका हुआ है। आप वहां नहीं जा सकेंगे। यदि आप पहुंच भी गये तो आपको बिना दर्शन किये ही वापस लौटना पड़ेगा। मैंने उनकी बात नहीं मानी और आगे का मार्ग पार कर लिया। यह देखकर अन्य तीन यात्रियों ने भी मेरा साथ दिया। मैंने उनसे कहा कि समय आने पर आपको मरने के लिए तैयार रहना पड़ेगा। "आप-जैसे मार्ग-दर्शक के साथ कुछ भी आपत्ति नहीं आ सकती"—यह कहकर वे मेरे पीछे चलने लगे। मुझे तो यह प्रेरणा हो गई थी कि वहां पहुंचकर दर्शन अवश्य होंगे। यही सोचकर मैं आगे चल दिया। मैंने बीच में रामवाड़ा चट्टी में विश्राम किया। इस चट्टी से आगे दूर तक कहीं वृक्ष नहीं दिखाई दे रहे थे, केवल बर्फ के शिखर मात्र दिखाई देते थे। कहीं-कहीं

पर गुलाब के फूलों से विकसित पौधे थे। सर्वत्र बर्फ थी, यहाँ तक कि नदी भी जम गई थी और कहीं दूर पर जरा-सा पानी उछलता हुआ-सा दिखाई देता था। यह मार्ग इतना भयंकर है कि पैर फिसलने पर आदमी कई हजार फीट नीचे चला जाय। मैं यहीं एक जगह घुटनों तक बर्फ में फँस गया था, किन्तु वहीं पर ऊपर से बहती हुई एक लकड़ी मिल गई जिसे बर्फ में गाड़कर उसके सहारे मैं ऊपर उठा और फिर आगे चल सका।

बर्फ में योगीजी के दर्शन—मेरा यह हाल देखकर सभी साथी घबराकर वहीं रुक गये। किसी में आगे चलने की हिम्मत नहीं रही। मुझे तो मरने का भय था नहीं और 'कल्याणी' आश्वासन देती हुई मुझे आगे ले जा रही थी। नंगे पैर बर्फ में चलने से मेरे हाथ-पैर सिकुड़ गये थे। इस प्रकार ठिठुरता हुआ मैं केदारनाथ के मंदिर तक पहुँच गया। मैं मन्दिर के अग्रभाग में बने हुए चबूतरे पर बैठ गया। यहाँ के हिमशिखरों का स्वर्गीय दृश्य देखकर मैं कुछ क्षणों तक अपने-आपको भूल गया। यहाँ की दिव्य छटा वर्णनातीत है। उस समय तीनों ओर घिरे हुए उन्नत हिमशिखरों पर सूर्यास्त की लाली छाई हुई थी। मन्दिर के पीछे २२ हजार फुट उन्नत हिमशिखर किरीट के समान दिखाई दे रहा था। उस शिखर से कई प्रवाह निकलते हैं। वहाँ के सुन्दर और पवित्र वातावरण से मुझे मानसिक शांति प्राप्त हो गई। शीत के कारण शरीर की हालत बिगड़ती जा रही थी, हाथ-पैर व अन्य इन्द्रियाँ सुन्न होती जा रही थीं और रक्त-संचार भी अच्छी तरह नहीं हो रहा था। यद्यपि इन्द्रिय-शक्ति कम हो रही थी, फिर भी आन्तरिक दिव्यानन्द उमड़ रहा था जिससे अभी दस मील चलने की हिम्मत थी। उसी समय पास के एक

त्रियुगी-नारायण पहुंचा। यहां ब्रह्मकुण्ड में स्नान और विष्णुकुण्ड में आचमन करके नारायण का दर्शन किया। यहां सभी यात्री सरस्वती-कुण्ड में तर्पण देकर सामने अग्निकुण्ड में हवन करते हैं। यहां ठहरने के लिए धर्मशालाएं और दूकानें हैं। गंगोत्री से बूढ़ा केदार होते हुए त्रियुगीनारायण पहुंचकर केदारनाथ पहुंचा जाता है। यहां से केदारनाथ १३ मील है।

गौरीकुण्ड—त्रियुगी-नारायण से गौरीकुण्ड पांच मील है। गौरीकुण्ड में गर्मजल के स्रोत हैं जिनमें यात्री स्नान करते हैं। यहां पर गगनचुम्बी वृक्षों के बीच में से मन्दाकिनी मन्द-मन्द बहती है। दूर से ही बर्फीले पर्वत चमकते हुए दिखाई देते हैं। यहां के गंधक के स्रोतों में नहाने से शरीर हल्का हो जाता है। गौरी का दर्शन करके रामवाड़ा होते हुए केदारनाथ पहुंचा जाता है। यह मार्ग बहुत कठिन है क्योंकि सर्वत्र बर्फ ही बर्फ रहती है। यात्री चाहें तो बीच में रामवाड़ा चट्टी में विश्राम कर सकते हैं। मैं जब यहां पहुंचा था उस समय यहां कोई नहीं था। यहां से आगे कड़ी चढ़ाई है और बीच-बीच में हिम भी रहता है। उसमें चलना आसान नहीं। यहां की यात्रा आरम्भ करने के कई दिन पहले ही आ जाने से मेरे सम्मुख जो कठिनाइयां उपस्थित हुई, उनका वर्णन आगे है। गौरीकुण्ड तक मोटर-सड़क बनकर तैयार है।

केदारनाथ

मैं यात्रा से कई दिन पहले ही केदारनाथ पहुंच गया था। उस समय यहां पर बर्फ काफ़ी थी। मार्ग तैयार करनेवाले बर्फ काटकर मार्ग बना रहे थे। उन्होंने मुझसे कहा कि मन्दिर व सम्पूर्ण केदार बर्फ से ढका हुआ है। आप वहां नहीं जा सकेंगे। यदि आप पहुंच भी गये तो आपको बिना दर्शन किये ही वापस लौटना पड़ेगा। मैंने उनकी बात नहीं मानी और आगे का मार्ग पार कर लिया। यह देखकर अन्य तीन यात्रियों ने भी मेरा साथ दिया। मैंने उनसे कहा कि समय आने पर आपको मरने के लिए तैयार रहना पड़ेगा। "आप-जैसे मार्ग-दर्शक के साथ कुछ भी आपत्ति नहीं आ सकती"—यह कहकर वे मेरे पीछे चलने लगे। मुझे तो यह प्रेरणा हो गई थी कि वहां पहुंचकर दर्शन अवश्य होंगे। यही सोचकर मैं आगे चल दिया। मैंने बीच में रामवाड़ा चट्टी में विश्राम किया। इस चट्टी से आगे दूर तक कहीं वृक्ष नहीं दिखाई दे रहे थे, केवण बर्फ के शिखर मात्र दिखाई देते थे। कहीं-कहीं

पर गुलाब के फूलों से विकसित पौधे थे। सर्वत्र वर्फ थी, यहाँ तक कि नदी भी गई थी और कही दूर पर जरा-सा पानी उछलता हुआ-सा दिखाई देता था। मार्ग इतना भयंकर है कि पैर फिसलने पर आदमी कई हजार फीट नीचे जाय। मैं यहाँ एक जगह घुटनों तक वर्फ मे फँस गया था, किन्तु वही पर बहती हुई एक लकडी मिल गई जिसे वर्फ मे गाड़कर उसके सहारे मैं ऊपर और फिर आगे चल सका।

वर्फ में योगीजी के दर्शन—मेरा यह हाल देखकर सभी साथी घबराकर रुक गये। किसी मे आगे चलने की हिम्मत नही रही। मुझे तो मरने का भय नही और 'अन्तर्वाणी' आश्वासन देती हुई मुझे आगे ले जा रही थी। नगे पैर मे चलने से मेरे हाथ-पैर सिकुड़ गये थे। इस प्रकार ठिठुरता हुआ मैं के मंदिर तक पहुँच गया। मैं मन्दिर के अग्रभाग मे बने हुए चबूतरे पर बैठ ग वहाँ के हिमशिखरो का स्वर्गीय दृश्य देखकर मैं कुछ क्षणो तक अपने-आपको गया। वहाँ की दिव्य छटा वर्णनातीत है। उस समय तीनो ओर घिरे हुए हिमशिखरों पर सूर्यास्त की लाली छाई हुई थी। मन्दिर के पीछे २२ हजार उन्नत हिमशिखर किरीट के समान दिखाई दे रहा था। उस शिखर से कई निकलते हैं। वहाँ के सुन्दर और पवित्र वातावरण से मुझे आरंभिक शांति प्र हो गई। शीत के कारण शरीर की हालत बिगडती जा रही थी, हाथ-पैर व इन्द्रियाँ सुन्न होती जा रही थी और रक्त-संचार भी अच्छी तरह नही हो था। यद्यपि इन्द्रिय-शक्ति कम हो रही थी, फिर भी आन्तरिक दिव्यानन्द रहा था जिससे अभी दस मील च ने

हो गया। उनका संकेत पाकर मैं आग के पास बैठ गया। महात्माजी का सारा शरीर फैली हुई जटा और दाढ़ी में ही छिपा हुआ था। उनके शरीर पर कोई भी वस्त्र नहीं था।

कुटिया के बाहर बर्फ पड़ रही थी और अन्दर आग जल रही थी, इसलिए शीतोष्ण की विपरीतता के कारण इस प्रकार के जलवायु को मेरा शरीर सहन न कर सका और मैं बेहोश हो गया। थोड़ी देर बाद होश आने पर मैंने देखा कि महात्मा ने मेरे साथ के पीछे छूटे हुए लोगों के लिए एक नवयुवक ब्रह्मचारी को वहाँ भेज दिया है। पुनः सबके एक ही जगह मिल जाने से सभी आनन्दित हो गये उस समय योगी का वह शिष्य हमें केदारनाथजी के दर्शनार्थ मन्दिर में ले गया। दरवाज़े पर सीलबन्द ताला लगा था। उन्होंने हमें दरवाज़े को ऊपर से दबाने के लिए कहा, और स्वयं लोहे की संडासी से नीचे की कील हटाई जिससे अन्दर जाने-योग्य रास्ता हो गया। हम सब अन्दर गये। वहाँ दीपक का नीला प्रकाश था और उसे हमने तेज़ कर दिया। यही ज्योति-दर्शन कहलाता है। पट बन्द होने पर भी छः मास तक यह ज्योति जलती रहती है। हम सबने गंगाजल से स्वयम्भू केदारनाथ लिंग का पूजन किया और पुष्प चढ़ाकर, तीर्थ लेकर बाहर आये। बाहर आकर दरवाज़ा ठीक जगह पर पहले की तरह बिठा दिया गया। उसके बाद बर्फ में ही दौड़ते हुए हम सब जब साधु की कुटिया में पहुँचे तो साधु ने हमको प्रसाद के रूप में बड़े-बड़े लड्डू दिये। उनसे हमारी क्षुधा शांत हुई। हम बहुत थक गये थे अतः योगिवर्य को प्रणाम करके हम सब सो गये। रात-भर बर्फ गिरती रही, अतः ठंड भी बढ़ती गई।

प्रातः उठकर हमने देखा, योगी और उनका शिष्य दोनों चले गये थे। दिन के बारह बजे तक हम चारों, मार्ग साफ़ होने तक रुके रहे; परन्तु पुनः हमें उनके दर्शन न हो सके। वहाँ के कुण्ड में स्नान करके मैं फिर बेहोश हो गया था। प्राणायाम-क्रिया से मेरे अन्दर फिर गर्मी आ गई। भगवान् भास्कर के चमकने से रास्ता भी साफ़ हो गया। हम सब श्री केदारनाथजी की कृपा से योगिवर्य का नाम लेते हुए दोपहर तक गौरीकुण्ड पहुँच गए। भोजन-उपरान्त उसी रास्ते से दो दिन चलकर नाला-चट्टी के पास मन्दाकिनी पारकर ऊखीमठ पहुँच गये। यहाँ से आगे तुंगनाथ होते हुए श्री बदरीनारायण जाने का रास्ता प्रारम्भ होता है। मोटर से जानेवाले फिर गुप्तकाशी से रुद्रप्रयाग पहुँचकर मोटर बदलकर चमोली होते हुए

जोशीमठ पहुँच सकते हैं।

ऊखीमठ—केदारनाथ का मन्दिर जब शीतकाल में बर्फ से ढक जाता है उत्सव-मूर्तिकी पूजा ऊखीमठ में होती है, बाणासुर की पुत्री ऊषा ने इस स्थान स्थापना की थी। इसीलिए इस स्थान का नाम ऊखीमठ पड़ा है। मन्दिर में ... मध्यमेश्वर, अनिरुद्ध-ऊषा और चित्रलेखा की मूर्तियाँ स्थापित हैं। यहाँ कालीकमलीवाले की धर्मशाला ठहरने-योग्य है। यहाँ से १८ मील पर ... में द्वितीय केदार-मध्यमहेश्वर हैं। यह रास्ता भी चमोली तक मोटर का हो गया है तृतीय केदार तुंगनाथ को चोपता से दूसरा रास्ता जाता है जो लगभग १५ मील दूर है। ऊखीमठ से चमोली तक मोटर-सड़क तैयार है। मोटर चलेगी।

तुंगनाथ—ऊखीमठ से कठिन चढ़ाई करकर यहाँ पर पहुँचने के लिए काफी मेहनत उठानी पड़ी। केदारनाथ से ठंड भी अधिक थी और बर्फ गिरने से चढ़ने समय फिसलन हो गई। ऊपर पहुँचने पर देवलोक का अनुभव हुआ जिसमें समस्त श्रम का परिहार हो गया। तदुपरान्त चमकते हुए बादलों की गर्जना में बर्फ से गीले होकर ... पर पहुँचे तो वहाँ मन्दिर और एक जीर्ण धर्मशाला मिली। वहाँ भी धर्मशाला में ताला बन्द था। उसके एक टूटे हुए कोने से हम सब अन्दर कूदे और वहाँ के भोजपत्र और लकड़ी से आग सुलगाई। चढ़ते-चढ़ते गला सूख गया था। लेकिन वहाँ पानी कहाँ? हिमराज के राज्य में उसके ही प्रसाद हिम को बरतन में भरकर लाये और आग पर रखकर पिघलाने से पानी मिला। यह है यात्रा का अनुभूत आनन्द। नीचे की ओर काले बादल घिरे हुए थे। गरजने के साथ खूब वर्षा हो रही थी। थोड़ी ही देर में नदी-नाले भर जाने से एक अ... मि...

से प्रसिद्ध है। यहाँ गोपेश्वर और चण्डी के मन्दिर भी हैं, जिसके पुजारी को रावल कहते हैं। अब यह स्थान ज़िले का मुख्य केन्द्र बन गया है। इसलिए चमोली के सब कार्यालय यहीं स्थानान्तरित हो रहे हैं। मोटर की सड़क भी चमोली से ऊखीमठ तक बन कर पूरी हो रही है। चमोली यहाँ से तीन मील दूर है।

रुद्रनाथ—गोपेश्वर से १० मील पर १५,०००फीट की उँचाई पर रुद्रनाथ पहुँचना पड़ता है। वहाँ पर ठहरने के लिए एक छोटी-सी धर्मशाला है। यह स्थान, तुंगनाथसे भी उँचाई पर होने के कारण अधिक ठण्डा है। उत्तराखण्ड-यात्रा में इतनी उँचाई पर कोई भी क्षेत्र नहीं है। यहाँ कई प्रकार की वनस्पति व जड़ी-बूटियाँ मिलती हैं। पूजा गर्मियों में छः मासमात्र होती है।

चमोली—यही ज़िले का प्रमुख स्थान रहा है। यहाँ अलकनन्दा के पार गाँव में धर्म शाला, बाज़ार पोस्ट आफ़िस, तारघर आदि हैं। रुद्रप्रयाग से कर्णप्रयाग होते हुए जो सीधी मोटर-सड़क जोशीमठ तक जाती है। वह यहीं से होती हुई जाती है। यहाँ से बद्रीनारायण केवल ४८ मील रह जाता है। मोटर पीपलकोटी होते हुए जोशीमठ पहुँचती है। मेरा यहीं पर मैसूर-महाराज के परिवारवालों से परिचय हुआ। एक दिन ठहर कर आगे बढ़ा।

घोना-सरोवर—चमोली से १५ मील और रमणी से ८ मील पर यह सुन्दर सरोवर है। गढ़वाल में इतना बड़ा सरोवर दूसरा कोई नहीं है। यह स्थान डुमि या गोहना गाँव के पास है। इससे बिरही नदी निकलती है। चमोली से पाँच मील दूरी पर यह नदी अलकनन्दा में मिलती है; जहाँ से ८-१० मील कठिन चढ़ाई चढ़ जाने से घोना-सरोवर आ जाता है। सरोवर का सौन्दर्य देखते ही बनता है। यह वर्णनातीत है। ज़िला-अधिकारी से अनुमति मिलने पर ही बोट हाउस में ठहरने को स्थान मिलता है।

पीपलकोटी—सभी साथियों को चमोली में छोड़कर मैं वहाँ से अकेला ही आगे बढ़ा। इस कठिन यात्रा में वे थक गये और दो-तीन दिन विश्राम करके उन्होंने चलने का निश्चय किया था। रास्ते में मैसूर के श्रीकृष्णराज वडेयर बहादुरजी का दर्शन हुआ। वे अकेले ही साधारण वस्त्रों में जा रहे थे। थोड़ी दूर पर एक नौकर था उन्हें नित्यप्रति रास्ते में आनेवाले डाक-बँगले तक जाना होता था। मांडुकेश्वर तक प्रतिदिन उनका और मेरा मिलन होता रहा। जब मैं नमस्कार करता तो वे भी नमस्कार कर लेते थे। उनके साथ मुझे बातचीत तो करनी नहीं थी।

दोनों को एक ही रास्ते पर स्वतन्त्र रूप से चलकर श्रीमन्नारायण के पास पहुँचना था। मैं प्राय कन्नड़ भजन गाता था। इसी से मन्नको मालूम हो गया कि मैं उन्हीं के प्रान्त का यात्री हूँ।

पीपलकोटी एक अच्छी बस्ती है। यहाँ कई धर्मशालाएँ हैं। यहाँ शिलाजीत, कस्तूरी, चँवरी-बाल, वनस्पति, ऊनी कपड़े और अन्य आवश्यक वस्तुएँ मिलती हैं। पास ही स्लेट के पत्थर के पहाड़ हैं। टिहरी महाराजा की तरफ से मार्ग में मण्डप, तम्बू, कमानें आदि बँधी थीं। मैसूर महाराज के साथ टिहरी महाराज के दो अधिकारियों का प्रबन्ध था। उनके साथियों से भी मेरा परिचय होता गया। उनमें से संस्कृत के विद्वान् और पुरोहित श्रीनारायण शास्त्री के प्रेम-परिचय ने मुझे उनकी पार्टी में रहने के लिए बाध्य किया। पाण्डुकेश्वर में उनके साथ भोजन किया और फिर बदरीनाथ में साथ ठहरने का वचन देकर मैंने अकेले ही यात्रा पूरी की। उसका वर्णन आगे मिलेगा। मार्ग में गरुड़-गंगा में एक दिन ठहरकर मैं जोशीमठ पहुँचा।

जोशीमठ—सम्पूर्ण भारत में श्री शंकराचार्यजी के जो चार मठ हैं, यह उनमें से एक है। बदरीनारायण-मन्दिर जब बर्फ से ढका रहता है तब श्री बदरीनारायण की पूजा यहीं पर होती है। पुजारी 'रावल' भी यहीं रहते हैं। यहाँ के जिस मन्दिर में नृसिंह शालिग्राम हैं वहीं नारायण की भी पूजा होती है। इसके अतिरिक्त ज्योतिर्लिंग वासुदेव, महादेव और अष्टकालीजी के मन्दिर भी दर्शनीय हैं। नम-गंगा दण्डधारा में स्नान करके यात्री इन मन्दिरों के दर्शन करते हैं। यहाँ से डेढ़ मील पर श्री शंकरमठ है। वहीं पर आद्य शंकराचार्य ने एक वृहद् वृक्ष के नीचे तपस्या की थी।

पाण्डुकेश्वर—कहते हैं कि पाण्डु राजा ने यहाँ पर माद्री और कुन्ती के साथ तपस्या की और उसके बाद पाँचो पाण्डव उत्पन्न हुए। इसीलिए इसका नाम पाण्डुकेश्वर पड़ा। यहाँ योग-बदरी और वासुदेवजी के मन्दिर हैं। पाण्डवों का बाल्यकाल यहीं पर बीता। यहाँ से हेमकुण्ड-लोकपाल और फूलों की घाटी के लिए पृथक् मार्ग हैं।

फूलों की घाटी और हेमकुण्ड-लोकपाल—पाण्डुकेश्वर से ८ मील कठिन पगडंडी से चलकर सम्पूर्ण तैयारी के साथ यहाँ पहुँचा जाता है। बरसात के बाद यहाँ रंग-बिरंगे फूल खिलते हैं। ये फूल लगभग २५० किस्म के होते हैं। कॉमेण्ट पर्वतारोही दल ने सन् १९३१ में इस स्थान का पता लगाया था। प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रेमी सम्पूर्ण तैयारी के साथ यहाँ पहुँचते हैं। इसकी मनोरम छटा को देखने के लिए देश-विदेश के यात्री आते हैं; लेकिन इसका मार्ग, यात्रा के मार्ग से भिन्न है। इधर रास्ते में घाँघरिया नामक स्थान है जिसमें विश्राम करने के लिए दो कमरे हैं। इसकी ऊँचाई चौदह हजार फीट है।

इसकी पूर्व-दिशा में २ मील पर हेमकुण्ड-लोकपाल सरोवर और गुरुद्वारा है। गुरु गोविन्दसिंह को यहीं पर खालसा-पन्थ स्थापना करने की प्रेरणा हुई थी। सिक्ख लोग भी यहाँ की यात्रा करते हैं। यह सरोवर वर्णनातीत है। स्वयं देखकर ही इसका आनन्द प्राप्त किया जा सकता है। यहाँ से हनुमान-चट्टी भी पहुँच सकते हैं, किन्तु बिना मार्गदर्शक के नहीं पहुँचा जा सकता कारण कि मार्ग बहुत विकट है। यहाँ से पाण्डुकेश्वर आकर हनुमान-चट्टी जाना सुविधाजनक है।

हनुमान-चट्टी—पाण्डुकेश्वर से ६ मील पर हनुमान-चट्टी है। यहाँ हिम की अधिकता से अधिक ठण्ड पड़ती है। मार्ग के वृक्ष, बूटियाँ व झरने रमणीय हैं। यहाँ से आगे भोजपत्र के पेड़ों के सिवा दूसरे पेड़-पौधे नहीं होते। कई स्थानों पर नदियों का पानी जम जाता है, इस स्थान पर हनुमानजी ने अपनी पूँछ का चबूतरा बनाकर भीम का गर्व भंग किया था, ऐसा वर्णन महाभारत में मिलता है।

श्री बदरीनारायण—बदरीनाथ का इतिहास बहुत पुराना है। उसका आरम्भ वैदिक युग से ही होता है। पुराणों में इसकी प्रशंसाएँ अनेक स्थलों पर मिलती हैं। यह आम विश्वास है कि कुछ वैदिक मंत्र और अधिकांश उपनिषदों का गान आरम्भ में बदरिकाश्रम में ही हुआ है। परम्परा के अनुसार पुराणों में वर्णित देवताओं का वास-स्थान यहीं था। इसके सिवा प्राचीन काल के ऋषि-

महर्षियों से लेकर आज तक के साधु-सन्तों, ज्ञानियों और मनीषियों ने यही तपस्याएँ की हैं।

उत्तराखण्ड मे कितने ही प्राचीन स्थान ऐसे है जो पवित्र माने जाते है। जहाँ पाण्डवो ने तपस्या की थी वह स्थान भी ऐसा ही है। राजा पाण्डु का आश्रम यहाँ अभी तक है जिसका पाण्डुकेश्वर के नाम से वर्णन किया जा चुका है।

इस पर्वत-खण्ड मे देवताओ और असुरो के युद्ध का वर्णन पुराणो में मिलता है। इन पवित्र स्थानो के बारे मे कितनी ही रोमाचक गाथाओ के वर्णन उनमे मिलते है। प्राचीन काल मे कोई यहां प्रवेश तक नही कर पाता था। देव-दानवों और अप्सराओ की कितनी ही कथाएं यहां के बारे मे प्रचलित हैं।

इस पवित्र भूमि मे कितने ही योगी, कवि और लेखक गये और रहे है और उन्हें यहाँ लेखन-सामग्री प्राप्त हुई है। महाभारत मे बताया गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण मनु के स्थान पर गये और पाण्डव-वनवास के दिनो मे वे अर्जुन के साथ बदरिकाश्रम में कुछ समयतक रहे। पूर्व-जन्म मे अर्जुन नर थे और कृष्ण नारायण और उन्होने यही गन्ध-मादन पर्वत पर तपस्या की थी। नारद मुनि उनके साथ सहस्र वर्षो तक रहे थे। प्रसिद्ध सस्कृत वैयाकरण वररुचि ने यहाँ आकर महादेव की तपस्या कर उनसे पाणिनीय व्याकरण की सामग्री प्राप्त की थी। बाद मे व्यास की अध्यक्षता मे ऋषियो ने यहां बदरिकाश्रम में आकर पाराशर मुनि से धर्म-शिक्षा प्राप्त की। उस स्थान की पवित्रता के बारे मे पुराणो मे कितने ही स्थलो पर उल्लेख है। बदरीनाथ के निकटस्थ व्यास-गुफा मे ही व्यास ने वेदों का सकलन-सम्पादन कर उन्हे चार खण्डो मे विभाजित कर नाम

का संस्थापन और प्रसारण आरम्भ किया था—कपिल ने हरिद्वार में, कश्यप ने वदरीनाथ में, गौतम ने सरस्वती नदी के किनारे, गर्ग ने द्रोणगिरि पर ज्योतिष-शास्त्र की रचना की थी। शायद इसीलिए वहाँ अभी तक इसका विशेष प्रचार और संरक्षण है। यही कारण है कि हिन्दू वदरीनाथ की यात्रा को अपनी ऐहिक आकांक्षाओं और आत्मिक मुक्ति का कारण मानते हैं।

हिन्दू-धर्म-शास्त्रों में इस पवित्र भूमि को विभिन्न नाम दिया गया है—कहीं इसे देवभूमि कहा गया है तो कहीं ब्रह्मर्षि-देश, कहीं पांचाल-देश तो कहीं केदार-खण्ड और कहीं उत्तराखण्ड या वदरिकाश्रम। स्कन्द पुराण के केदारखण्ड में कण्व आश्रम से नन्दगिरि तक को वदरीनाथ-मण्डल कहा गया है जिसे सभी सांसारिक आशीर्वादों से युक्त और जन्म-मरण के वन्धनों से मुक्त करनेवाला केन्द्र कहा गया है।

वदरीनाथ की उँचाई समुद्री सतह से १०,४०० फीट है और यह हिमालय की सुन्दर चोटी पर वर्फ से ढका रहता है। यह भारत के सर्वाधिक पवित्र चार धामों में से एक है। महाभारत, स्कन्द पुराण तथा अन्य कई पुराणों में प्रसंगवश इसके महात्म्य का वर्णन आया है। यहाँ भगवान् की मूर्ति पद्मासन में स्थित है क्योंकि भगवान् यहाँ योग के लिए थे, भोग के लिए नहीं। अव से लगभग वारह शताब्दी पहले भारत में जो अधार्मिक तत्व फैले उन्होंने इसके प्राचीन मन्दिर को ध्वस्त कर दिया था और मूर्ति को अलकनन्दा नदी में फेंक दिया था। श्री शंकराचार्य ने भगवान् की यह मूर्ति नारद-कुण्ड में पाई और इसकी स्थापना तप्त-कुण्ड के निकट गरुड़-गुफा में की, वहाँ यह सात शताब्दियों तक रही। पीछे गढ़वाल के शासन ने श्री वरदराजाचार्य की आज्ञा से उसे वर्तमान मन्दिर में स्थापित किया। मन्दिर का स्वर्ण-मण्डप महारानी अहिल्यावाई होल्कर ने वनवाया। इस मन्दिर का सम्मान सनातनधर्मी ही नहीं, जैन और वौद्ध भी करते हैं। श्री शंकराचार्य को इस स्थान पर ही ज्ञान प्राप्त हुआ था।

ब्रह्मकपाल—यहाँ ब्रह्म का निवास है। इस स्थल पर पूर्वजों की शान्ति और मुक्ति के लिए श्राद्ध आदि कर्म किये जाते हैं। यह स्थल मन्दिर के पास ही उत्तर की ओर है। यहाँ भगवान् विष्णु अपने भक्तों को दर्शन देते हैं। कहा जाता है कि श्रद्धालु भक्तों को कुम्भ के अवसर पर सुन्दर चतुर्भुजी मूर्ति के दर्शन नीलकण्ठ की चोटी पर होते हैं।

गांधीघाट—महात्मा गांधी की अस्थियाँ यहाँ अलकनन्दा में ब्र . और तप्तकुण्ड के बीच १४ जून, १९४८ ई० को प्रवाहित की गई थीं। तब यह स्थान गांधीघाट के नाम से प्रसिद्ध हो गया है। गांधीजी की अस्थियाँ सरोवर में भी ३ अगस्त, १९४८ ई० को प्रवाहित की गई थीं।

नीलकण्ठ—एक स्वाभाविक रूप से निर्मित मन्दिर-जैसा शिखर है। नीलकण्ठ पर्वत की बर्फ में ढकी चोटी है जो २१, ६५० फीट की ऊँचाई पर और बदरीनाथ से निकट ही दिखाई देती है, पर वास्तव में वहाँ से पाँच मी, पश्चिमाभिमुख है। इस चोटी पर चढ़ने के प्रयत्न कई विदेशी पर्वतारोहियों ने कि जिनमें १९३७ में फ्रैंकस्मिथ ने, १९४७ ई० और १९५२ ई० में दो अंग्रेज आरोहियों ने और १९५७ ई० में न्यूजीलैण्ड के आरोहियों ने किये, जिनमें सर एडम हिलारी भी एक सदस्य थे। आई० ए० एफ० और एक स्विस आरोही दल ने भ प्रयत्न किये थे। अन्त में इन विदेशियों के हार जाने पर राजस्थान के एक अध्य श्री ओ० पी० शर्मा और दो शेरपाओं ने मिलकर इसकी पूरी चढ़ाई की। घटना अभी १३ जून, १९६१ ई० की ही है। इस चोटी का सौन्दर्य वर्णन बताया जाता है, पर उसकी चढ़ाई अत्यन्त कठिन और श्रम-मण्डित है।

शेषनेत्र—बदरीनाथ से एक मील पर अलकनन्दा के बायें किनारे शेषनाग है, जहाँ पत्थर के खण्ड पर शेषनाग की मूर्ति खोदकर बनाई गई है।

चरण-पादुका—यह बदरीनाथ के पश्चिम में दो मील की दूरी पर नीलकण्ठ की चोटी पर स्थित है। लगभग चार फर्लांग चढ़ने पर एक बड़ा हरा-भरा मैदान मिलता जहाँ ... न

योगवदरी—योगवदरी का एक मन्दिर पाण्डुकेश्वर में है।

भविष्यवदरी—जोठीमठ से आठ मील दूरी पर सुमादन में तपोवन के आगे धौली नदी की घाटी में है। यहाँ दो मील की दूरी में अनेक झरने हैं।

वृद्धवदरी—पीपलकोटी-जोशीमठ वस-रूट पर वृद्धवदरी है।

आदिवदरी—कर्णप्रयाग से रानीखेत और रामनगर मोटर-रूट पर ग्यारह मील की दूरी पर स्थित है।

वसुधारा-प्रपात

वसुधारा एक ऊँचा झरना है जो चार सौ फीट की ऊँचाई से गिरता है। यह वदरीनाथ पुरी से पाँच मील पर है और वहीं से रास्ता जाता है। यह समुद्र की सतह से १२,००० फीट की उँचाई पर है। इस स्थान का धार्मिक तीर्थ के रूप में भी महत्त्व है। यहीं आकर यात्री स्नान करते हैं। वदरीनाथ से दो मील पर स्थित माना गाँव होकर यहाँ के लिए रास्ता जाता है। यह स्थान समतल है। माना गाँव के निवासी ऊन और ऊनी चीज़ों के अतिरिक्त पहाड़ी नमक, जड़ी-बूटियाँ, चमड़े, रोवें और भेड़-वकरियाँ तथा सुहागा पश्चिमी तिब्बत से माना के दर्रे से होते हुए ही इधर लाते हैं। माना का दर्रा १८,४०२ फीट की उँचाई पर है। ये सब चीज़ें भारतीय अनाज, कपड़े और अन्य आवश्यक वस्तुओं के वदले में ही मिलती हैं जिन्हें भोटिये अपनी वकरियों और याकों की पीठ पर लादकर ले जाते हैं। किन्तु अव तो तिब्बत पर चीन इस तरह छा गया है कि उनका यह पुराना व्यापार नष्ट होता जा रहा है। माना गाँव में सफेद गेहूँ, जौ और आलू की खेती होती है।

माना गाँव से एक रास्ता सरस्वती नदी होते हुए कैलास और मानसरोवर को जाता है जिसका वर्णन अलग किया गया है। सरस्वती नदी अलकनन्दा में माना के निकट मिल जाती है और इस संगम-स्थान को केशव-प्रयाग कहते हैं। यहीं पर व्यास-गुफा है जहाँ व्यास ने पुराणों की रचना की थी। माना गाँव से वसुधारा का रास्ता वाईं ओर को फूटता है। रास्ता चढ़ाई का है इसलिए थकावट का तो है ही। वसुधारा माना से तीन मील है।

वदरीनाथ से प्रातःकाल सात से आठ वजे के वीच रवाना हो जाना चाहिए और साथ में पूरी, मिठाई, चटनी, चाय आदि का सामान ले लेना चाहिए क्योंकि रास्ते में न तो कोई दुकान है न शरणस्थल। स्वयं वसुधारा में भी कोई सुविधा

नहीं है। इसलिए सुबह आकर शाम को ४ बजे तक बदरीनाथ लौट जाना चाहिए।

अलकापुरी—यह वसुधारा से पाँच मील पर है और यहीं से अलकनन्दा नदी निकलती है। अलकनन्दा आगे जाकर गंगा में मिलती है। गंगाजी की दूसरी सहायक नदी भागीरथी है जो गोमुख से प्रगट होती है। यह उद्गम-स्थान गंगोत्री से तीस मील आगे है। अलकनन्दा अलकापुरी में दो हिमनदों के रूप में प्रवाहित होती है—इन हिमनदों के नाम भगीरथी और सतोपन्थ हैं।

सतोपन्थ—बदरीनाथ से १६ मील की दूरी पर है और अलकापुरी से ५ मील पर स्थित है। इसकी परिधि लगभग पौन मील की है। यहाँ प्रकृति की अद्भुत छटा देखने को मिलती है।

यहाँ यात्री प्रायः जून और सितम्बर के बीच में आते हैं। यहाँ लकड़ी आदि जलाने को नहीं मिलती और यहाँ दो दिन लग जाने के कारण रुकना और भोजन बनाना पड़ता है। इस भील के रास्ते में गुफा के अतिरिक्त रुकने का और कोई स्थान नहीं है। जो यात्री सबल और सक्षम हैं वे बदरीनाथ से चलकर उसी दिन वापस भी आ सकते हैं।

मंसूर महाराज के साथ दर्शन—हम श्री बदरीनारायण की कृपा से इस कठिन मार्ग में चार मील तक कई स्थानों को देखते हुए देव-दर्शनी पहुँच गये। यह स्थान हिमगिरियों से घिरा हुआ फलतः ठण्डा है। वैशाख शुक्ल तृतीया को मन्दिर के कपाट खुलते हैं और कार्तिक में बन्द हो जाते हैं। तब तक श्रीनारायण

यहाँ पर भगवान् को अर्पण किये हुए अन्न से ही ब्रह्म-कपाल में पितरों को पिण्ड दिया जाता है। महाराज का अतिथि होने से मेरे सब कार्य विधिपूर्वक हो गये। यहाँ से थोड़ी दूर पर व्यास-गुफा, गणेश-गुफा आदि दर्शनीय स्थान हैं। यहीं पर व्यास जी ने गणेशजी से महाभारत लिखवाया था।

स्वर्गारोहण—बद्रीनाथ से आगे लगभग २० मील (२३००० फीट उँचाई) पर 'स्वर्गारोहण' नामक स्थान है, जहाँ सीढ़ीनुमा पर्वत-शिखर है। महाभारत के अनुसार पाण्डव इसी मार्ग से स्वर्ग गये थे। यहाँ तक पहुँचते हुए बीच में लक्ष्मीवन, सतोपंथ, नालीकाँटा, चक्रतीर्थ आदि दर्शनीय स्थान हैं। हिमराज के वास्तविक सौन्दर्य के दर्शन इन्हीं स्थानों में प्राप्त हो सकते हैं। सतोपंथ से १३ मील और आगे ६ मील स्वर्गारोहण का विकट मार्ग है। बदरीनारायण से माना गाँव को होते हुए एक मार्ग कैलास को जाता है। उस मार्ग में थोलिंगमठ नामक एक स्थान है जहाँ पर राक्षस-भूत-जैसी कई बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ हैं। लेकिन बदरीनारायण का वह पुराना स्थान खाली पड़ा है। वह अब बौद्धों के हाथ में है। उसी को मूल-बदरी-नारायण कहते हैं। इस यात्रा के पूर्ण होने के बाद फिर जोशीमठ वापस आना पड़ता है। वहाँ से जिसको जहाँ जाना हो मोटर से जा सकता है। कई लोग श्रीनगर, पौड़ी होते हुए, कोटद्वार रेलवे स्टेशन से अपने-अपने स्थानों को चले जाते हैं। कुछ लोग नन्दप्रयाग, कर्णप्रयाग, आदिबदरी, चौकुठिया होते हुए रामनगर रेलवे स्टेशन पहुँचते हैं। अन्य लोग कर्णप्रयाग, गढ़ी, द्वाराहट, रानीखेत पहुँचकर काठ-गोदाम होते हुए अपने स्थानों को चले जाते हैं। मैं जिस मार्ग को बताऊँगा उसका वर्णन आगे है।

बागेश्वर—जोशीमठ से नन्दप्रयाग, कर्णप्रयाग होते हुए गरुड़ जाकर बागेश्वर जा सकते हैं। यह स्थान वहाँ की सरयू और गोमती नदी के संगम पर स्थित है। कार्तिक में प्रतिवर्ष यहाँ मेला लगता है। उस समय नैपाली, तिब्बती और भोटिया अपने परिवारों-सहित व्यापार करने के लिए यहाँ पहुँचते हैं। इन लोगों की नृत्य, गायन आदि कलाएँ देखने-योग्य होती हैं।

गरुड़ से १७ मील की दूरी पर भद्रकाली देवी का दर्शनीय मन्दिर है।

पिण्डारी ग्लेशियर—बागेश्वरसे पिण्डारी ग्लेशियर (हिमनद) के लिए मार्ग जाता है। वहाँ से ४२ मील घोड़े से या पैदल चलना पड़ता है। जानेवालों को अपने साथ कैम्पिग (शिविर) का सब सामान ले जाना पड़ता है। रास्ते में

पपकोट(१४ मी०), लोहारी खेत(६ मी०), ठाकुरी(६ मी०), खाटी(५ मी०) डाली (७ मी०) आदि गाँव मिलते हैं। डाली से ३ मील पर पिण्डारी f - है। प्रति वर्ष कालेज के छात्र, स्कूल के विद्यार्थी, अन्य प्रकृति-प्रेमी व० आमोद-प्रमोद के लिए आते है। डाली से आगे ८ मील पर एक सुन्दर है उसमें से पिण्डरी गंगा नदी निकलती है और वह कर्णप्रयाग में अलकनन्दा मे मिलती है। यहाँ से फिर वापस बागेश्वर जाकर मोटर मे अलमोड़ा जा सकते है। यह अवश्य देखने-योग्य स्थान है।

रूपकुण्ड—भारतीय अन्वेषकों को आश्चर्यचकित और दिङ्मूढ़ करनेवाला रूपकुण्ड, प्रवासियों के लिए देखने-योग्य स्थान है। गरुड़ से डांगोली, ग्वालडम-टेंबल, लुहाजग, पासवान, बस्तोला होते हुए त्रिशूल-शिखर की तलहटी में (१८००० फीट) स्थित इस स्थान को पहुँचा जाता है। यही सरल मार्ग है, नहीं तो घोना सरोवर देखकर रमणी होते हुए भी जा सकते हैं। अन्वेषकों ने इसके बारे में कई बार खोज करके मानवों की हड्डी और जूते आदि सामग्री इकट्ठी की है। यहाँ से ५०० से अधिक मानवों की अस्थियाँ मिली है। अन्वेषकों के अनुसार ये लगभग १०० वर्ष पुरानी है। ये लोग इस कुण्ड मे क्यों और कब मरे, इसका पूरा पता नही है। अभी संशोधन चल रहा है। इस सम्बन्ध में कई प्रकार के मतभेद भी है।

अलमोड़ा (कुमायूँ)—हिमालय के कुमायूँ भाग में २०,००० फीट से अधिक ऊँचे ८० हिमशिखर है। यहाँ का जलवायु अनुकूल है अत. अलमोड़ा, रानीखेत, नैनीताल-जैसे - शैल-शिखर पर ने-योग्य स्थान बन गये । सी भाग में

'देवताओं का निलय' नाम से पुरातन काल से प्रसिद्ध है। यह शिव, इन्द्र, वरुण और अनेक ऋषि-मुनियों का वासस्थान है। यहाँ के ग्रामीण त्योहारों में संगीत-नृत्य आदि देखने-योग्य होते हैं। ऋतुओं के अनुसार यहाँ अलग-अलग उत्सव होते हैं। शीतकाल दीपोत्सव से और ग्रीष्मकाल पुष्पोत्सव से प्रारम्भ होता है। इसी प्रकार ह-यालर उत्सव को वरसात के प्रारम्भ सूचक के तौर पर मनाते हैं। इस प्रकार वहाँ की रीति व प्रथाएँ आगे कैलास-यात्रा में दी गई हैं।

अलमोड़ा शहर ५४०० फीट ऊँचाई पर चीड़ आदि वृक्षों के बीच वसा हुआ है। राजा कल्याणचन्द्र ने १५६० ई० में इसकी स्थापना की थी। १८१५ में गोरखा लोगों ने इसे छीन लिया था, तभी से यह कुमायूँ का ज़िला-स्थान बना है। यहाँ के गिरि-शिखरों पर देवी-देवताओं के मन्दिर हैं। उन्हीं के सहारे यह नगर दुष्टशक्तियों से वचता है, ऐसी किंवदन्ती है। यहाँ के जालमंडी नामक स्थान से हिमशिखरों का सुहावना दृश्य दिखाई देता है। कालीमाता शिखर से नैपाल के पर्वत दीखते हैं। सिम्तोला में फलों के वगीचे और घने जंगल हैं। ये सभी स्थान वन-विहार के योग्य हैं। इन स्थानों में शाही देवी, वन्दिनी देवी और विन्सर मुख्य हैं। वहाँ के जाने का मार्ग जंगलों के बीच है। यह स्थान ७६१३ फीट उँचाई पर है। इसको झंडिधार नाम से भी पुकारते हैं। राजा कल्याणचन्द्र के समय में यह गर्मियों में रहने का स्थान था। यहाँ पर एक शिवालय भी है। पाताल देवी में आनन्दमयी आश्रम है। जागेश्वर (२१ मील) में भी प्राचीन मन्दिर देखने-योग्य हैं।

अन्य शैल-शिखरों की अपेक्षा अलमोड़ा में कम ठंड होती है और गर्मी भी ८८° फार्नहीट रहती है। यहाँ उत्तर और पश्चिम की उतराई में सिविल और मिलिटरी अधिकारियों के मकान हैं। नगर के मार्गों में पत्थर विछे हुए हैं। ज़िले की कचहरी, खज़ाना आदि प्रसिद्ध किले में हैं। व्यास, चौंदास, डारमा और गर्व्यांग आदि पहाड़ी भागों के व्यापार का मुख्य केन्द्र होने के कारण यहाँ चहल-पहल रहती है। यहाँ से तिव्वत के लिए भी माल जाता है। इस ज़िले में कई धार्मिक और सांस्कृतिक आश्रम व संस्थाएँ हैं। स्थान-स्थान पर साधकों की कुटियाँ भी हैं।

मायावती—श्रीरामकृष्ण मठ का आश्रम शहर में भी है और मायावती में भी। उसकी स्थापना स्वामी विवेकानन्दजी ने की थी। उस स्थान के लिए यहाँ से ४२ मील चम्पावत तक मोटर जाती है और फिर ६ मील पैदल चलना पड़ता है। 'प्रबुद्ध भारत' कार्यालय भी वहीं पर है। मोटर से चम्पावत जाकर और वहाँ से

६ मील पैदल चलकर इस प्रसिद्ध आश्रम को अवश्य देखना चाहिए। धारचुला में भी एक आश्रम था। जहाँ पर रूमादेवी गर्ब्याल रहती थीं।

कौसानी—हिमालय पर्वत यहाँ से २१० मील लम्बी दीवार की तरह दिखाई देता है। नन्दादेवी, त्रिशूल और नन्दकोट आदि हिम-शिखरों का दृश्य रमणीय एवं मनमोहक है। यहाँ के लिए अलमोड़े से ३३ मील मोटर में जाना पड़ता है। सन् १९२९ ई० में महात्मा गांधीजी कस्तूरबा के साथ यहाँ रहते थे। उसी समय उन्होंने गुजराती भाषा में 'अनासक्ति योग' भी लिखा था।

सन् १९४६ में श्रीमती सरलाबेन (मेरी हेलमन) ने यहाँ पर गांधी-विचारों के प्रचार के लिए एक आश्रम की स्थापना की थी। वहाँ पर पर्वतीय स्त्रियों को ग्रामोद्योग के बहुमुखी कार्य का शिक्षण दिया जाता है। यहाँ के स्टेट इन्स्पेक्शन हाउस और डाक-बँगले ठहरने-योग्य हैं। गांधीजी जहाँ ठहरते थे, वह डाक-बँगला अब 'गांधी-स्मारक' नाम से बदलनेवाला है। कुमायूँ में घूमनेवालों को यह स्थान अवश्य देखना चाहिए।

उत्तर वृन्दावन आश्रम—श्री कृष्णप्रेमी (प्रो० निकसन) का यह आश्रम 'कनारीछिना' से कई मील ऊँचाई पर बसा है। निकसन पहले लखनऊ विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे। श्री दिलीपकुमार राय ने अपनी पुस्तक 'अमंग दि ग्रेट' में इनके साथ हुए पत्र-व्यवहार का उल्लेख किया है और इनके सम्बन्ध में योगिराज अरविन्द के क्या विचार हैं, उसका भी जिक्र किया है।

मैंने इनका सत्संग प्रथम बार तो 'इटावा सकीर्तन-सम्मेलन' में और दूसरी

'देवताओं का निलय' नाम से पुरातन काल से प्रसिद्ध है। यह शिव, इन्द्र, वरुण और अनेक ऋषि-मुनियों का वासस्थान है। यहाँ के ग्रामीण त्योहारों में संगीत-नृत्य आदि देखने-योग्य होते हैं। ऋतुओं के अनुसार यहाँ अलग-अलग उत्सव होते हैं। शीतकाल दीपोत्सव से और ग्रीष्मकाल पुष्पोत्सव से प्रारम्भ होता है। इसी प्रकार ह-यालर उत्सव को बरसात के प्रारम्भ सूचक के तौर पर मनाते हैं। इस प्रकार वहाँ की रीति व प्रथाएँ आगे कैलास-यात्रा में दी गई हैं।

अलमोड़ा शहर ५४०० फीट उँचाई पर चीड़ आदि वृक्षों के बीच बसा हुआ है। राजा कल्याणचन्द्र ने १५६० ई० में इसकी स्थापना की थी। १८१५ में गोरखा लोगों ने इसे छीन लिया था, तभी से यह कुमायूँ का ज़िला-स्थान बना है। यहाँ के गिरि-शिखरों पर देवी-देवताओं के मन्दिर हैं। उन्हीं के सहारे यह नगर दुष्टशक्तियों से बचता है, ऐसी किंवदन्ती है। यहाँ के जालमंडी नामक स्थान से हिमशिखरों का सुहावना दृश्य दिखाई देता है। कालीमाता शिखर से नैपाल के पर्वत दीखते हैं। सिम्तोला में फलों के बगीचे और घने जंगल हैं। ये सभी स्थान वन-विहार के योग्य हैं। इन स्थानों में शाही देवी, वन्दिनी देवी और बिन्सर मुख्य हैं। वहाँ के जाने का मार्ग जंगलों के बीच है। यह स्थान ७९१३ फीट उँचाई पर है। इसको झंडिधार नाम से भी पुकारते हैं। राजा कल्याणचन्द्र के समय में यह गर्मियों में रहने का स्थान था। यहाँ पर एक शिवालय भी है। पाताल देवी में आनन्दमयी आश्रम है। जागेश्वर (२१ मील) में भी प्राचीन मन्दिर देखने-योग्य हैं।

अन्य शैल-शिखरों की अपेक्षा अलमोड़ा में कम ठंड होती है और गर्मी भी ८८^{0} फार्नहीट रहती है। यहाँ उत्तर और पश्चिम की उतराई में सिविल और मिलिटरी अधिकारियों के मकान हैं। नगर के मार्गों में पत्थर बिछे हुए हैं। जिले की कचहरी, खज़ाना आदि प्रसिद्ध किले में हैं। व्यास, चाँदास, डारमा और गर्व्याग आदि पहाड़ी भागों के व्यापार का मुख्य केन्द्र होने के कारण यहाँ चहल-पहल रहती है। यहाँ से तिब्बत के लिए भी माल जाता है। इस ज़िले में कई धार्मिक और सांस्कृतिक आश्रम व संस्थाएँ हैं। स्थान-स्थान पर साधकों की कुटियाँ भी हैं।

मायावती—श्रीरामकृष्ण मठ का आश्रम शहर में भी है और मायावती में भी। उसकी स्थापना स्वामी विवेकानन्दजी ने की थी। उस स्थान के लिए यहाँ से ४२ मील चम्पावत तक मोटर जाती है और फिर ६ मील पैदल चलना पड़ता है। 'प्रबुद्ध भारत' कार्यालय भी वहीं पर है। मोटर से चम्पावत जाकर और वहाँ से

६ मील पैदल चलकर इस प्रसिद्ध आश्रम को अवश्य देखना चाहिए। धारचूला भी एक आश्रम था। जहां पर रूमादेवी मर्व्याल रहती थी।

कौसानी—हिमालय पर्वत यहां से २१० मील लम्बी दीवार की तरह दिख देता है। नन्दादेवी, त्रिशूल और नन्दकोट आदि हिम-शिखरों का दृश्य रमणीय मनमोहक है। यहां के लिए अलमोड़े से ३३ मील मोटर से जाना पड़ता है। १९२९ ई० में महात्मा गांधीजी कस्तूरबा के साथ यहां रहते थे। उसी उन्होंने गुजराती भाषा में 'अनासक्ति योग' भी लिखा था।

सन् १९४६ में श्रीमती सरलाबेन (मेरी हेलमन) ने यहां पर गांधी-के प्रचार के लिए एक आश्रम की स्थापना की थी। वहां पर पर्वतीय स्त्रियां ग्रामोद्योग के बहुमुखी कार्य का शिक्षण दिया जाता है। यहां के स्टेट इन्स्पेक्‍ हाउस और डाक-बँगले ठहरने-योग्य हैं। गांधीजी जहां ठहरते थे, वह डाक-बँग अब 'गांधी-स्मारक' नाम से बदलनेवाला है। कुमायूं में घूमनेवालों को यह अवश्य देखना चाहिए।

उत्तर वृन्दावन आश्रम—श्री कृष्णप्रेमी (प्रो० निकसन) का यह आ 'कनारीछिना' में कई मील ऊँचाई पर बसा है। निकसन पहले लखनऊ f विद्यालय में प्रोफेसर थे। श्री दिलीपकुमार राय ने अपनी पुस्तक 'प्रसंग दि में इनके साथ हुए पत्र-व्यवहार का उल्लेख किया है और इनके सम्बन्ध में ` अरविन्द के क्या विचार हैं, उसका भी जिक्र किया है।

म वार तो' सकीर्तन-सम्मेलन' में और

मार्ग है वह भी अस्कोट में मिल जाता है। कई यात्री मीलम, मनस्यारी, कुंगरी-बिंगरी, ऊँटा-धोहुरा घाटी पार करके कैलास जाते हैं।

रानीखेत—यह रम्य स्थान अलमोड़ा से ३२ मील दूर मोटर सड़क पर स्थित है। पहले यहाँ सेना विभाग रहता था, किन्तु अब थोड़ी सेना है। यह नगर चारों ओर से चीड़, अशोक, देवदारु और ओक (बाँझ) आदि वृक्षों के जंगलों से घिरा हुआ है। यहाँ के सभी प्रमुख मार्गों में कार भी चली जाती है। यहाँ के दर्शनीय स्थानों में पोलो और परेड ग्राउण्ड हैं। सेण्ट्रल नरसरी में अच्छे सेव मिलते हैं। यहाँ कई अच्छे होटल, धर्मशाला, शिव-मन्दिर आदि ठहरने-योग्य स्थान हैं। बाजार में सभी आवश्यक वस्तुएं मिल जाती हैं।

रानीखेत से हिमालय की लम्बी शिखर-श्रेणियाँ अत्यन्त अद्भुत दिखाई देती हैं, जिनमें नन्दादेवी (२५,६५४), त्रिशूल (२३,३६०), नन्दघूंटी (२१,२८२) और पश्चिम में हाथी-प्रभात मुख्य हैं। यदि आकाश स्वच्छ हो तो माउण्ट एवरेस्ट भी धुंधला-सा दीखता है। इसके अतिरिक्त माना, कामेंट, पंचकोट, नीलकण्ठ आदि रमणीय शिखर भी दृष्टिगोचर होते हैं। २०० मील लम्बा यह शिखर सूर्य के प्रकाश से चमकता रहता है। सूर्योदय के समय तो पहले स्वर्ण-रंजित और बाद में धीरे-धीरे पीला, जामुनी, हरा, नीला आदि कई रंगों में बदलता रहता है। सूर्यास्त के बाद ये शिखर-श्रेणियाँ पहरेदारों की तरह खड़ी दिखाई देती हैं। हिमालय का ऐसा दृश्य अन्यत्र कहीं नहीं है। यहाँ से थोड़ी दूरी पर ताड़ीखेत है।

कार्बेट नेशनल पार्क—प्राकृतिक वस्तुओं—वन्य उत्पादन और वन्य पशु-पक्षियों की रक्षा के लिए कार्बेट नेशनल पार्क का निर्माण हुआ है। इसमें हाथी, चीते, बघेरे, हिरन, घड़ियाल और भाँति-भाँति के पक्षी पाले गये हैं। यहाँ का दृश्य बड़ा ही मनोहर है। यहाँ पहुँचने के लिए नैनीताल जिले के रामनगर और कोटद्वार (गढ़वाल) होकर आना पड़ता है। यहाँ दिसम्बर और जून के बीच में जाना चाहिए। इस पार्क को देखने के लिए जानेवाले ढिकाला (Dhikala) में ठहरते हैं। यह स्थान दिल्ली से १८० मील की दूरी पर है। यहाँ के मनोरंजनों में प्रेक्षण-बुर्ज (वाच टावर), बिनामूल्य मार्ग-दर्शक(गाइड), हाथी-चढ़ाना, मछली मारना आदि-आदि हैं। यहाँ मोटर आने-जानेवाली अच्छी सड़क है। ढिकाल का बँगला आरामदेह है और बिजली, पानी आदि से युक्त है। ठहरने की सुखद व्यवस्था है। यहाँ जाने के लिए पहले 'चीफ़ वाइल्ड लाइफ़ वार्डन, सीपोली हाउस,

वजीर हसन रोड, लखनऊ को पत्र लिखकर जाने और वहाँ ठहरने की अनुमति लेनी पड़ती है। वाइल्ड लाइफ वार्डन, वेस्टर्न रीजन, पोस्ट रामनगर, जिला नैनीताल को लिखने पर भी यह इजाजत मिल सकती है।

नैनीताल—रानीखेत से ३० मील दूर नैनीताल है। यह काठगोदाम रेलवे स्टेशन से २१ मील पर है। यहाँ पहाड़ों के बीच में १५००० फीट लम्बा और ५०० फीट चौड़ा सुन्दर सरोवर है। उससे इसकी शोभा और बढ़ गई है। यह शहर तल्लीताल और मल्लीताल नाम के दो भागों में विभक्त है। दोनों में अलग-अलग बाजार हैं। तालाब के आखिरी कोने में नैनादेवी का मन्दिर है। यहीं धर्मशाला भी है। इसके अतिरिक्त लाला परमा साहब, वच्चीगौड़ और गोवर्द्धन की धर्मशालाएं भी ठहरने-योग्य हैं। होटल भी कई हैं। यहाँ नौका-विहार की भी व्यवस्था है। फुटबाल और क्रिकेट ग्राउण्ड भी है। यहाँ घोड़े और नावें किराये पर मिलती हैं जिससे तालाब में भी और किनारे पर भी चारों ओर चक्कर लगाकर सब प्रकार के आनन्द ले सकते हैं। तैरने की भी व्यवस्था है; किन्तु ठंड के मारे प्रवासी लोग इसमें कम भाग लेते हैं। नैनीताल के चारों ओर पहाड़ों पर वन-विहार के लिए कई रमण स्थान हैं। यहाँ पर एक चीना-हिल स्थान है। वहाँ से हिमालय के शिखर दीख हैं। यहाँ के मुख्य स्थान ये हैं :

(१) चीना हिल—यहाँ से नैनीताल शहर का विहंगम दृश्य दिखाई देता (ऊँचाई ८,५३६ फीट)।

(२) रैलवरी—रैलवरी के ऊपर उत्तम प्रवास-मन्दिर है।

(३) सारिया कन्टा—यहाँ से देवनन्द और नैनीताल का दृश्य दि-

ऊनी कपड़े, गलीचे आदि बनते हैं।

श्री बदरीनारायण यात्रा से वापस इस रास्ते से आयें तो ऊपर रमणीय स्थान देखने को मिलेंगे। हर समय इधर आना नहीं होता। अलमोड़ा, नैनीताल आदि रम्य स्थानों को देखना चाहते हैं वे कर्णप्रयाग गरुड़ और आगे भी मोटर से चलकर इन सब स्थानों को देख सकते हैं वार इस रास्ते से आया हूँ; किन्तु बदरी-यात्रा पूरी करके मैसूर म. परिवार के साथ द्वारहाट होते हुए पैदल रानीखेत आया और बाद में काठगोदाम पहुँचा। वहाँ से केवल श्रीनारायण शास्त्री को गंगा-स्नान नजदीक के स्टेशन पर ले गया था और बाकी सब स्पेशल ट्रेन से सीधे मथु गये। गंगा-स्नान के बाद बरेली में शास्त्रीजी को मथुरा की गाड़ी में बिठ हरिद्वार पहुँचा। यात्रियों को चाहिए कि वापस आते हुए कोटद्वार मालती के तट पर स्थित कण्वाश्रम को अवश्य देखें। यहाँ पर शकुन्तला, और अनेक ऋषि-मुनियों की मूर्तियाँ हैं। कई साधकों के कुटीर भी हैं के जंगलों में हिरणों के झुण्ड भी देखने को मिलेंगे।

गंगोत्री-यमनोत्री-यात्रा

निसर्ग की निगूढ़ दिव्य-शक्तियाँ

ऋषिकेश के कुटीर में मुझे कुछ दिव्य आन्तरिक अनुभव हुए थे। उन्हीं के कारण उत्तरकाशी के समीप मानसी गुफा में भी मैंने एकान्त में रहकर रहस्यमय दिव्य अनुभव प्राप्त किये। इनसे यह सिद्ध हुआ कि यदि कोई भगवान् में तल्लीन होकर उनकी विश्वगत संकल्प-शक्ति से तादात्म्य स्थापित करके निजानन्द में निमग्न होता है, तो प्रकृति भी उसके लिए अपना भण्डार खोल देती है। आज मानव का जीवन कृत्रिम यन्त्र के समान अनैसर्गिक हो गया है। दिन-भर परिश्रम करके केवल उदर भरने के लिए या सांसारिक विलास की पूर्ति के लिए सामग्री एकत्रित करना और क्षणिक आनन्द के लिए अहंकारवश, वास्तविकता को छोड़कर स्वेच्छाचारी-जीवन बिताना ही आज के मनुष्य की चर्या है। इन सांसारिक व्यक्तियों का जीवन उनसे कितना भिन्न है जो निसर्ग के सुस्वादु फल और गुणकारी जड़ी-बूटियों से प्राणमात्र धारण करके हिमालय की प्रशान्त गिरि-कन्दराओं में या किसी पुण्यसलिला नदी के पावन तट पर भगवान् की अनन्त लीलाओं में निमग्न होकर उसी का ध्यान करते रहते हैं। इस तन्मयता और सादगी में जो परमानन्द और शान्ति है वह आज के कृत्रिम जीवन में कहाँ ? आवश्यकता के साथ दुःख भी बढ़ता है।

अत्यन्त प्राचीन

का महान् लक्ष्य यह है कि मनुष्य निर्मम, निरहंकार और ज्ञानी होकर परमात्मा में अपने को समर्पित करे और ईश्वर से अपना समन्वय स्थापित करे।

माताजी (पांडिचेरी) के उपदेशानुसार 'अपने-आपको भूल जाना ही अपने को पाने का सरल मार्ग है' इस साधना के लिए वाह्य सम्वन्धों का परित्याग करके रम्य और एकान्त-प्राकृतिक स्थानों में निवास करना आवश्यक है। भगवान् की प्राप्ति के लिए ध्यान और समर्पण की भावना होनी चाहिए। मातली-गुफा में मुझे यही अनुभव हुआ। इसका कुछ वर्णन आगे मिलेगा।

यमनोत्री-क्षेत्र पहुँचकर गंगोत्री क्षेत्र जाते हैं। श्रीकृष्ण-प्रिया कालिंदी (यमुना) में स्नान किए विना कोई भी भावुक यात्री गंगोत्री नहीं जाता। अतः पहले उसी के मार्ग का विवरण दिया गया है। ऋषिकेश से नरेन्द्रनगर चमुआ टिहरी हाते हुए धरासू तक मोटर जाती है। वहाँ से गंगोत्री और यमनोत्री के लिए भिन्न-भिन्न मार्ग हैं। इन मार्गों पर भी कुछ दूर तक मोटर चलती है; परन्तु यहाँ से मोटर बदलनी पड़ती है। यमनोत्री के लिए गंगनानी (वरकोट) तक ३२ मील मोटर से चलकर फिर २२ मील पैदल चलना पड़ता है तब यमनोत्री पहुँचा जाता है। देहरादून-मसूरी को देखते हुए यमनोत्री जानेवाले ऋषिकेश से रेल या मोटर से देहरा होकर जा सकते हैं। पुनः ६ मील सुवाखोली तक पैदल चलकर (आगे मोटर जाती है) चमुआ में ऋषिकेश-टिहरी-धरासू वाला मार्ग मिलता है—अथवा सीधा मसूरी से भल्डियाना तक पैदल और फिर वहाँ से धरासू होते हुए मोटर से आगे जा सकते हैं। अब एक अन्य मार्ग च[illegible] के मार्ग में कालसी (वरकोट) से प्रारम्भ होकर गंगनानी के पास यमनो[illegible] मिलनेवाला है। जो मार्ग नरेन्द्र नगर होते हुए जाता है यहाँ उस[illegible]

ऋषिजी और उनकी पत्नी की सहायता से राजा नरेन्द्रशाह की आत्मा ने आकर बैंटवारे-सम्बन्धी कुछ खास-खास बातें बतलाईं और उनकी प्लाचेट के सहारे उत्तर रूप में १६ पन्नों में ठीक-ठीक लिखा गया था। उस समय राज-परिवार के साथ कई दिनों तक सम्पर्क रहा। वशिष्ठ-गुफा, देवप्रयाग मार्ग में ऋषिकेश से १६ मील पर है। यहाँ कई गुफाएँ हैं। नरेन्द्रनगर जिला टिहरी गढ़वाल का प्रमुख स्थान है। सभी सुविधाएँ यहाँ प्राप्त हैं। जिला के प्रमुख कार्यालयों के होने से यहाँ पोस्ट आफिस, तारघर, टेलीफोन आदि सभी सुविधाएँ हैं। यहाँ का राजमहल ऊँचे स्थान पर स्थित है। धर्मशाला और बाजार नीचे मार्ग पर ही हैं। यहाँ से रुड़की, हरिद्वार आदि कई मैदानी भाग दिखाई देते हैं। यहाँ से चार मील दूर कुंजापुरी देवी का मन्दिर है जहाँ नवरात्रों में मेला लगता है। यह स्थान साधना के लिए अनुकूल है। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में प्यासड़ा, खिलवाणी, घोड़ा-खानी, हिंडोला-खाल, अगर-खाल और टिपनी फाल्स आदि कई दर्शनीय स्थान हैं।

टिहरी—यह प्राचीन नगर भागीरथी और भिलंगना (भिलगंगा) के संगम पर है। जब राजा नरेन्द्रशाह ने नरेन्द्रनगर को राजधानी बनाया उसमें पूर्व राजधानी यहीं थी। अब यहाँ कई सरकारी आफिस हैं। यहाँ इण्टर कालेज भी है। स्वामी रामतीर्थ ने यहाँ के सिमलासू नामक स्थान (गुफा) में साधना की थी। यहाँ धर्मशाला, बाजार, तारघर, पोस्ट-आफिस आदि सभी कुछ हैं। टिहरी नरेन्द्रनगर से ४१ मील है। टिहरी से एक मार्ग प्रतापनगर जाता है किन्तु वहाँ राजमहल के सिवाय कुछ सुविधाएँ नहीं हैं। स्वामी रामतीर्थ ने जहाँ पर कई मास तपश्चर्या की वह वशिष्ट गुफा यहाँ से ७० मील दूरी पर है।

होकर हनुमान-चट्टी जाना पड़ता है। हनुमान-चट्टी में रात्रि में विश्राम करके दूसरे दिन ५ मील स्थित खरसाली को जाना चाहिए। वहाँ पर यमनोत्री के पण्डे रहते हैं। शीतकाल में ६ मास तक यमुना-मूर्ति की पूजा यहीं पर होती है। यहाँ का शनि-मन्दिर, गरम जल का स्रोत और मार्कण्डेय तीर्थ प्रसिद्ध है। यहाँ से चार मील दूर यमनोत्री है। वहाँ भी धर्मशाला और गरमकुण्ड (तप्तकुण्ड) है।

यमनोत्री तीर्थ-क्षेत्र—यमनोत्री में बाबा कालीकमलीवाले की एक धर्मशाला है। यहाँ यात्री एक दिन ठहरकर वापस चल देते हैं। नदी के पार एक तप्तकुण्ड है जिसके जल का तापमान १९६·७ एफ़० एच० डिग्री रहता है। यदि एक कपड़े में खिचड़ी या आलू बाँधकर उस जल में डुबाया जाय तो वह पक जाता है। किन्तु उसमें कुछ गंधक की गंध आती है। यहाँ पर नदी १५-१६ फीट चौड़ी है। गंगोत्री के सदृश यमनोत्री उद्गम-स्थान नहीं है, क्योंकि इन दोनों के उद्गम स्थान का ठीक-ठीक पता नहीं लगा है। यहीं से चार-पाँच मील दूर पर 'बन्दर-पूँछ' से एक धारा निकलती है, उसीको यमुना का उद्गम मानते हैं। यदि योग्य मार्गदर्शक हो तो 'दुरथी थातर' नामक स्थान से होते हुए वहाँ पहुँचा जा सकता है। इस मार्ग को पार करने के लिए सीढ़ी, रस्सी, हिम-कुल्हाड़ी आदि सामग्री की आवश्यकता होती है, अतः वहाँ विरले ही जाते हैं। प्रायः सभी वहाँ न जाकर यमनोत्री से ही वापस लौट आते हैं। यहाँ के दृश्य चित्ताकर्षक हैं। यात्रा पूर्ण कर लेने पर यहाँ से गंगाणी (बरकोट) आकर आगे दूसरी ओर साढ़े सात मील की चढ़ाई पार करके 'सिंगोट' नामक स्थान में पहुँचा जाता है। सिंगोट से तीन मील पैदल चलकर नाकुरी-चट्टी है, जो धरासू-उत्तरकाशी के मोटर-मार्ग पर है। यहाँ से ६ मील मोटर से चलकर उत्तरकाशी पहुँचा जा सकता है।

उत्तरकाशी—इस क्षेत्र के सम्बन्ध में एक आख्यायिका है कि कलियुग में जब काशी की संस्कृति और विशिष्टता नष्ट होगी तो भगवान् विश्वनाथ का निवास यहीं हो जायगा। कहते हैं कि किरातार्जुन-युद्ध भी इसी स्था[illegible] पर हुआ था। अब यह ज़िले का प्रमुख स्थान है। यहाँ कचेहरी, न्यायालय, पो[illegible] आफ़िस, तारघर आदि सब हैं तथा कालीकमलीवाली, पंजाब क्षेत्र की अ[illegible] बिड़ला धर्मशालाएँ हैं। यहाँ के साधु-संन्यासियों को क्षेत्र की ओर से भोजन मि[illegible] है। यहाँ संन्यासियों के कई आश्रम हैं जिनमें कैलास-आश्रम, देवगिरि-आ[illegible] रामकृष्ण-आश्रम आदि प्रमुख हैं।

यात्रीगण यहाँ पर गगाजी मे स्नान करके विश्वनाथजी के दर्शन करते हैं। यह मन्दिर पुरातन है। मन्दिर में एक बड़ा त्रिशूल है। जयपुर महाराज का बनवाया हुआ एकादशरुद्र-मन्दिर भी मनोहर है। इसके अतिरिक्त गोपेश्वर, परशुराम, भैरव, अन्नपूर्णा, विमलेश्वर, शिवदुर्गा आदि कई मन्दिर है। मकर-सक्रांति में प्रतिवर्ष यहाँ मेला लगता है। उस समय पर्वतीय लोगो के मनोहर नृत्य-गीत आदि होते हैं। साधना के लिए भी यहाँ समीप में ही योग्य स्थान है। यहाँ कई अच्छे साधु-महात्मा रहते है। उनमे से विष्णुदत्त मौनी नामक एक बगाली महात्मा १२१ वर्ष से अधिक अवस्था होने पर भी स्वस्थ और दृढ शरीरवाले है। इनके अतिरिक्त देवगिरि आश्रम के स्वामी ब्रह्मप्रकाश, कैलाश-आश्रम के स्वामी महामण्डलेश्वर, श्री रामतीर्थानन्द और महेश योगी आदि प्रसिद्ध महात्मा है। ग्रीष्म ऋतु मे श्री व्यासदेवजी ऋषिकेश से अपने शिष्यों सहित यहाँ आते है तथा बाद में गगोत्री जाकर भी वे योगाभ्यास कराते है। गगोत्री और उससे भी ऊपर गोमुख की तरफ कई गुप्त योगी रहते है। मैंने भी कई मास तक नर्मदावासी की मातली गुफा मे योगाभ्यास किया। उस समय का कुछ अनुभव मैं यहाँ दे रहा हूँ जिससे साधको को कुछ लाभ हो सके। मैं समझता हूँ कि मेरे अन्दर भी यहाँ के गुप्तयोगियों की शक्ति का सचार हो गया या या भगवान् की कृपा हुई थी जिससे मैं योग मे प्रवृत्त हुआ।

मातली-गुफा के अनुभव

और झंकार करती हुई वहती है। गंगा के किनारे जो पहाड़ दीवार की तरह स्थित है, उसीमें यह तपोमय गुफा है। इस गुफा में प्रविष्ट होना आसान न था। वहाँ केवल पेट के सहारे पहुँचा जाता है। मैंने उसमें प्रविष्ट होकर देखा कि एक-दो फीट सरकने पर १०-१२ फीट चौरस स्थान है। उस गहन वन में वन्य पशु और गंगामाई ही मेरे साथी थे। वाईं तरफ १५-२० कच्ची सिढ़ियाँ थीं जिनसे उतरकर एक वालुकामय मैदान में पहुँचा जाता है। पास ही गंगाजी प्रवाह के वीच में एक वड़े पत्थर से टकराकर मुक्ताराशि को विखेरती हुई वह रही थीं। गंगा के दोनों तट रंग-विरंगे फूलों से परिपूर्ण, लता-गुल्मों, पेड़-पौधों आदि से वेष्ठित थे। सामने घनी वन-पंक्ति से भरी हुई घाटी पहाड़ के शिखर तक अपनी रम्य छटा को फैला रही थी। मैं इस गुफा से दाईं तरफ एक-दो फर्लांग दूर तक गया। वहाँ मुझे पुराने समय का वना हुआ एक फूस का छप्पर दिखाई दिया। वहाँ एक छोटा-सा वगीचा भी था; किन्तु निर्जनता के कारण सुनसान था।

गुप्तयोगी का शक्ति-संचय

जव मैं गुहा में प्रविष्ट होकर गुहा-द्वार को एक पत्थर की सहायता से वन्द कर देता था तो वाह्य जगत् स्मृति-पटल से दूर हो जाता था। अन्दर प्रगाढ़ अन्धकार छाया रहता था और वाहर वहनेवाली प्रखर वायु का आभास तक नहीं होता था। मैं रात्रि में कभी-कभी प्रकाश के लिए वत्ती जला लेता था। इस गुफा के वगल में एक अन्य खुली गुफा थी। मैं प्रायः गुफा के अन्दर सिद्धासन लगाकर ध्यानमग्न रहता था। सुदूर प्राचीन काल से नर्मदावासी के सदृश कई ऋषियों की साधना और सिद्धि चैतन्य रूप से जागृत थी। प्रकृति के गर्भ में जैसे मानव-प्रज्ञा रहती है उसी प्रकार इस गुफा में आश्रित-साधक भी रहता है। मेरा मानस इसी प्रकार के पूर्ण एकान्त के लिए व्याकुल था। अन्न की इच्छा या फल की चिन्ता ही न थी। उस समय मैं सामान्य विचारों के धरातल से एक असाधारण भूमि में पहुँच गया था। एक वार ध्यानावस्थित होने पर सम्पूर्ण जगत् की स्मृति नहीं रहती थी; सव भूल जाता था।

गुफा-निवास के दो-एक अनुभव

जव मैं गुफा में वैठकर ध्यानावस्थित हुआ तो निरवधि समय व्यतीत हो गया। कालपक्षी निरन्तर अपने पंखों को चलाता रहा और सर्वत्र नक्षत्र-राशि का वैभव

विचरता रहा। मैं यहां और काल से भी ऊपर बढ़ गया। नाम, रूप, गुण और भूमण्डल आदि की स्मृति न रही और चेतना अनन्तता के सम्पर्क में स्वयं अनन्त बन गई। मैं कौन हूँ? मेरा रूप क्या है? यह सब भूल गया था, केवल प्रज्ञामात्र साक्षीरूप से जागृत होकर प्रवाहमान रूप में सब क्रियाओं को देख रही थी। इसीलिए ये सब बातें स्मृति-पटल पर अब तक अंकित हैं। इस प्रकार के कई अनुभव प्रायः होते थे।

गुफा के बाहर नदी के तट पर एक विशाल चौकोना पत्थर था। वहाँ बैठने पर भी कई दिव्य अनुभव होते थे। वहाँ का दृश्य अन्दर के (आन्तरिक) अनुभवों से कई गुना बढ गया था। बाह्य जगत् भी आन्तरिक और कल्पना के जगत् के समान अनुपम और दिव्य (ब्रह्म सत्यं जगन्मन्यम्) प्रतीत हो रहा था। भागीरथी प्रवाह के बीच में पड़े हुए शिला-खंडों से टकराकर मंजुल गायन करती हुई बह रही थी। इस रमणीय दृश्य को निरन्तर देखते समय कई बार सारंगी, वंशी, ताऊस और जल-तरंग की-सी ध्वनियाँ कानों में गूँजती प्रतीत होती थीं। इस स्थान की महिमा से यहाँ पर स्थूल और सूक्ष्म का समन्वय हो गया था। ऐसे समय में जब मैं ध्यानावस्थित होता था तो स्वदम वामन की तरह सूक्ष्म शरीर होते पर भी आकाश और पाताल को एकाकार करता हुआ और भी ऊपर बढ जाता था। सकुचित मर्त्य-प्रज्ञा अपने विराट् रूप के विस्तार को जानकर असीम हो गई थी। इस असीमता के आनन्द से फूलकर संकुचित शरीर में रहनेवाले जीव में मानो समुद्रों का एक ही आचमन में पी लेने की शक्ति उत्पन्न-सी हो गई। उस समय उस विराट वैभव की गर्जना करता हुआ मैं उसमें सम्पूर्ण विश्व को एक ही ग्रास में निगल जाने की

उत्तरकाशी के चारों ओर उन्नत गिरि-शिखर हैं। ये शिखर चीड़ और देवदारु की पंक्तियों से सुशोभित हैं। गहरी घाटियाँ, साँप के समान वेग से बहनेवाली नदियाँ, आकाश से इन्द्र-धनुष की भाँति गिरनेवाले जलप्रपात, हरे-भरे खेत और बाग-बगीचे आदि इस तपोभूमि में यात्रा करनेवालों का स्वागत करते हैं। इसलिए यात्रियों को विश्राम करते हुए शान्ति के साथ यात्रा करनी चाहिए। इससे यात्रा सुचारु रूप से परिपूर्ण होगी। उत्तरकाशी आते समय पीछे वरुणा नदी का संगम है और आगे तीन मील पर अस्सी का संगम है। इस स्थान का नाम नगाणी है। यात्री लोग छः मील चलकर मनेरी में भोजन आदि से निवृत होकर विश्राम करते हैं। यहाँ का सृष्टि-सौन्दर्य चित्ताकर्षक है। यात्री ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते हैं त्यों-त्यों सौन्दर्य भी बढ़ता जाता है। इसकी ऊँचाई ४३०० फीट है। यहाँ से ६ मील पर भटवाड़ी या भास्करप्रयाग है और मनेरी से १५ मील पर अत्यन्त रमणीय डोड़ी-ताल नामक स्थान है। यह यात्रा-मार्ग से भिन्न मार्ग पर है। भटवाड़ी तक मोटर-मार्ग बन गया है और आगे भी बन रहा है। जीप गाड़ी में भटवाड़ी तक जा सकते हैं।

भटवाड़ी—यहाँ पहुंचने से पूर्व ही भल्ला नामक चट्टी से दांई ओर गंगा पार करके केदारनाथ जाने का मार्ग जाता है। यहाँ पर कर्नाटक के कृष्णानन्द नामक व्यक्ति ने मेरा स्वागत किया। यहाँ पर ठहरने के लिए धर्मशाला और डाक-बँगला है। अब यहाँ तक मोटर-मार्ग भी बन गया है। आगे और भी कई मील तक जीप जाने-योग्य मार्ग बन चुका है। कुछ दिनों में हरसिल तक मोटर-मार्ग तैयार हो जायगा।

गंगनानी—भटवाड़ी से गंगनानी ६ मील है। इस मार्ग के दोनों ओर पर्वत दीवार के सामान खड़े हैं। इन पर्वतों के बीच से बहनेवाली गंगा पत्थरों से टकराकर नाद करती हुई आगे जाती है। इस स्थान से आधा मील पहले ही गरम जल का एक स्रोत है, जिसे परशुराम कुंड कहते हैं। यहाँ का जल बदरी-केदार के तप्तकुंड के पानी के समान कड़वा नहीं है। यहाँ ठहरने के लिए धर्मशाला और दुकानें हैं। यहीं पर मेरे एक मित्र सन्तरामजी योगाभ्यास के लिए एक कुटिया में ठहरे हुए थे। यहाँ पर गंगा भयानक शब्द करती हुई नीचे गिरती है।

एक रात गंगनानी में योगी सन्तराम के साथ रहकर दूसरे दिन छः मील पर लोहारीनाग पहुँचा। वहाँ नदी के तट पर साधुओं के साथ बिना बर्तन के रोटी

बनाकर खाई। गंगा के किनारे के पत्थरों पर आटा गूँधकर तथा उसे अंगारों में ही पकाकर रोटी के रूप में खाया। इस जंगल में हमें एक भालू मिला जो लोगों के हल्ले से भाग रहा था।

सूखी, हर्सिल, धराली—हम लोहारीनाग से ४ मील कठिन चढ़ाई पार करके सूखी-चट्टी पहुँचे। यहाँ पर धर्मशाला और दुकान है। दुकान में सब सामान मिल जाता है। रात्रि में यहाँ विश्राम करके दूसरे दिन सवेरे हर्सिल गाँव पहुँचे। यह स्थान देवदारु के वृक्षों के घने जंगल से घिरे होने के कारण और मैदान में बहनेवाली कई नदियों के कारण कश्मीर की भाँति सुन्दर दिखाई देता है। यहाँ पर मुझे महात्मा कृष्णाश्रम योगी के दर्शन हुए। उत्तरकाशी के सिद्धाश्रम स्वामी और नारायण स्वामी ने उनके लिए मेरे पास एक सन्देश भेजा था कि एक-दो महीने के लिए उत्तरकाशी आकर उनके पास ठहरें। यह सन्देश मैंने उनको सुना दिया। मौन होने के कारण वे संकेत से ही बातचीत करते थे। उन्होंने मुझे भी संकेत से ही उत्तर दिया। उनके मुख पर तेज और तपस्या की झलक थी। मैं उनके सामने आँख बन्द करके बैठा तो तत्काल ही मेरे प्रश्नों का उत्तर मेरे ही अभ्यन्तर से मिल गया। उनका आशीर्वाद, फल और मन्त्राक्षत पाकर लक्ष्मीनारायण-मन्दिर पहुँचा। ये योगी बारहों मास गंगोत्री में ही वास करते हैं। जब मैं दूसरी बार गंगोत्री गया तब भी वे वहीं मिले। एक बार पं० मदनमोहन मालवीयजी ने इन्हें काशी विश्व-विद्यालय में प्रवचन देने के लिए बुलाया था। यहाँ पर कई धर्मशालाएँ हैं। मैं यहाँ से ३ मील चलकर धराली पहुँचा। यहाँ कई धर्मशालाएँ और घाट हैं। नदी के सामने मुखवा नामक ग्राम में गंगोत्री के पण्डे रहते हैं। शीतकाल में छः मास तक

भैरवघाट—स्वामी रामतीर्थ ने अपने मेरुपर्वत के प्रवास में इस भाग का बहुत अच्छा वर्णन किया है। उन्होंने एक वार यमनोत्री से गंगोत्री तक यात्रा की है। उस स्थान को छायापथ भी कहते हैं। नीलांग दर्रा को पारकर व्यापारी लोग तिब्बत जाते हैं। वहाँ पार जाने के लिए पर्वत-शिखरों पर रस्सी का एक पुराना पुल है जो अब टूटा पड़ा है। उसे पार करने के विचार-मात्र से ही चक्कर आ जाता है। कई साल पहले उसके ज़रिये व्यापारी तिब्बत को जाते थे। हमने भैरव-घाट जाकर भैरवजी के दर्शन किए और पुनः छः मील चलकर गंगोत्री पहुँचे।

गंगोत्री—गंगोत्री में गंगा नदी शान्त स्वरूप धारण कर बहती है। वहाँ डुबकी लगाकर स्नान किया जा सकता है। हमलोग स्नान करके गंगाजी के दर्शन के लिए मन्दिर में गये। वहाँ भागीरथी, सरस्वती, यमुना और शंकराचार्य की मूर्तियाँ हैं। नदी के किनारे भगीरथ-शिला है। राजा भगीरथ ने इसी स्थान पर तपस्या की थी। नीचे थोड़ी दूर पर गंगाजी पूरे वेग के साथ गौरीकुण्ड में गिरती है। वहीं पर केदारगंगा का भी संगम है। यात्रीलोग इसी स्थान से जल भरकर ले जाते हैं। मन्दिर के दोनों पार्श्व-भागों में ठहरने के लिए कई धर्मशालाएँ हैं। यहाँ की दुकानों में सभी आवश्यक वस्तुएँ मिल जाती हैं। गंगा के पार योगियों और साधुओं की साधना की कई कुटिया हैं। स्वामी कृष्णाश्रम भी अपने शिष्यों के साथ वहीं रहते हैं। प्रति वर्ष इस स्थान पर योगिराज व्यासदेव जी अपने शिष्यों को गर्मियों में योगाभ्यास कराते हैं। यहाँ भारत के अनेक भागों के लोग आते हैं। यहाँ कई गुप्तयोगी भी रहते हैं। स्वर्गीय स्वामी तपोवनजी के शिष्य ब्रह्मचारी सुन्दरानन्दजी सदा गंगोत्री में ही वास करते हैं। इन्होंने कई वार हिमालय में गंगोत्री से चलकर वदरीनाथ की पैदल यात्रा की है। इस वार ४-५ यात्रियों के साथ एक लेखक भी वदरीनाथ पहुँचे थे। इसके अतिरिक्त वावा मस्तरामजी आदि श्रेष्ठ साधु भी वहाँ निवास करते हैं। यहाँ सूर्यकुण्ड, विष्णुकुण्ड और ब्रह्मकुण्ड हैं। यात्री इन कुण्डों में स्नान करते हैं। सायंकाल हरिद्वार के ही समान यहाँ भी नित्य आरती होती है।

गोमुख—कई साहसी व्यक्ति यहाँ से १५ मील विकट मार्ग से चलकर गोमुख पहुँच जाते हैं। गोमुख का दृश्य अत्यन्त रमणीय है। यहाँ गंगाजी हिमानी से वाहर निकलती हैं। उसकी चौड़ाई २० फीट है, किन्तु समुद्र में मिलने के स्थान पर २० मील चौड़ी है। गंगोत्री से १५ मील आगे गोमुख है। यह भी

गंगा का उद्गम-स्थान नहीं माना जाता। इस विषय पर मैंने दिल्ली और धारवाड रेडियो केन्द्रों से दो भाषण भी प्रसारित किये हैं। प्रति वर्ष उत्तर प्रदेश सरकार के कई मंत्री और अधिकारी भी यहां आते हैं और कई विद्वान् यात्री भी यहां की यात्रा करते हैं; किन्तु किसी ने इस सम्बन्ध में उचित विचार नहीं प्रकट किया। उत्तर प्रदेश के भूगोल में इन दोनों को उद्गम-स्थान मानते हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि इसका ज्ञान अभी तक किसी को पूर्ण रूप से नहीं हुआ है। पाठ्य पुस्तकों में इस तरह के पाठ लिखने के लिए सर्वे विभाग की सलाह लेनी चाहिए। नीचे सर्वे विभाग की कुछ रिपोर्ट का थोड़ा विवरण देता हूं। उसका सारांश यह है—

ऐसा अनुमान किया जाता है कि बदरी-केदार के पीछे जो नारायण, चौखम्बा, नीलकण्ठ केदार आदि पर्वत हैं उनके पीछे की तरफ से नारायण पर्वत की तलहटी से गंगा निकलती है। गोमुख से ऊपर ४ मील जाने पर बाईं ओर से एक प्रवाह आकर गंगा हिमनद में मिलता है जिसका प्रारम्भ गोमुख के पीछे से होता है और दूसरी ओर (नारायण) चौखम्बा शिखर के नीचे तक फैला हुआ है। गंगा हिमनद १५ मील लम्बा और ४ मील चौड़ा है। कुछ दूर आगे जाने पर चतुरंगी नामक नाम का दूसरा हिमनद गंगा हिमनद में बाईं ओर से मिलता है। दाहिनी तरफ केदारनाथ शिखर का पिछला भाग टूट-टूटकर इस नदी के रिक्त भाग को पूर्ण करता रहता है।

गंगोत्री हिमनद के पूर्वभाग में चौखम्बा नामक शिखर से हिमनद प्रारम्भ होता है और गोमुख तक आकर समाप्त हो जाता है। इसके नीचे गंगाजी गुप्तगामी होकर बहती रहती हैं। फिर भी अभी तक

साधकों के लिए आध्यात्मिक राज्य की तरह हैं। यहाँ का जड़-चेतन सबकुछ तपोमय है। मालूम पड़ता है कि जब से मानव गंगा के किनारे आकर बसने लगे तभी से यह सारा प्रदेश तपोवन बन गया। हरिद्वार ही गंगा का द्वार है। हिमगिरि के पदतल में गंगा-तट पर वास करने से जीवन पावन हो जाता है, जो गंगा गोमुख में केवल २० फीट चौड़ी है वही गंगा बंगाल उपसागर में २० मील चौड़ी फैली है और पाटलिपुत्र से समुद्र तक बड़े-बड़े जहाजों को ले जाती है। पवित्र मेरुगिरि के अंचल से दौड़नेवाली, भगवत्पाद-प्रसूता, चन्द्र-सीमा से प्रवाहित होनेवाली, धूर्जटी की जटाओं में सजनेवाली, पवित्र गंगा जिन-जिन दशाओं में बहती है उन सभी स्थानों में ऋषि-मुनियों के आश्रम बन गये हैं। इन आश्रमों में साधकों और तपस्वियों की साधना के निमित्त हजारों कुटीर बन गये हैं। पावनतम गंगा में एक अपूर्व पवित्रता, स्फूर्ति, चैतन्य और शान्ति है। गंगा माता जीवन-धारा बनकर दिव्य करुणा के साथ भूलोक में प्रत्यक्ष हुई हैं। इसीलिए कालचक्र के बदलने पर भी और अनेक साम्राज्यों के उदय और अस्त होने पर भी अनन्त जीवों का आधार बनकर अव्याहत गति से बहती जा रही है। गंगोत्री से १३०० मील बहकर गंगा सागर में मिल जाती है। उत्तराखण्ड की चतुर्धाम-यात्रा यहाँ तक पूर्ण हो गई। गंगोत्री से वापसी में उसी मार्ग से टिहरी पहुँचना चाहिए। पुनः वहाँ से चमुवा होते हुए मसूरी, चकराता और देहरादून देखना चाहिए।

देहरादून—मेरी हिमालय-यात्रा के प्रारम्भिक दिनों से ही देहरादून मेरे लिए एक प्रवास-केन्द्र बन गया था। सगोत्री होने से श्री रामनारायण मिश्र का भारद्वाज-आश्रम ही मेरे लिए भी सदा का निवास-स्थान बन गया है। स्व० पण्डित केदारनाथ शर्मा अपने मासिक पत्र 'परलोक' को यहीं से प्रकाशित करते थे और रामनारायणजी के देहरा प्रेस में छपवाते थे। कुछ समय बाद देहरादून में हिमालय-मधुशाला की स्थापना की गई और मैं उसका संचालक हुआ। इनके परिवार के लोगों से अब भी मेरा घर-जैसा सम्बन्ध है। प्रस्तुत पुस्तक का हिन्दी-भाषान्तर भी यहीं हुआ। इसमें श्री राधाकृष्णजी और गोपालकृष्णजी आदि बंधुओं ने बहुत सहयोग दिया। देहरादून में मधुमक्खी-पालन-केन्द्र के सम्बन्ध में पण्डित अमरनाथजी वैद्य, मुनिजी, दयानन्द, सी० डी० बहुगुणा आदि कई सज्जनों ने मेरी सहायता की। बाबू रामचन्द्रजी ने इस कार्य के लिए अपने बगीचे में एक कमरा भी दिया था। उन दिनों महेन्द्रपुर के रायसाहब सकलानीजी से भी मेरा परिचय

हुआ था जोकि एक विशेष प्रकार के व्यक्ति थे। गंगोत्री जानेवाले कई यात्री हरिद्वार से यहाँ पहुँचकर मोटर से मसूरी चले जाते हैं तो आगे उत्तरकाशी मार्ग धनराई का होता है। जब पहले नरेन्द्रनगरवाले मार्ग से मोटर नहीं थी तो यात्री इसी मार्ग से जाते थे। आजकल पर्वतीय क्षेत्रों में कई नये मार्ग रहे हैं। उनका पूरा विवरण नक्शे में देख लेना चाहिए।

यहाँ श्री गुरु रामराय महाराज की गद्दी है। इसी से यह प्रसिद्ध भी है। इसकी प्रसिद्धि के कई कारण हैं। यह जिले का प्रमुख स्थान है अतः यहाँ प्रकार के आफिस हैं। यहाँ की वन-अनुसंधानशाला एशिया भर में प्रसिद्ध है यहाँ का मिलिटरी कालेज अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मसूरी, चकराता आदि ... की छावनियों के समीप होने से और रेल-मार्ग के भी यहीं पर समाप्त हो के कारण ऊपर जानेवाले लोग यहीं होकर जाते हैं। इस जिले के पूर्व और उत्तर दक्षिण में गंगा और यमुना नदियाँ बहती हैं और उत्तर-दक्षिण में हिमालय शिवालिक पर्वत सीमा-पुरुष की तरह खड़े हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त इस नगर के चारों ओर कई रमणीय और दर्शनीय स्थान हैं। यहाँ ठहरने के लिए धर्मशालाएँ और कई होटल हैं। धर्मशालाओं में जैन धर्मशाला और शिवाजी धर्मशाला प्रमुख हैं। दरबार में भी ठहर सकते हैं।

गगनचुम्बी पर्वत-शिखरों से कई धाराओं से गिरनेवाली सहस्रधारा और मालदेवता बाँध अत्यन्त दर्शनीय हैं। गुफा में से गर्जना करनेवाला धुच्चू पानी हरे-भरे मैदान में शोभायमान चन्द्रबनी, पाचक जल देनेवाला नालापानी आदि सब स्थानों की रमणीयता कुशल चित्रकार की

आश्रम आदि कई दर्शनीय आश्रम हैं। यहाँ के स्वामी गोविन्दानन्दजी अच्छे भजनोपदेशक हैं। यहाँ भजन, कीर्तन, उपदेश आदि कार्यक्रम होते रहते हैं। मसूरी जानेवालों को चाहिए कि देहरादून से ८ मील राजपुर तक मोटर से जाकर श्रद्धानन्द, शाहंशाह आदि मुख्य आश्रमों को देखते हुए जायँ। आगे ७ मील पैदल-मार्ग तय करके मसूरी पहुँच सकते हैं। मोटर से जानेवालों को देहरादून रेलवे स्टेशन पर ही मसूरी के लिए मोटर मिल जाती है किन्तु मसूरी के लिए मोटर के किराये के अतिरिक्त १ रु० ५० नये पैसे टोल-टैक्स या चुंगी प्रत्येक यात्री को देना पड़ता है।

मसूरी—देहरादून में हमारा मधुमक्खी-पालन-केन्द्र था, अतः मुझे मधुमक्खी-पालन के शिक्षण के लिए भी कई बार मसूरी जाना होता था। हिमालय में काश्मीर से दार्जिलिंग तक जलवायु-परिवर्तन के लिए कई केन्द्र हैं। उन सबका विवरण यथास्थान दिया गया है। मसूरी सबलोगों के लिए सुविधाजनक है। अतः इसे शैलों की रानी कहते हैं। यहाँ के छोटे-बड़े पर्वत-शिखर, गहरी घाटियाँ, सुन्दर उद्यान, कई बाज़ार और शिक्षण-केन्द्र दर्शकों के मन को आकर्षित कर लेते हैं।

मसूरी का मौसम अप्रैल से अक्तूबर तक रहता है। उस समय यहाँ पंजाब, बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, बम्बई और दक्षिण भारत तक के लोग घूमने आते हैं। यहाँ ठहरने के लिए आर्यसमाज, सनातनधर्म, गुरुद्वारा आदि धर्मशालाएँ हैं। यदि अधिक सुविधा की आवश्यकता हो तो पहले ही प्रबन्ध करने से किराये के मकान भी मिल जाते हैं। यदि थोड़े ही दिन ठहरना हो तो हिमालय क्लब, चार्लेविले, सेवाय, पंजाबी और गणेश आदि कई ठहरने-योग्य होटल हैं। किसी भी अनुकूल स्थान में यात्री रह सकते हैं।

देहरादून से २२ मील चक्कर खाते हुए मोटर-मार्ग गया है। सर्पाकार में आठ-दस मील तक फैली हुई मसूरी में कई स्थान दर्शनीय हैं। लाइब्रेरी से लण्डोर बाज़ार तक मसूरी का प्रमुख मार्ग है। हैपीव्हेली, कपूरथला महल, कम्पनी बाग, कम्पनी खड्ड, चावर खड्ड, केम्प्टी फ़ाल्स, भुट्टा फ़ाल्स, मौसी फ़ाल्स, कैमल्स-बैक रोड, बालूगंज, कॉनवेण्ट हिल, डिपो हिल, टिहरी रोड आदि रमणीय स्थानों को पैदल या घोड़े पर ४-५ दिन में देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त वुडस्टाक कॉलेज, ओग्रो स्कूल, मानव-भारती, सनातनधर्म गर्ल्स

स्कूल, धनानन्द कालिज, लेस्वेज स्कूल आदि कई संस्थाएँ हैं। गनहिल पर चढ़कर सारे नगर के मुख्य भाग का और उपों हिल से दिखाई देनेवाले बदरी-केदार के शिखरों का दृश्य अत्यन्त चित्ताकर्षक है। दर्शकों को चाहिए कि तीनों वाटर फ़ाल्स और टिहरी रोड से आगे धनोल्टी की तरफ़ से गंगा-यमुना का अपूर्व दृश्य अवश्य देखें। यहाँ से एक मार्ग चकराता तक जाता है जो ३४ मील दूर है। बीच में यमुना नदी पार करने के लिए पुल है। यहाँ के दृश्य को देखने के लिए कई लोग वन्दर-पूंछ और शिमला तक जाते हैं। आजकल मोटर-सड़क भी बन रही है, थोड़े समय में पूरी हो जायगी। सड़कों के बन जाने के बाद इस प्रदेश में घूमने की पूर्ण सुविधा हो जायगी।

अन्य दर्शनीय स्थान

महेन्द्रपुर—देहरादून और मसूरी के आस-पास स्थित स्थानों में महेन्द्रपुर एक ऐतिहासिक जगह है जिसके शासक रायसाहब गजेन्द्रदत्त सकलानी थे। इनका मुख्य गाँव महेन्द्रपुर पुराने शासकों का प्रतीक था। रायसाहब के पूर्वजों ने नेपाल का कुछ भाग ब्रिटिश राज्य की सहायता से प्राप्त कर लिया था तब इन्हें टिहरी-गढ़वाल के ५०-६० गाँवों की जागीर का अधिकारी बना दिया था।

जब हम महेन्द्रपुर पहुँचे तो रायसाहब अपने रुग्ण पुत्र के पास चिंतित-से बैठे हुए थे। उनके पुत्र से भी मेरा परिचय था। कुशल-क्षेम पूछने और कहने के बाद शीघ्र ही हमलोगों को नींद आ गई। हम बहुत थक चुके थे, अतः हमें पता भी न चला कि नींद कब आई।

के आश्रय में भोजन प्राप्त करते थे जब तक कि उनका न्याय पूरा खतम नहीं होता था।

रायसाहब का न्यायालय उनकी अनन्त उदारता का प्रतीक था जिसका प्रत्यक्षीकरण आँखों-देखी घटना से हो जाता है। उनका न्यायालय टहलते-घूमते, आते-जाते, उठते-बैठते, उन्हीं के साथ रहता था।

जब हम प्रातःकाल रायसाहब के साथ घूमते हुए नदी की तरफ निकल गये तो मार्ग में किसी छोटी जाति के पति-पत्नी अपना झगड़ा लेकर उपस्थित हुए। बस, अब क्या था। न्यायाधीश महोदय का न्यायालय प्रारम्भ हो गया। झगड़ा यह था कि पत्नी पति को छोड़ना चाहती थी और पति पत्नी को। झगड़े का कारण पत्नी के माँ-बाप के द्वारा दहेज न देना था। अन्ततः पत्नी के घरवालों ने लिया हुआ धन वापस कर दिया और उस दम्पति को एक-दूसरे को छोड़ने की आज्ञा भी न्यायालय से मिल गई। इसके बाद वे अपने-अपने मार्ग पर चले गये और हम भी देहरादून वापस लौट आये।

रोनेवाला (साधु) संन्यासी—'परलोक'-पत्रिका के सम्पादक मेरे मित्र पं० केदारनाथजी देहरादून में भारद्वाज आश्रम में रहते थे। यहीं उनकी पत्रिका का केन्द्रीय कार्यालय था। मैं भी उनके साथ वहीं रहता था। उस समय हम दोनों फक्कड़ थे। स्वयं भोजन बनाकर खाते थे। साधु-सन्तों की सेवा करना मुख्य कर्म था। इसीलिए मेरे दोनों मित्र कितने ही सन्तों को सेवा के लिए पकड़ लाते थे। उनकी सेवा का भार मुझ पर ही रहता था। उस समय हमें एक ऐसे संन्यासी मिल गये जो यूरोप, इंग्लैण्ड आदि कई देशों में वेदान्त-प्रचार करके लौटे थे। वे महात्मा संस्कृत, अंग्रेजी और अन्य कई भाषाओं के ज्ञाता थे। उनके मुख पर वाचालता, तेज की आभा चमकती थी। उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर हरिद्वार के विद्वानों ने उनका बहुत स्वागत-सम्मान किया और उन्हें हरिद्वार में वैकुण्ठ-आश्रम के महन्त पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए तैयार हो गये।

हमारे मित्रों पर, देहरादून आर्यसमाज में दिये गये उनके प्रवचन का बड़ा प्रभाव पड़ा। अतः उन्होंने संन्यासी जी को भारद्वाज-आश्रम के समीप श्री रामचन्द्र की कोठी पर निमन्त्रित किया। मैं अपनी मित्र-मण्डली में सबसे छोटा था अतः सम्पूर्ण सेवा-भार मुझ पर ही पड़ता था और मुझे ही अधिक समय तक संन्यासी के साहचर्य का सौभाग्य मिला। मैंने उनके सम्बन्ध में सब कुछ जान लिया। उनकी

वेश-भूषा पाश्चात्य ढंग की थी परन्तु गेरुवे रंग से रँगी रहती थी, इसीलिए लोग उन्हें साहब-सन्यासी कहकर पुकारने लगे थे।

संन्यासी जी का आहार—संन्यासी जी, नित्य ही तीन सेर दूध, आधा सेर सेब, पाव-भर किशमिश, पाव-भर बादाम और पाव भर घी में तले हुए पाव-भर आलू खाते थे। इसके अतिरिक्त अन्य फलों का सेवन भी वे करते ही थे। उन्होंने अन्न का सर्वथा त्याग कर रखा था। उस समय उनके इस प्रकार के भोजन पर प्रति दिन चार-पाँच रुपया व्यय होता था। संन्यासी महन्त लक्ष्मणदासजी की बग्घी में बैठकर दून-दर्शन करते थे।

उन्होंने दृष्टि-सुख पहुँचानेवाले स्थानों के दर्शन बड़ी रुचि से किये। मैं सर्वदा स्वामीजी के ही साथ रहता था। रात्रि के समय सन्यासीजी की विशेष क्रिया होती थी। अर्द्धरात्रि व्यतीत होने पर जब कभी मेरी आँख खुलती थी तो मैं संन्यासीजी को रोते हुए पाता था। एक दिन मैंने पूछ लिया—"स्वामीजी, क्या बात है? आप क्यों रोते है?" उन्होंने उत्तर दिया कि हिन्दू स्त्री, पुरुष-सेवा करना नहीं जानती है। मैंने लन्दन में कई वर्ष व्यतीत किये। वहाँ ऊँचे घराने के पुरुष-स्त्री लार्ड और लेडी मेरी सेवा में लगे रहते थे और मैं भी उनके साथ वेदान्त-प्रवचन करता हुआ प्रसन्न रहता था। यहाँ तो हिन्दू-धर्म समाप्त हो चुका है। मैं उनके कथन का अनुमोदन न कर सका और उन्हें इस प्रकार का उत्तर दिया—"स्वामीजी, भारत एक बड़ा देश है। यहाँ पर धनी और निर्धन सभी व्यक्तियों की औसत आय ६ पैसा है। इतनी कम आयवाले देश मे आपकी इससे अधिक क्या सेवा हो सकती है। मेरे मित्र तो नित्य ही आप पर ४-५ रुपया व्यय करते

का कारण बाद में मालूम हुआ कि वे असीमित और शक्तिशाली भोजन से प्राप्त होनेवाली शक्ति के व्यय के लिए मार्ग ढूंढ़ते थे। परन्तु वह मार्ग उन्हें भारत में न मिल सका। वीर्य-शक्ति की तीव्रता को भोग और योग दो ही क्रियाओं से शान्त किया जा सकता है। योग करते हुए स्वामीजी को हमने कभी नहीं देखा और भोग-लिप्सा के लिए भारत की संस्कृति उनका स्वागत न कर सकी।

चकराता—देहरादून से चकराता तक ५८ मील सुन्दर मोटर-मार्ग है। यह भी मसूरी के समान जलवायु-परिवर्तन के योग्य और दर्शनीय स्थान है। पहले यहाँ सेना रहती थी। देहरादून और चकराता के बीच में चुहड़पुर नामक बड़ी बस्ती है। यहाँ से यमुना-पार करके कालसी पहुँचा जाता है। यहाँ पर अशोक के समय का एक स्तम्भ है जिसमें पाली भाषा में शिलालेख है। यहाँ का अशोक-आश्रम भी देखने-योग्य है। स्तम्भ की उँचाई १४-१५ फीट होगी और मोटाई भी लगभग इतनी ही है। यहाँ के लिए सहारनपुर से सीधा मोटर-मार्ग भी है।

इन पर्वतों में चढ़ते समय यहाँ के जंगलों में अपने बाल-बच्चों के सहित भैंस चरानेवाले लोग काले कपड़े पहने हुए भूतों के सदृश दिखाई देते हैं। इन लोगों से डरना नहीं चाहिए। ये लोग एक स्थान पर नहीं रहते। ये लोग कालसी से काश्मीर तक घूमते रहते हैं। मुसलमान जाति होने पर भी इन्हें प्रतिदिन नमाज़ पढ़ने के लिए मस्जिद में नहीं जाना पड़ता तथा मौलवियों से कुरान-पाठ भी नहीं करवाना पड़ता है। ये अपने में मस्त रहकर जंगलों में ही आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं, इन्हें गुर्जर (गुज्जर) कहते हैं।

कालसी से लखवाड़ होते हुए एक मार्ग यमनोत्री के मार्ग में बरकोट में मिल जाता है। इस मार्ग का निर्माण हो जाने पर मोटर के द्वारा यमनोत्री के लिए यही मार्ग सरल पड़ेगा। अन्य भी कई मार्ग बन रहे हैं। एक मोटर-मार्ग मसूरी से चकराता के लिए बननेवाला है। उस मार्ग को हिमाचल की सीमा में शिमला तक ले जाने की व्यवस्था है। परन्तु इसमें कई वर्ष लगेंगे।

चकराता मुख्यतः दो भागों में विभक्त है—(१) कल्याणी, (२) चकराता। कल्याणी में पहले सेना की छावनी थी इसलिए वहाँ अच्छे बाजार, खेल के मैदान आदि अब भी हैं। रात्रि में यहाँ से मसूरी की रंग-बिरंगी बत्तियाँ दिखाई देती हैं। यहाँ ठहरने के योग्य स्थान जनता होटल और इंडिया रेस्टोरेण्ट हैं। इनके अतिरिक्त

कई छोटे होटल भी हैं। चकराता, जौनसार-बावर (देहरा ज़िले में) तहसील हैं। जौनसार-बावर की रीति और प्रथाएं बड़ी विचित्र हैं। डा० काटजू के आज्ञानुसार मैं इस भाग में 'मधुमक्खी-पालन-केन्द्र' के योग्य स्थान को ढूंढने के लिए सर्वे करने गया था। इसलिए कई दिनों तक यहाँ के लोगों के सम्पर्क में मुझे सब बातें विदित हो गईं।

लाखामण्डल—चकराता से २६ मील आगे 'लाखामण्डल' नामक दर्शनीय स्थान है। इसी स्थान पर कौरवों ने पाण्डवों को लाक्षागृह में जलाने का प्रयत्न किया था। इस प्रकार इस क्षेत्र में महाभारत की कई कथाओं के उदाहरण मिलते हैं। यहाँ अबतक कई स्थानों में द्रौपदी को उदाहरण या आदर्श मानकर सब भाइयों के लिए एक ही स्त्री से विवाह करने की प्रथा चली आ रही है।

देवबन—चकराता से तीन मील चलकर देवबन की कठिन चढ़ाई आरम्भ होती है और आगे तीन मील की चढ़ाई पार करने पर देवबन आता है। यह स्थान 'देवताओं की क्रीड़ाभूमि' के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ चारों ओर से घने देवदार के जंगलों के बीच में वन-विभाग के कई बँगले (विश्राम-भवन) बने हुए हैं। इनमें ठहरने के लिए स्वीकृति लेनी पड़ती है। वन-अनुसन्धान के कालेज के विद्यार्थी पेड़ और वनस्पतियों के अध्ययनार्थ यहाँ आते हैं। अत. यहाँ कई कमरे बने हुए हैं। मैंने भी इन्हीं के साथ ठहरकर ये सब दृश्य देखे हैं। अधिक ऊंचाई के कारण यहां से चकराता और मसूरी के बाजार और मकान आदि दिखाई देते हैं। रात्रि में चकराता और मसूरी में जगमगानेवाली विद्युत-पंक्तियाँ यहाँ से अत्यन्त सुहावनी प्रतीत होती हैं। यहाँ से हिमालय की हिमाच्छादित पर्वत-

जाते हैं। ये प्रथाएँ धीरे-धीरे बदलती जा रही हैं। विवाह के समय वर की ओर से कन्या-पक्ष को धनराशि देनी पड़ती है। बाद में कन्या के घरवाले आकर विवाह कर देते हैं। यदि पति-पत्नी से उचित व्यवहार न करे तो वह उसे छोड़कर दूसरे से शादी कर लेती है। ये लोग कहते हैं कि घर में दो या अधिक औरतों के रहने से झगड़ा आदि होता है और भाइयों में बँटवारा हो जाता है। अतः ये द्रौपदी का उदाहरण लेकर सब भाइयों के लिए एक ही पत्नी रखते हैं। स्त्री के ऊपर बड़े भाई का अधिकार रहता है और उसकी अनुपस्थिति में उससे छोटे का। बहुपति-एकपत्नी विवाह के सम्बन्ध में कहते हैं कि यहाँ खेती का कार्य बड़े परिश्रम से होता है, एक ही स्त्री होने से सभी भाई साथ रहकर मिल-जुलकर काम करेंगे तो खेती अच्छी होगी और सबको अन्न मिल सकेगा।

अतिथि-सत्कार और त्योहार आदि

हरेक गाँव में पंचायत के अधीन एक ढोल बजानेवाला होता है। जब वह ढोल बजाते हुए जाता है तो उसके हाथ में एक टोकरी रहती है। लोग उसे चावल, आटा, घी आदि आवश्यक वस्तुएँ दे देते हैं। उसकी टोकरी इन्हीं वस्तुओं से भर जाती है। यहाँ के घरों में अविवाहित लड़कियों को 'ड्याँटुड़ी' कहते हैं। विवाहिता स्त्री को 'र्याँटुड़ी' कहते हैं। इनके घरों में जब कोई अतिथि पहुँचता है तो उसकी सेवा करना ड्याँटुड़ियों का काम होता है। वे पहले गरम पानी से अतिथि के पैर धोती हैं और बाद में जिस सेवा की आवश्यकता हो उन्हीं से ली जाती है। इसमें किसी प्रकार की अनुचित धारणा या विचार नहीं होता है। यदि उन (ड्याँटुड़ियों) से प्रेम किया जाय तो ये लोग बुरा नहीं समझते। उन्हीं के 'र्याँटुड़ी' बन जाने के बाद ये सेवाएँ उनसे नहीं ली जा सकतीं। इस प्रकार वहाँ की कई प्रथाएँ हैं जो अब धीरे-धीरे बदलती जा रही हैं।

इनका इष्टदेव 'महासू' है। मकर-संक्रांति के दिन इस देवता को बकरे की बलि दी जाती है। एक बकरे को साल-भर तक एक ही कमरे में बाँधकर खूब खिलाते हैं। जब मेला आता है तो उसके स्थान पर पहले दूसरा बच्चा बाँधकर पहलेवालों को निकालते हैं और बाद में देवता के नाम से उसकी बलि देकर उत्सव मनाते हैं। उस समय इनका नृत्य-संगीत आदि दर्शनीय होता है। नृत्य में पहले तो स्त्रियाँ और पुरुष पृथक्-पृथक् नाचते हैं। बाद में ड्याँटुड़ियों के साथ

नृत्य होता है। जोश और उमंग पैदा करने के लिए बीच-बीच में सुरापान भी होता है। मर्दाने और बाद्य भी नृत्य के साथ-साथ चलते हैं। ऐसे त्योहार वर्ष में ३-४ होते हैं।

उन्नत गिरि-शिखरों से घिरे हुए होने के कारण यहाँ चोरी कम होती है। अगर चोरी हो जाए तो उसका पता मन्त्र के बल से लगाने की प्रथा है। जिस घर में चोरी होती है, ब्राह्मण वहाँ आकर तुम्बी में मन्त्र-शक्ति का प्रयोग करता है और उस घर के आदमी का हाथ मजबूत से तुम्बी पर चिपका देता है। मन्त्रित तुम्बी जब सीधे चोर के घर पहुँच जाती है तो वह हाथ से छूट जाती है। चोरी का पता लग जाने पर चोर से चोरी के माल का मान मूल्य वसूल किया जाता है।

जौनसारी लोग मृत व्यक्ति के शव को जलाते हैं और बाद में सबको भोजन कराते हैं। देखादेखी कई लोग अब हरिद्वार में अस्थि-विसर्जन करके श्राद्ध आदि करने लग गये हैं। दुनिया जिस शीघ्र गति से बदलती जा रही है यहाँ की प्रथाएँ भी उसी प्रकार बदलती जा रही हैं। मोटर के सड़कों के बनने से बाहर-आवागमन और दर्शन के कारण समय की स्थिति के अनुसार यहाँ काफी परिवर्तन हो चुका है।

कैलास-मानस-यात्रा

उत्तरे मानसे स्नानं कुर्यादात्म् विशुद्धये ।
सूर्यलोकादि संसिद्धि सिद्धये पितृमुक्तये ॥

कैलास-मानसरोवर का महत्त्वपूर्ण वर्णन पुराणों में पूर्ण विस्तार से किया गया है। इस सरोवर से निकलनेवाली सिन्ध तथा ब्रह्मपुत्र और सतलुज सरिताएँ अचल, अनन्त तपस्वी हिमालय का यश, भारत के मैदानों में फैलाती हुई पूर्व-पश्चिम के समुद्रों में लीन हो जाती हैं। ऋषि-मुनियों की पुण्यतपोभूमि कैलास पर जनसाधारण के लिए पहुँच जाना यदि असम्भव नहीं, तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। हिमाच्छादित उच्च शृंगों को पार करते-करते अनायास ही महावीर पांडवों का स्वर्गारोहण-वर्णन दृश्यरूप में सम्मुख उपस्थित हो जाता है। काश्मीर से लेकर उपूसी तक अद्वितीय नागाधिराज को पार करने के लिए सिप्की, रोटांग, नीलांग, नैनी, नीति, कुंगरीबिंगरी, ऊँटघोरा, जयन्ती, लिपुलेक, खोचरनाथ तथा जेलाप-सदृश अनेक दर्रे तिब्बत के मार्ग से जाने में अत्यन्त कठिन प्रमाणित होते हैं। व्यापारी लोग अपने अनुकूल मार्ग पर चलकर तिब्बत में गर्तोक, ज्ञानिमा, दावा, सदोक तथा तकलाकोट आदि व्यापारिक मण्डियों में पहुँचते हैं ; किन्तु यात्रियों के लिए सर्व सुविधाजनक यात्रा-मार्ग का वर्णन निम्नलिखित है :—

कैलाश के हेतु छः मार्ग हैं—१. टनकपुर रेलवे स्टेशन से पिथौरागढ़, अस्कोट होते हुए धारचुला तक मोटर द्वारा जा सकते हैं। इसी भाँति अलमोड़ा से जाने वाले भी बागेश्वर होते हुए धारचुला तक मोटर द्वारा जा सकते हैं। आगे खेला, पाँगू, जुप्ती गर्ब्यांग होते हुए भारत की सीमा पर लिपुलेक दर्रा पार कर अस्कोट होते हुए कैलास तक पहुँच सकते हैं। धारचुला से आगे गर्ब्यांग तक मोटर सड़क भी बन रही है।

२. बागेश्वर से मन्स्यारी, मीलम होते हुए कुंगरी बिंगरी, ऊँटघोरा घाटी पार कर कैलास-दर्शन कर सकते हैं। यह मार्ग पहले मार्ग से अधिक कठिन है। इस मार्ग को जौहर-मार्ग भी कहा जाता है। (परिक्रमा करनेवाले इसी मार्ग को पसन्द करते हैं)।

३. जोशी-मठ से नीतिघाटी (दर्रा) पार करके भी कैलास पहुँचा जा सकता है।

४. बदरीनारायण से मानाघाटी (दर्रा) से थोलिंग मठ तथा तीर्थापुरी गुफा होते हुए यह रास्ता कैलास जाता है।

५. शिमला से चिनी तक मोटर मार्ग बन रहा है और आगे शिप्की घाम पार करके सतलुज के किनारे-किनारे चलकर भी कैलास पहुँचा जा सकता है। लेकिन यह रास्ता बहुत लम्बा है। (रामपुर-बुशहर तक मोटर चलती है)

६. नेपाल से शालिग्राम क्षेत्र होते हुए खोचरनाथ की ओर से भी कैलास जाने के लिए मार्ग है। उपरोक्त छः मार्गों के अतिरिक्त काश्मीर तथा दार्जिलिंग से आनेवाले मार्ग भी हैं; किन्तु ये कैलास जाने के लिए अपेक्षाकृत दूर पड़ते हैं।

उपरोक्त मार्गों में से जो मुझे सबसे सुविधाजनक प्रतीत हुआ उसका वर्णन कर रहा हूँ। मैंने स्वयं अपनी यात्रा इसी मार्ग से पूर्ण की है। इस यात्रा का सबसे उपयुक्त मौसम जून से अक्टूबर-सितम्बर तक है। मार्ग में अनेक प्रकार के लोगों के भिन्न-भिन्न रीति-रिवाज आदि का भी पर्याप्त परिचय मिल जाता है। पुराणों तथा तुलसीकृत रामायण में वर्णित शिव-साम्राज्य तथा शिव-गणों आदि का यहाँ प्रत्यक्ष दर्शन हो जाता है। किन्तु यह अनुभव वहाँ तक की यात्रा के पश्चात् ही सम्भव है, अन्यथा नहीं। मेरा ऐसा ही अनुभव है। कैलास तक यात्रा अत्यन्त ही दुर्गम है, तभी प्रसिद्ध भी है—अपनी लाश (मृत शरीर) छोड़कर कैलास जाओ।

कैलासारोहण संस्था

कारण चलने का आयोजन कर ही रहा था कि श्री जोशीजी से समाचार प्राप्त हुआ कि 'पर्वतारोहण' शब्द के कारण सरकार ने हमें यात्रा की स्वीकृति नहीं दी। इसके पीछे ब्रिटिश सरकार का भाव स्पष्ट था कि भारतीयों को ऐसा साहसिक कार्य करने का अवसर न दिया जाय। अन्ततः हम सब यात्रा-इच्छुक व्यक्ति, व्यक्तिगत रूप से ही यात्रा के लिए तैयार हो गये। उस समय मेरे-जैसे यात्री को किसी भी प्रकार के पासपोर्ट की आवश्यकता नहीं थी। किन्तु मैं अपने मित्र बद्रीदत्त जी पांडेय (एम० एल० ए०) से मिला तथा यात्रा की पर्याप्त जानकारी प्राप्त की। यह महाशय बदरीनारायण में मिले थे जबकि मैं मैसूर महाराज के संग बदरीनारायण की यात्रा को गया था। ये मेरी कैलास-यात्रा में पूर्ण सहयोग प्रदान करेंगे, ऐसा इनका पहले से ही वायदा था। किन्तु जब मैं पांडेयजी से मिला तो उस समय मालूम हुआ कि वे एक दुःखद घटना के शिकार बन गये हैं। अतः मैं उनसे मिलकर ही वापस चला आया। जहाँ मैं ठहरा था उस होटल का मालिक मेरे साथ यात्रा के लिए तैयार हो गया। इससे मुझे बहुत ही सहायता मिली क्योंकि यात्रा में एक से दो भले, एक जगत्प्रसिद्ध कहावत है।

इस मार्ग को ठीक प्रकार से समझने के लिए इसे चार भागों में बाँट दिया गया है। काठगोदाम से ८५ मील मोटर से चलकर अलमोड़ा पहुँचा जाय। इस मार्ग में प्रत्येक प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हैं।

१. अलमोड़ा से खेला तक—यहाँ धर्मशाला और मुसाफ़िरखानों में ठहरते हैं, यदि यहाँ के दुकान में ठहरना हो तो उसी दुकानदार से ही सामान खरीदा जाय। वैसे भी आवश्यकता की लगभग सभी वस्तुएँ यहाँ प्राप्य हैं। किन्तु यह वर्णन आज से वर्षों पूर्व का है। वहाँ अब मोटर जाती है, अतः अब तक इन सब बातों में परिवर्तन आ जाना सम्भव ही है।

२. खेला से गर्ब्यांग तक—यहाँ भी लोगों के घर में ही ठहरना पड़ा तथा उन्हीं से सामान भी लेना पड़ा। इस बीच में केवल जुप्ती नामक स्थान पर ही एक दुकान थी। किन्तु अब इस मार्ग में भी कई दुकान तथा धर्मशालाएँ खुल गई हैं।

३. पांगु से गर्ब्यांग तक भोटिया जाति की बस्ती है। यहाँ इनके विचित्र रीति-रिवाजों का अनुभव हुआ। लम्बे काल में अनेक परिवर्तन होना स्वाभाविक ही है। अतः यहाँ पर भी इस काल में मोटर-सड़क का निर्माण हो चुका है तथा ठहरने का भी अपेक्षाकृत अच्छा प्रबन्ध हो गया है। दो-एक साल में

गर्ब्यांग तक मोटर-सड़क हो जायगी।

४ गर्ब्यांग से डेढ़ मास के लायक पर्याप्त आवश्यक सामग्री लेकर आगे बढ़ना होता है। यहाँ से अब लोगों को समूह बनाकर चलना होता है, क्योंकि यहाँ से बड़ा बीहड़ मार्ग प्रारम्भ हो जाता है जिसमें अकेले-दुकेले व्यक्ति का साहस जाने का नहीं होता। अत्यधिक शीत से बचाव के लिए तम्बू, कंबल तथा चोरों व उचक्कों से रक्षा के लिए पिस्तौल व बन्दूक आदि तथा इन सब सामानों को ढोने के लिए खच्चर, सवारी के लिए घोड़ो, भार तथा मार्ग बताने के लिए गाइड कुलि आदि का प्रबन्ध चलने से पूर्व ही करना होता है। भोजन के लिए सत्तू, सूखे मेवे तथा बिस्कुट आदि सूखा सामान जिसे बिना पकाये खाया जा सके, ले जाना चाहिए। क्योंकि यहाँ पर आग जलाना कठिन है। इस यात्रा के रोचक वर्णन आगे लिखूंगा।

यात्रा का प्रारम्भ—अलमोड़ा से चलकर बागेश्विना कनेरीछिना होते हुए श्रीकृष्ण-प्रेमी के आश्रम, उत्तर वृन्दावन में पहुँचा। वहाँ दो-एक दिन विश्राम करके आगे बढ़ा। सेराघाट, गनाई, थल, डिडीहाट आदि अनेक ग्रामों को पारकर मान्देष नामक एक काफ़ी ऊँचे स्थान पर जा पहुँचा। यहाँ से पिंडारी, पचचूल, नन्दादेवी आदि अनेक मनोहारी हिमाच्छादित चोटियाँ जो कि मौन-प्रहरियों की भाँति सतर्क खड़ी हैं, दिखाई देती हैं। इनके दर्शन कर अतीव आनन्द की प्राप्ति होती है। इस प्रकार ६५ मील की यात्रा ५ दिनों में पूरी की व अस्कोट नामक एक छोटे नगर में पहुँचा जो किसी समय एक रियासत के रूप में था। यह पर्वतमाला की एक चोटी पर स्थित नगर है। अब टनकपुर व काठगोदाम से मोटर-मार्ग भी बन

एक स्थान बलवाकोट में एक दिन विश्राम कर २३ मील ऊपर धारचुला पहुँचा।

धारचुला में एक श्री रामकृष्ण-आश्रम है जिसकी संस्थापिका श्रीमती रुमादेवी गर्ब्याल थीं और वे श्रीरामकृष्ण की पत्नी शारदादेवी के साथ रह चुकी थीं। इन्होंने लाहौर तथा कलकत्ता के प्रोफेसरों के साथ सात बार कैलास-यात्रा की थी। उनसे मुझे यात्रा में बहुत सहयोग प्राप्त हुआ। इन्होंने गर्ब्याग तक मेरी यात्रा का समस्त प्रबन्ध कर दिया। यहाँ पर तीन दिन विश्राम करके मैं ८ मील आगे खेला नामक स्थान पर पहुँचा। यहाँ तक तो हिन्दी बोलने तथा समझनेवाले अनेक व्यक्ति मिले, किन्तु उत्तरोत्तर इनका अभाव होता गया तथा मार्ग भी दुर्गमतर होता गया।

यहाँ पर एक दिन विश्राम करके थोड़ी उतराई के पश्चात् एक सरिता पार की तथा कई मील की लोलुंग की कठिन चढ़ाई करने पर पांगु पहुँच गया। यहाँ से भोटियों की बस्ती आरम्भ हुई। जहाँ हिन्दू-संस्कृति का कोई भी चिह्न नहीं मिलता। यहाँ के रीति-रिवाज एकदम अजीब व निराले प्रतीत हुए। अलमोड़ा से खेला तक धामी, भोरो, कर्डी आदि जाति के क्षत्रिय लोग रहते हैं किन्तु लोलुंग की चढ़ाई पर हिन्दू-संस्कृति से विलग भोटिया जाति के लोग मिलते हैं।

भोटिया जाति के रीति-रिवाज—इस जाति के लोग पांगु से ही मिलने शुरू हो जाते हैं, अतः यहीं से इनकी संस्कृति के भी दर्शन होते हैं। इनका लिपिबद्ध इतिहास नहीं मिलता। केवल कानों-द्वारा सुनकर ही इनके ऐतिहासिक जीवन का ज्ञान प्राप्त होता है। प्रचलित है कि यह जाति मंगोलिया से व्यापार करने के लिए यहाँ आई और धीरे-धीरे यहीं पर बस गई। इनकी शारीरिक बनावट तिब्बतियों से बहुत मिलती-जुलती है। ये लोग उन्हीं की तरह छोटे कद, चपटे चेहरे तथा गड़ी हुई नाक और उभरी हुई फटी-फटी-सी आँखों वाले होते हैं। उपरोक्त शारीरिक बनावट उनके मंगोल होने का प्रमाण देती है। हिमालय के चौंदास, व्यास, दारमा तथा जोहार आदि भागों में ही ये लोग प्रचुरता से निवास करते हैं। इस देश में रहने के कारण ये लोग राजपूत जाति में लय हो गये हैं। इनके कुल-देवता का नाम स्यांग से तथा छिपला है। किन्तु इस जाति के अधिकतर व्यक्ति भूत-प्रेतों के ही आराधक हैं। इसके प्रमाणस्वरूप वहाँ स्थान-स्थान पर रंग-बिरंगे कपड़े, फूलों की तरह पेड़ों में बँधे हुए मिलते हैं जो कि प्रेत-पूजा के ही सूचक हैं।

किन्तु अब इस जाति के व्यक्ति, शिक्षा का प्रचार हो जाने के कारण, हिन्दू-संस्कृति से दिन-प्रतिदिन अधिक प्रभावित होते जा रहे हैं। ये लोग खेती-बाड़ी करते हैं, भेड़-बकरी पालते हैं तथा इन पर अपना सामान लादकर तिब्बत के क्षेत्र में व्यापार करने घूमते थे। इसके विपरीत चौंदास तथा जोहार के लोग स्थायी रूप से एक ही स्थान पर निवास करते हैं। किन्तु व्यास तथा दारमा निवासी छः महीने अपने निवास-स्थानों के लिए अपने परिवार को गर्ब्यांग तथा सीमल में छोड़कर तिब्बत क्षेत्र में व्यापार करने के लिए जाते हैं।

तिब्बत की ओर से सर्दी के दिनों में लौटने पर ये लोग अपने-अपने परिवारों को नीचे से ले जाकर काली-गोरी संगम पर जौलजिबी में सर्दी व्यतीत करते हैं। इनकी स्त्रियाँ भी जीविकोपार्जन में मदद करने के हेतु ऊन कातती व उससे कपड़े बुनती हैं। खेती भी करती हैं।

इनके यहाँ बालक के जन्म के पश्चात् उसे माँ से नौ दिन तक एकदम अलग रखा जाता है। यह हमारे यहाँ के रिवाजों के सामने एक बड़ा ही विचित्र प्रतीत होता है। यदि बालक लड़का हुआ तो ४ या ५ वर्ष की उम्र में बड़ी धूम-धाम से उसका मुंडन-संस्कार किया जाता है तथा सभी सगे-सम्बन्धियों को भोजन भी करवाया जाता है। इसी भाँति यह लोग विवाहोत्सव को पृथक् रीति से मनाते हैं। यहाँ प्रत्येक उत्सव में, चाहे धार्मिक हो या सामाजिक, नृत्य आवश्यक समझा जाता है। इसलिए इस जाति का प्रत्येक व्यक्ति नृत्य तथा संगीत में निपुण होता है। हमारे यहाँ की तरह यहाँ नर्तकियों की विशेष श्रेणी नहीं होती। सभी स्त्रियाँ उत्सवों के अवसर पर नृत्य करती हैं। सामान्यतः यह नृत्य तथा संगीत मनोरंजन

एक स्थान वलवाकोट में एक दिन विश्राम कर २३ मील ऊपर धारचुला पहुँचा।

धारचुला में एक श्री रामकृष्ण-आश्रम है जिसकी संस्थापिका श्रीमती रुमादेवी गर्व्याल थीं और वे श्रीरामकृष्ण की पत्नी शारदादेवी के साथ रह चुकी थीं। इन्होंने लाहौर तथा कलकत्ता के प्रोफेसरों के साथ सात बार कैलास-यात्रा की थी। उनसे मुझे यात्रा में बहुत सहयोग प्राप्त हुआ। इन्होंने गर्व्यांग तक मेरी यात्रा का समस्त प्रबन्ध कर दिया। यहाँ पर तीन दिन विश्राम करके मैं ८ मील आगे खेला नामक स्थान पर पहुँचा। यहाँ तक तो हिन्दी बोलने तथा समझनेवाले अनेक व्यक्ति मिले, किन्तु उत्तरोत्तर इनका अभाव होता गया तथा मार्ग भी दुर्गमतर होता गया।

यहाँ पर एक दिन विश्राम करके थोड़ी उतराई के पश्चात् एक सरिता पार की तथा कई मील की लोलुंग की कठिन चढ़ाई करने पर पांगु पहुँच गया। यहाँ से भोटियों की बस्ती आरम्भ हुई। जहाँ हिन्दू-संस्कृति का कोई भी चिह्न नहीं मिलता। यहाँ के रीति-रिवाज एकदम अजीब व निराले प्रतीत हुए। अलमोड़ा से खेला तक धामी, भोरो, कर्डी आदि जाति के क्षत्रिय लोग रहते हैं किन्तु लोलुंग की चढ़ाई पर हिन्दू-संस्कृति से विलग भोटिया जाति के लोग मिलते हैं।

भोटिया जाति के रीति-रिवाज—इस जाति के लोग पांगु से ही मिलने शुरू हो जाते हैं, अतः यहीं से इनकी संस्कृति के भी दर्शन होते हैं। इनका लिपिबद्ध इतिहास नहीं मिलता। केवल कानों-द्वारा सुनकर ही इनके ऐतिहासिक जीवन का ज्ञान प्राप्त होता है। प्रचलित है कि यह जाति मंगोलिया से व्यापार करने के लिए यहाँ आई और धीरे-धीरे यहीं पर बस गई। इनकी शारीरिक बनावट तिब्बतियों से बहुत मिलती-जुलती है। ये लोग उन्हीं की तरह छोटे कद, चपटे चेहरे तथा गड़ी हुई नाक और उभरी हुई फटी-फटी-सी आँखों वाले होते हैं। उपरोक्त शारीरिक बनावट उनके मंगोल होने का प्रमाण देती है। हिमालय के चौंदास, व्यास, डारमा तथा जोहार आदि भागों में ही ये लोग प्रचुरता से निवास करते हैं। इस देश में रहने के कारण ये लोग राजपूत जाति में लय हो गये हैं। इनके कुल-देवता का नाम स्यांग से तथा छिपला है। किन्तु इस जाति के अधिकतर व्यक्ति भूत-प्रेतों के ही आराधक हैं। इसके प्रमाणस्वरूप वहाँ स्थान-स्थान पर रंग-बिरंगे कपड़े, फूलों की तरह पेड़ों में बँधे हुए मिलते हैं जो कि प्रेत-पूजा के ही सूचक हैं।

किन्तु अब इस जाति के व्यक्ति, शिक्षा का प्रचार हो जाने के कारण, हिन्दू-संस्कृति से दिन-प्रतिदिन अधिक प्रभावित होते जा रहे हैं। ये लोग खेती-बाड़ी करते हैं, भेड़-बकरी पालते हैं तथा इन पर अपना सामान लादकर तिब्बत के क्षेत्र में व्यापार करते घूमते थे। इसके विपरीत चौंदास तथा जोहार के लोग स्थायी रूप से एक ही स्थान पर निवास करते हैं। किन्तु ब्यास तथा दारमा निवासी छः महीने अपने निवास-स्थानों के लिए अपने परिवार को गर्ब्यांग तथा मौसम में छोड़कर तिब्बत क्षेत्र में व्यापार करने के लिए जाते हैं।

तिब्बत की ओर से सर्दी के दिनों में लौटने पर ये लोग अपने-अपने परिवारों को नीचे से ले जाकर काली-गोरी संगम पर जौलजिबी में सर्दी व्यतीत करते हैं। इनकी स्त्रियाँ भी जीविकोपार्जन में मदद करने के हेतु ऊन कातती व उससे कपड़े बुनती हैं। खेती भी करती हैं।

इनके यहाँ बालक के जन्म के पश्चात् उसे माँ से नौ दिन तक एकदम अलग रखा जाता है। यह हमारे यहाँ के रिवाजों के सामने एक बड़ा ही विचित्र प्रतीत होता है। यदि बालक लड़का हुआ तो ४ या ५ वर्ष की उम्र में बड़ी धूम-धाम से उसका मुंडन-संस्कार किया जाता है तथा सभी सगे-सम्बन्धियों को भोजन भी करवाया जाता है। इसी भाँति यह लोग विवाहोत्सव भी पृथक् रीति से मनाते हैं। यहाँ प्रत्येक उत्सव में, चाहे धार्मिक हो या सामाजिक, नृत्य आवश्यक समझा जाता है। इसलिए इस जाति का प्रत्येक व्यक्ति नृत्य तथा संगीत में निपुण होता है। हमारे यहाँ की तरह यहाँ नर्तकियों की विशेष टोली नहीं होती। सभी स्त्रियाँ उत्सवों के अवसर पर नृत्य करती हैं। सामान्यतः यह नृत्य तथा संगीत मनोरंजन

की प्रशंसा करने का भाव प्रदर्शित करने के हेतु नवयुवक सीटी बजाते हैं। तत्पश्चात् युवतियाँ रूमाल के संकेत से उन्हें अपने समीप बुलाती हैं। तत्पश्चात् सब मिलकर नृत्य आरम्भ करते हैं। खाने-पीने की क्रिया के पश्चात् कोई भी लड़की किसी भी लड़के के साथ नृत्य करने के लिए स्वतंत्र होती है। इस नृत्य को देखने के लिए गाँव के अन्य स्त्री-पुरुष भी जा सकते हैं। इस प्रकार यह नृत्य कई दिनों तक चलता रहता है और युवक-युवतियाँ हृदय ही हृदय में तादात्म्य अनुभव करने लगते हैं। इस पर दोनों ही अपने मध्यस्थ बुजुर्ग व्यक्ति से आपस में विवाह करने की इच्छा व्यक्त करते हैं। इसी समय भावी वर-वधू के घर से गाँव के लोग, जो कुछ भी मिलता है लूट लाते हैं। इसमें मुख्य रूप से पालतू भेड़-बकरियाँ ही होती हैं, या अन्य खाद्य-सामग्री। इन सब वस्तुओं की सहायता से लोगों की दावत का प्रबन्ध हो जाता है और विवाह-क्रिया सम्पन्न मानी जाती है। अन्त में वर-वधू अपने सहयोगी-सम्बन्धियों के घर नृत्य करते-करते जाते हैं। किन्तु इस नृत्य के लिए ताल अथवा वाद्य की आवश्यकता नहीं पड़ती।

त्योहार—इनका मुख्य त्योहार दीपावली के अवसर पर नवम्बर के महीने में होता है। इस अवसर पर अनेक गाँवों के व्यक्ति एक स्थान पर एकत्रित होकर सामूहिक रूप से उत्सव मनाते हैं। इसमें लगातार आठ-दस दिनों तक नृत्य चलता रहता है। इस उत्सव में नृत्य के समय संगीत, ताल तथा वाद्य की बड़ी ही महत्ता समझी जाती है। त्योहार पर विभिन्न वेश-भूषा धारणकर ये लोग अपने नृत्य का प्रदर्शन करते हैं। इनके यहाँ जन्म से लेकर मृत्यु तक के नाना अवसरों पर नाना प्रकार की नृत्य-शैलियों का प्रचलन है।

श्राद्ध-क्रिया (डुडुंग)—यह भी एक विशेष प्रकार का नृत्य है जोकि पितृ-तर्पण के समय किया जाता है। यहाँ पर भी श्राद्ध-क्रिया के लिए हिन्दुओं में प्रचलित वर्ष के विशेष समय के समान ही समय निश्चित है। जिन दिनों यह श्राद्ध-क्रिया की जाती है उन दिनों प्रत्येक घर की स्त्रियाँ पूर्ण शृंगार करके ५ दिन तक विशेष भोजन बनाकर घर की पालतू चँवरी गाय को खिलाती हैं। खिलाते समय मुँह पर कपड़ा ढाँककर रोती भी जाती हैं। उनका खयाल है कि इस प्रकार उनके पितृगणों को वह भोजन प्राप्त हो जाता है। अन्त में उस गाय को ले जाकर जंगल में छोड़ा जाता है जहाँ तिब्बती चोर उसको मारकर अपनी क्षुधा-पूर्ति कर लेते हैं।

रात्रि के समय मैदान में खूब आग जला दी जाती है तथा स्त्री-पुरुष पहले

अलग-अलग नृत्य आरम्भ करते हैं, किन्तु कुछ समय के पश्चात् मिलकर नृत्य करते हैं। कुछ व्यक्ति गाते हैं तो कुछ वाद्य बजा-बजाकर संगत देते हैं तथा अन्य व्यक्ति दर्शक बनकर नृत्य का आनन्द-लाभ करते हैं। नृत्य के समय युवकों के हाथ में हथियार इत्यादि होते हैं तथा युवतियों के हाथों में रुमाल होते हैं। इसी प्रकार कार्तिक (नवम्बर) मास में यह नृत्य जौलजिबी नामक स्थान पर अत्यन्त धूम-धाम से किया जाता है। इसी समय नेवला नामक संगीत-सम्भाषण चलता है। इसे सुनने के लिए चारों ओर से पर्वत निवासी एकत्रित हो जाते हैं।

गाँव में किसी की मृत्यु हो जाने पर लकड़ी का प्रबन्ध करके उसकी चिता बना दी जाती है तथा उसके मुँह में थोड़ा सोना रखकर दाह-क्रिया कर दी जाती है। उसकी अस्थियाँ चुनकर मानसरोवर या कैलास में डाल दी जाती हैं। मरनेवाला यदि पुरुष हो तो पुरुष की व यदि स्त्री हो तो स्त्री की मिट्टी की मूर्ति बनाकर घर में एक विशिष्ट स्थान पर रख दी जाती है और उस पर रात्रि में ढोल बजाकर उसके सामने नृत्य किया जाता है।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न जातियों के भिन्न-भिन्न रीति-रिवाज देखते हुए, हम लोग पांगु से चलकर सिरखा, गलागर, जुम्ती, मालपा, बूंदी आदि स्थानों से होते हुए अत्यन्त ही दुर्गम तथा फिसलने वाले पथरीले मार्ग को पार करते हुए काली नदी के किनारे-किनारे चलकर गर्ब्यांग पहुँच गये। वहाँ के हरे-भरे मैदान में पहुँचकर प्राकृत सौन्दर्य का आनन्द-लाभ हुआ। रास्ते में जंगली बकरी मिली।

गर्ब्यांग—यह ग्राम समुद्र की सतह से १०,५०० फीट उंचाई पर है। सिरखा से यहाँ तक ५१ मील का अन्तर है। रास्ते में स्थानियों की सहायता से वहाँ के

सवारी के लिए मिलती है।

कैलास-यात्रा को जाते समय यह भली-भाँति ध्यान में रखकर चला जाता है कि रास्ते में घास का मिलना कठिन है। कई जगह थोड़ी घास मिल जाती है, अतः घोड़ों व खच्चरों के लिए दाना-चारे का पूरा प्रवन्ध करके यात्रा के लिए चलना पड़ता है।

कैलास-यात्रा का अन्तिम दौर

जब हमलोग गर्व्यांग से रवाना हुए उस समय हम ३५ यात्री थे। साथ में ४६ खच्चर व घोड़े, १ कुत्ता, ११ तम्बू, ५० कंवल, ५ बन्दूकें, २ पिस्तौल, ७ मार्ग-दर्शक, कई मन सत्तू, गुड़ तथा कई मन लकड़ी थी। हमारा काफ़िला चलता हुआ ऐसे प्रतीत होता था मानो कोई बड़ी वारात जा रही हो। श्रीमती रुमादेवी ने, जिनके घर पर मैं गर्व्यांग में रुका था, मेरी यात्रा का सारा प्रवन्ध कर दिया था। इस पार्टी के नायक श्री पी० के० मुखर्जी और स्वामी अनुभवानन्दजी थे। इस पार्टी में कई प्रांतों के व्यक्ति थे। मुखर्जी महोदय अत्यन्त ही सहृदय व्यक्ति थे।

मार्ग का शिविर—कालापानी—गर्व्यांग से चलकर हमारा प्रथम कैम्प कालापानी नामक स्थान में लगा। यहाँ लोगों की डाक्टरी परीक्षा की गई तथा अस्वस्थ व्यक्तियों का औषधोपचार डाक्टर साहव ने किया। श्री मुखर्जी को डाक्टरी की अच्छी जानकारी थी। यहाँ तक जंगली मार्ग था। लकड़ी आदि का प्रवन्ध हमलोगों ने यहाँ पर आकर किया। यहाँ से आगे का मार्ग अत्यन्त भयंकर व दुर्गम था। अतः हम कीचू तथा हरिसिंह पटवारी, जो कि हमारे मुख्य मार्ग-दर्शक थे, के साथ धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। दूसरा कैम्प हमलोगों ने सियांगंछन् नामक स्थान पर लगाया। यहाँ किसी भी प्रकार की वस्ती नहीं है। यहाँ से हिम पर्वत का प्रारम्भ होता है, अतः कठिन चढ़ाई का प्रारम्भ भी यहीं से हुआ। हम लोग प्रातः तीन वजे ही उठ गये, क्योंकि शीघ्र ही यात्रा प्रारम्भ करने से इस कठिन मार्ग को आसानी से पूरा किया जा सकता था। मार्ग में हिमाच्छादित शिखरों पर चढ़ते हुए कठिन-कठिन घाटी (लिपुलेक—डेथट्रेप) को पार करना था; किन्तु समूह के कुछ अन्य व्यक्तियों के देर तक सोते रह जाने के कारण यात्रा आरम्भ करने में कुछ विलम्ब अवश्य ही हो गया। सूर्योदय की वेला में सूर्य-रश्मियाँ उच्च हिमाच्छादित शिखरों पर नृत्य करती अत्यन्त ही मनोहर प्रतीत हो रही थीं।

तीन मील की कठिन चढ़ाई चढ़कर हमलोग १६७५० फीट की उँचाई पर पहुँच गये। इतनी उँचाई पर क्या हो सकता है। १५००० फीट तक पहुँचने पर ही हवा (प्राणवायु) का दबाव कम होने से साँस लेना कठिन होने लगता है। दल के कुछ कमज़ोर सदस्य तो कभी-कभी मूर्छित से होते जान पड़ते थे। हमारे घोड़े व खच्चर जो घास के अभाव में केवल दाने पर ही रहने को विवश थे, बेहाल हो गये थे। कई बार वे रुक जाते थे। भोजन की कमी व वायु के दबाव की कमी ने उनके ऊपर भी बुरा असर डाला था। ऐसे में उनके ऊपर से उतरकर पैदल चलना पड़ा। १६७५० फीट की उँचाई पर पहुँचकर उतराई शुरू हुई। सूर्यदेव ५ बजे प्रातः ही उदय हो गये थे और बर्फ सूर्य की गरमी से मुलायम हो चली थी तथा चलते समय अधिक सतर्क रहकर चलना पड रहा था। पैर धँसते जाते थे। एक स्थान पर तो मैं कमर तक बर्फ में धँस गया था व धँसता ही जा रहा था कि पेट के बल लेटकर पैर चलाने लगा और बर्फ से निकलकर बीसियों फीट तक मुँह के व पेट के बल बर्फ पर फिसलता चला गया, तब कहीं जाकर सँभला। ऐसे अवसरों पर घोड़ों व खच्चरों का विशेष ध्यान रखना पड़ा। कई स्थानों पर तो उनके चलने के लिए बर्फ पर तम्बू व कम्बल बिछा दिये गये। हमारे दल के पथ-प्रदर्शक का कुत्ता मार्ग में हमारे बड़े ही काम आया, क्योंकि वह दल में सबसे आगे रहकर मार्ग-प्रदर्शन करता था। हम दो व्यक्ति (मैं और कीचू) तेज चलने के कारण काफी आगे पहुँच गये। किन्तु दल के अन्य सदस्य सामान वगैरह साथ होने के कारण इतना शीघ्र न चल सके, और पीछे रह गये। गर्मी से बर्फ मुलायम हो जाने के कारण मार्ग अत्यन्त दुर्गम हो गया था। चलते-चलते हमलोग 'पाला' नामक

यात्रियों के ठहरने के लिए मकान, दुकान तथा कुछ मठ इत्यादि भी हैं। गर्मियों के लगभग चार मास के लिए भोटिये तथा अन्य कई स्थानों के वासी यहाँ पर व्यापार करने के लिए आ जाया करते हैं। हमलोग भी दो दिनों तक तकलाकोट ठहरकर पुन: अपनी यात्रा के लिए अग्रसर हुए।

तकलाकोट का बौद्धमठ—जहाँ हम लोग तकलाकोट में ठहरे हुए थे वहाँ से ४०० फीट की उंचाई पर किले के समान एक विशाल बौद्धमठ था। रास्ते में अनेक गुफाएँ दीख पड़ीं, जिनके विषय में पता लगा कि शीतकाल में लोग इन गुफाओं में अपना समय व्यतीत करते हैं। पहाड़ की चोटी पर स्थित बौद्धमठ तक पहुँचने के लिए एक पगडंडी से होकर जाना पड़ा। वहाँ पास में जंगपाम की कोठी थी। यह कच्चा, चारों ओर से बन्द व गन्दा बदबूदार मकान था और गवर्नर एक पूर्ण अशिक्षित व उजड्ड व्यक्ति था। उस मठ में प्रवेश करके वहाँ के एक बड़े कमरे में पहुँचे जहाँ कि बौद्ध संन्यासियों के बैठने के लिए कुछ लकड़ी के आसन रखे हुए थे। मध्य में एक ऊँचे सिंहासन पर मृणमयी (मिट्टी की) एक सुन्दर प्रतिमा भी प्रतिष्ठित थी। उसी के साथ भगवान बुद्ध की एक प्रतिमा थी। यह मूर्तियाँ सुनहरे रंग से रंगी हुई थीं। नीचे पूजा के उपयोग में आनेवाली वस्तुएँ घंटी, मँजीरे आदि सोने-चाँदी के बने हुए रखे थे। आसन के सामने मक्खन-पूरित चौमुखी अखंड दीप-शिखा प्रज्ज्वलित थी। साथ में किसी बड़े पूर्वज की खोपड़ी थी जो कि अन्दर की ओर से चाँदी से मढ़ी हुई रखी थी। यह श्रद्धालु जनों को तथा भक्तजनों को जो कि पूजा के हेतु उपस्थित होते थे, चरणामृत देने के उपयोग में लाई जाती थी। मेरी आत्मा समस्त श्रद्धा को संचित करने पर भी उसे लेने को उद्यत न हुई। तब इसके पहले ही कि पुजारी आकर आग्रह करते हम इस मठ से बाहर चले आये। ये लोग चाय में नमक तथा मक्खन डालकर पीते हैं। दूध का उपयोग चाय के लिए एक प्रकार से वर्जित माना जाता है। यहाँ के लोग घुटनों तक जूते पहनकर मन्दिर में प्रवेश पाने के अधिकारी हैं जबकि हमारे यहाँ यह पूर्णतया वर्जित है। कुत्तों के मंदिर में जाने में कोई हिचक नहीं है। इस मठ के पार्श्व में ही मठ का अपना पुस्तकालय था जहाँ लामा लोग पठन-पाठन करते थे। संन्यासियों के हाथ में एक चक्र होता है। बाहर भी ऐसे ही प्रार्थना-चक्र दीवारों में घूमते हैं। गाँव के लोग मठ के खर्च के लिए अपनी श्रद्धा व सामर्थ्य के अनुसार दान देते हैं। ये लोग बड़े ही नम्र स्वाभाव के होते हैं।

तिब्बत साधारणत. १४००० फीट की उँचाई पर है, फिर भी यहाँ बहुत बड़े-बडे मैदान है। सरोवर तो है ही; किन्तु हिमपात की अधिकता के कारण यहाँ खेती बहुत कम होता है। नदी के किनारे-किनारे छोटी-छोटी घास के ही सहारे पशु पाले जाते है और यही इनके जीविकोपार्जन का एक साधन है। घास के लिए इन लोगों को अपने पशुओ को साथ लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान घूमना पड़ता है। प्रकृति ने यहाँ की भेड़-बकरियों मे एक अजीब गुण दिया है कि वे एक प्रकार की नमकीन मिट्टी चाटकर अपनी क्षुधा-पूर्ति करती है। क्षुधा-पूर्ति ही नही करती, बल्कि खूब मोटी बनी रहती है। जब हिमपात होने लगता तो ये सब अपने सिर एक साथ मिलाकर एक गोल चक्कर जैसा बना लेती हैं। ऊपर बर्फ गिर जाती है। उनकी सांस की उष्णता से बर्फ कुछ पिघल जाता है और प्राण वायु के आने मात्र के लिए रास्ता बन जाता है। इस प्रकार ये कई सप्ताह तक बर्फ मे दबी पडी रहती है। मगर बहुत अधिक हिमपात कभी-कभी इनकी इकट्ठी आहुति भी ले बैठता है। रास्ते मे चलते-चलते हमे हड्डियों के कई बडे-बडे ढेर दीख पड़े। पूछने पर पता चला कि वे भेडो व बकरियों के थे जो कि अत्यधिक हिमपात के कारण बर्फ से बाहर न आ सकी और हिम मे समाधिस्थ हो गई। सुनने को मिला कि जाडो मे साइबेरिया के मैदानो से भागकर आये जंगली घोडो के झुड के झुड बडे-बड़े भयकर हिमपातो के शिकार हो गये व कभी भी वापस न जा सके।

विवाह-नृत्य व दाव-सस्कार आदि—जौनसारयो की भाँति इनके यहाँ भी कई भाइयो की एक ही पत्नी होती है किन्तु साथ ही एक प्रथा और भी है कि पुरुष यदि

वैसे तो एक स्त्री के कई पति होने से कोई दोष नहीं मानते; पर उपरोक्त विधि से विवाहित कन्या इसकी अधिकारिणी नहीं होती। अवस्था अधिक होने पर भी विधवा-विवाह की वहाँ सुविधा है।

इस भाग में नृत्य करनेवालों की एक विशेष जाति है जो कि हूणिया नाम से पुकारी जाती है। बाकी अन्य लोग नृत्य नहीं जानते। हमारे साथी श्री पी० के० मुखर्जी यदा-कदा इन लोगों को बुलाकर नृत्य करवाते थे। वे उनकी फ़िल्म लेते थे। उन्होंने सम्पूर्ण यात्रा की फ़िल्म खींची थी जो कि कई स्थानों पर दिखलाई गई। इनके नृत्य हास्यरस-प्रधान होने पर भी कभी-कभी रौद्र रूप धारण कर लेते हैं। ये लोग बीच में चक्कर बनाकर नृत्य करते हैं और बीच-बीच में नटों की भाँति ज़मीन पर हाथ टिकाकर छलाँग लगा-लगाकर दूर-दूर तक कूदकर नृत्य करते हैं। कई प्रकार के बनावटी चेहरे पहनकर तथा भूतों की तरह रंग-बिरंगी पोशाकें पहनकर स्त्री-पुरुष सम्मिलित रूप से नृत्य करते हैं। इस समय यदि बालक इन्हें देख ले तो एकदम डरकर चीख पड़े। उस समय उनका ऐसा ही भयानक रूप बना होता है। आनन्दोत्सव में हमने भिन्न-भिन्न नृत्य देखे।

यहाँ पर लाश को जलाने, ज़मीन में गाड़ने व खुले में चील कौवों के लिए छोड़ देने की सब प्रथाएँ प्रचलित हैं। केवल सामर्थ्यवान ही अपने सम्बन्धी की लाश को जला सकता है। जिसके कोई मित्र या सम्बन्धी नहीं होता उसकी लाश की बड़ी ही दुर्गति होती है। उसे चील, गिद्ध आदि खा जाते हैं। मृत व्यक्ति की समाधि पर निम्नलिखित श्लोक लिखा होता है—

"ॐ मणि पद्मेहम्।"

इस प्रकार की अनेक समाधियाँ हमें रास्ते में मिलीं। ये लोग भी मृतक के फूल मानसरोवर या कैलास में डालते हैं। साधारणतः सभी बौद्ध लोग यहाँ गाय का मांस खाते हैं। चँवरवाली गाय व बकरियाँ यहाँ नियमित आहार मानी जाती हैं। भूत-बाधा से बचने के हेतु यहाँ के लोग पेड़ों पर रंग-बिरंगे कपड़ों के टुकड़े बाँधकर एक प्रकार का टोटका करते हैं। यहाँ के लोग अनेक प्रकार की रूढ़ियों व गन्दे रीति-रिवाजों के शिकार हैं। इसका एक विशेष कारण यहाँ पर शिक्षा की कमी भी है। किन्तु नई सरकार स्थापित हो जाने से इनका धीरे-धीरे ह्रास होता जा रहा है। हो सकता है कि अब तक वहाँ अनेक परिवर्तन हो चुके हों।

बौद्ध विहार तथा पूजा—पश्चिमी तिब्बत में बोका, नकचंग, बुंगबा,

अतिरिक्त आदि भेड़-बकरी चरानेवाले तथा जोखर, डम्पो, गर्तपारा आदि
स्थानोंवाले रहते हैं। वे अपने धर्मगुरु तथा धर्म का ही भय मानते हैं। वैसे किसी
बुरे काम को करने या किसी सामाजिक या सरकारी कानून या अन्य दुनिया के
अन्य सुरक्षा-नियमों को तोड़ने में किंचित् मात्र भी नहीं हिचकते। कैलाश-यात्रा
में जानेवाले यात्रियों को लूटकर व मारकर ला जाते हैं; किन्तु यह देखा गया है
कि वे लोग लामा अथवा संन्यासियों को नहीं सताते। उस समय हर एक घर से
एक आदमी लामा के नाम से सेवार्थ छोड़ना पड़ता था। आमदनी का तिहाई
भाग भी मठ को देना पड़ता था। उसमें गाय, कपड़ा, जूता आदि सब वस्तुएँ शामिल
होती थीं। यहाँ की पाठशालाओं में शिक्षा देने का भी प्रबन्ध था। पाठशाला
में दिवामुखर्षि-जैसे श्रेष्ठ लामा इनका सञ्चालन करते थे। वहाँ विद्यार्थियों की
संख्या १०० के लगभग थी।

तकलाकोट से १६ मील की दूरी पर खोचरनाथ में भी एक ऐसा गुम्फा
मिला जहाँ राम-लक्ष्मण व सीता की पीतल की मूर्तियाँ थीं किन्तु बौद्धलोगों के
हाथ में ही इनकी पूजा का समस्त प्रबन्ध है। इसी भाँति मानसरोवर के चारों
ओर भी अनेक मठ हमें राह में मिले जिनमें कितनी ही प्रतिमाओं का संग्रह तथा
भित्तियों पर रामायण व महाभारत के अनेक चित्र अंकित थे। हमें यहाँ के
निवासी व लामा लोग बड़े ही भद्र मिले। लामाओं के हाथ में एक प्रार्थना-
चक्र होता था। जिसपर 'ॐ मणिपद्मे हुम्' लिखा रहता था। इसके मन्त्र पढ़ते हुए
योगी तथा साधक हमें गुफाओं में प्रार्थना में लीन मिले। मठों की व्यवस्था सुचारु
नामक एक महन्त के हाथों में थी जो पोरमजरग, डजग तथा पुनिदर नामक अधिकारी

शीत की अधिकता के कारण यहाँ के लोग बहुधा आलसी हैं जो कि नमक, सुहागा, चमड़ा, ऊन व भेड़-बकरियाँ आदि लेकर व्यापार के निमित्त बाहर निकलते हैं और बदले में भारतीय व्यापारियों से आटा, चावल, सत्तू, चाय व गुड़ आदि भोजन की आवश्यक सामग्री लेकर वापस आते हैं। तकलाकोट, ज्ञानिमा, गर्तोक, दाबा तथा सदोक आदि मंडियों में गर्मियों में काफ़ी चहल-पहल रहती थी। यहाँ व्यापार खूब ज़ोरों से चलता था। वहाँ के लोगों का आहार सत्तू, माँस व चाय मुख्य है। रेशमी कपड़े को ये लोग बड़े चाव से ग्रहण करते हैं। दूध के स्थान पर यहाँ पर चाय में मक्खन का प्रयोग होता है।

तकलाकोट से चलकर अनेक स्थानों व वहाँ की संस्कृति के दर्शन करते हुए हमलोग तीसरे दिन राक्षसताल पहुँचे जहाँ हमने विश्राम के हेतु कैम्प लगाया। यहाँ एक ही प्राणी दृष्टिगोचर हुआ। वह था जंगली घोड़ों का एक झुंड जोकि ताल के किनारे उगी छोटी-छोटी घास चरने में तल्लीन था। वैसे रास्ते भर हमें कोई भी जानवर नहीं मिला था। हमारे पथ-प्रदर्शक कीचू के ज़ोर से ताली बजाने पर सारा का सारा झुंड वायु-वेग से पर्वत-शृंगों की ओर दौड़ पड़ा। इन्हें देखकर ऐसा लगता था जैसे ये सब घोड़े पंखोंवाले हों। दौड़ना उड़ने के समान था। उधर हमारे घोड़े व खच्चर थे जो बेचारे पीछे से धकेले जाने के बावजूद भी ठीक प्रकार से चल नहीं पाते थे, जिनकी हड्डियाँ भी भली-भाँति गिनी जा सकती थीं। अन्तर स्वतंत्रता का था। हमारे घोड़ों को पर्याप्त दाना मिलता था और दूसरी ओर उन जंगली घोड़ों को बहुत थोड़ी, बर्फीले पठारों पर उगी हुई छोटी-छोटी घास पर ही निर्भर रहना होता था और वह भी उन्हें भर-पेट बहुधा प्राप्त नहीं हो पाती थी। मगर स्वतंत्रता ने उन्हें वह शक्ति दी थी जो पालतू व रक्षा के अन्य साधन प्राप्त होने पर भी हमारे जानवरों में न थी। ये बोझ ढोते-ढोते मरे जा रहे थे। एक प्रकार से हमें इन पर दया आई। मगर मनुष्य एक बड़ा ही मतलबी प्राणी है। उसके लिए वह बड़े-बड़े अच्छे व बुरे काम करने से नहीं हिचकता।

राक्षसताल लगभग ८५ वर्गमील के क्षेत्रफल में फैला हुआ है। इसके बीच में कई छोटे-छोटे द्वीपों पर अनेक साधकों को हमने बैठे देखा। जिस दिन का मैं यहाँ वर्णन कर रहा हूँ उस रात ऐसी तीव्र आँधी आई कि हमारे तम्बू इत्यादि उखड़कर उड़ गये जिन्हें खोजकर लाने में हमें अत्यधिक कष्ट का सामना करना पड़ा। चोर हमारे एक घोड़े को खोलकर ले गये। सुबह बड़ी जाँच-पड़ताल के बाद ही वह मिल

सका। वैसे तो यहाँ के चोर भी शस्त्रों से सुसज्जित होते हैं, मगर उनसे बढ़कर हमारे पास पिस्तौलें थीं जिनसे दूर रहकर भी वार किया जा सकता था। इस तालाब का नाम राक्षसताल पड़ने का कारण एक यह माना जाता है कि तपश्चर्या के समय रावण यहाँ नित्यकर्म करता था। इसकी ऊँचाई १४,८०० फीट है तथा मानसरोवर के किनारे देवताओं का निवास है, ऐसा विश्वास किया जाता है।

मानसरोवर

अगले दिन राक्षसताल से चलकर दोनों के बीच स्थित गुर्लाघाट पार करके मांधाता पर्वत के चरणों में फैले हुए विशाल मानसरोवर के किनारे जा पहुँचे। ऐसा प्रतीत होता था मानो वह विस्तृत नीलाकाश से होड़ लगा रहा हो। इसमें तैरते धवल हंसों की शुभ्र पंक्तियाँ ठीक उसी भाँति प्रतीत हो रही थीं जैसे नीलाकाश में उनका झुंड उड़ा चला जा रहा हो। हम स्वच्छ व निर्मल जल में स्नान का लोभ-संवरण न कर सके। दिन में जब धूप थी, मैं थोड़ी ही दूर तैरकर गया होऊँगा कि शरीर के अवयव सुन्न हो गए। जान हथेली पर रख वापस लौटा। जैसे-तैसे किनारे तक पहुँच सका। जल अत्यन्त ठण्डा था। उस समय वहाँ की शीतोष्ण दशा २८ दर्जे पर थी। मानसरोवर से तीन नदियाँ—सिन्धु, सतलुज तथा ब्रह्मपुत्र निकली हैं। मानसरोवर के किनारे-किनारे आठ मठ हैं जिनमें से दो के दर्शन हमें मार्ग में ही हो गये थे। वहाँ हमें अनेक लामा भी मिले। इन मठों में अनेक हिन्दुओं के देवताओं की प्रतिमाएँ और अनेक भाँति-चित्र भी दृष्टिगोचर

सरोवर के निर्मल जल में अनेक प्रकार की रंग-विरंगी मछलियाँ तैर रही थीं। मगर उनको किसी को पकड़ते नहीं देखा। सारांश यह कि मानसरोवर के दर्शन कर व उसके पावन जल में स्नान कर तन व मन दोनों को अत्यन्त शान्तिलाभ हुआ। हम लोग दो दिन मानसरोवर के किनारे रहे। उसके पश्चात् वहाँ से अन्य पर्वतों की ओर अपने गंतव्य स्थान को चले गये।

चलने के पश्चात् ज्यू गुफा से होते हुए हमें सतलुज नदी का उद्‌गम मिला व साथ ही में एक गर्म पानी का छोटा-सा स्रोत भी मिला। यह राक्षसताल का दूसरा सिरा था जो कि सतलुज का निकास-स्थान था। इस भाग में चोरों की वहुतायत थी। हमें एक वार चोरों के गिरोह का सामना करना पड़ा, मगर हमारा गिरोह वड़ा देखकर शायद वे हिम्मत न कर सके और भाग खड़े हुए। मानसरोवर से आगे का रास्ता वालुकामय है तथा छोटे-छोटे पहाड़ों से होकर गुजरता है। यहाँ से कुछ ही अन्तर पर वरखा मैदान है। यहाँ पर कुछ पुलिस अफ़सर भी हमें मिले। यहीं से हमें कैलास-दर्शन हुए। आगे चलकर दरचन नामक स्थान पड़ा जोकि तकलाकोट से ५५ मील के लगभग है। यहीं से कैलास-परिक्रमा आरम्भ हो जाती है।

शिव-साम्राज्य का वर्णन

हमारे पुराणों में शिव के श्मशानवासी, रुंडमालाधारी, गजचर्माम्बरधर, कपालपाणि आदि रूपों का वर्णन मिलता है। यदि इनके गुणों का वर्णन देखना हो तो दक्ष-यज्ञ-नाश के समय का तुलसीदास-द्वारा किया गया वर्णन देखिए जिसकी सत्यता का पता यहाँ के दृश्य देखने पर स्पष्ट लग जाता है। श्मशान की भाँति पेड़, पत्ती, घास आदि से रहित सूखी व वर्फीली भूमि है, जहाँ एक भी पशु व पक्षी के दर्शन नहीं होते तथा नीरवतापूर्ण वर्फीला प्रदेश, यही दृश्य है यहाँ का। अतः इस दृश्य से शिव-भक्तों के हृदय में यदि वैराग्य-भावना का उदय हो जाय तो क्या कोई आश्चर्य है। इसी प्रकार कच्चा मांस जिनका आहार, चँवरी गाय, भेड़-वकरियों के चर्म पहनना, दूध निकालने के लिए गाय का सींग, मक्खन निकालने के लिए चमड़े की थैली, देवता के अर्चन के हेतु पत्र-पुष्पों के स्थान पर मन्त्रों से युक्त हड्डियों के टुकड़े तथा जलाने के लिए लीद का उपयोग देख शिव-साम्राज्य का पूर्ण परिचय प्राप्त हो जाता है। अव इनके गुरु लामाओं का भी हाल सुनिए। यदि सम्पूर्ण जीवन स्नान न किया और न कपड़े ही धुले तो उसे सिद्ध महात्मा की

पदवी मिल गई। खोपड़ी में चरणामृत रखना, बकरी के सींग पर मन्त्र लिखकर पुष्पों के स्थान पर देवता पर चढ़ाना तथा अति मांस-भक्षण आदि बीभत्स क्रियाएँ देखने को मिलीं। किन्तु इस मानव-निर्मित बीभत्सताओं के अतिरिक्त यहाँ का वातावरण तथा प्राकृतिक सौन्दर्य तपश्चर्या के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। इसीलिए इस प्रदेश में बहुधा अनेक योगी तथा सिद्ध पुरुषों के दर्शन होते हैं। भक्तवत्सल भगवान यहाँ पर इसी हालत में दर्शन देते हैं। यहाँ की शुद्ध वायु से ही बाह्य तथा आंतरिक दोनों प्रकार की शुद्धि हो जाती है। कम-से-कम मेरी तो यही भावना है। कुल मिलाकर यह स्थान ईश्वर-आराधना के लिए एक उत्तम वातावरण अपने में सँजोये हुए है।

कैलास-परिक्रमा—तिब्बत में हिमालय का एक दूसरी श्रेणी फैली हुई है जिस पर वनस्पतियाँ पैदा नहीं होती। यह श्रेणी कैलास नाम से प्रसिद्ध है। इसके मध्य भाग में एक लिंगाकार हिम-शिखर खड़ा है जो यात्रियों को दूर से ही अपने दर्शन देकर कृतार्थ करता है। इसके चारों ओर तीव्रगामी नदियाँ हैं। हमलोग दरचन गुफा से चलकर तीव्र वेग से बहनेवाली एक नदी पार कर छः मील दूर शुकरी गुफा पहुँचे। यहाँ से एक मील की दूरी पर अनेक प्रतिमाओं के दर्शन हुए तथा यहाँ से कैलास के शुभ्र शिखर के भी दर्शन हुए। शुकरी से छः मील के अन्तर पर डिरफू गुफा है जहाँ से कैलास का लिंगाकार प्रत्यक्ष स्वरूप देखने में आता है। रात्रि में गुफा में ही रहना पड़ता है; किन्तु चाँदनी रात में कैलास के शुभ दर्शन अनेक बार गुफा से बाहर आकर किये। यहाँ पर लामा लोग रहते हैं।

है। कीचू, जो हमारे साथ मार्ग दर्शन के रूप में याने काले कुत्ते के सहित हमें मार्ग दर्शाया। हम लोग पैदल ही चलकर गौरीकुंड पहुँच गये। वाईं ओर से सिंधु घाटी को रास्ता जाता है। यहाँ पर कैलास-पर्वत से मिला हुआ हिमाच्छादित एक सरोवर है जिसमें स्नान करने का विचारकर हम तीन आदमी उसके किनारे पर पहुँचे। काँच के समान पारदर्शी वर्फ पानी की सतह पर लगभग एक फुट मोटा जमा हुआ था। वीच-वीच में मक्खन के समान हिम भी सरोवर में तैर रहा था। स्नान की इच्छा से प्रेरित हो हमने लाठी की कील से वर्फ की सतह को तोड़ने का प्रयत्न किया; किन्तु असफलता ही हाथ लगी। अतः हमारा मार्गदर्शक (कीचू)

सम्पूर्ण उत्तराखण्ड यात्रा के चार्ट्स

नं० १. प्रसिद्ध स्थान—हरिद्वार से यमनोत्री=१५५ मील (कुल)

उँचाई	प्रसिद्ध स्थानों के नाम	यात्रा-साधन	वीच का अन्तर	एकत्रित अन्तर (मील में)	डाक तथा तारघर
फीट ९२४	हरिद्वार	मोटर	०	०	डाक, तार
„ १,१०६	ऋषिकेश	„	१५	१५	„ „
„ ४०००	नरेन्द्रनगर	„	१०	२५	„ „
„ २५२६	टिहरी	„	४१	६६	„ „
„ ३४००	धरासू	„	२६	९२	डाक मात्र
„ ५०००	ड़ण्डल गाँव	„	३२	१२४	कोई प्रवन्ध
„ ६०००	वरकोट (शिमली)	„	३	१२७	नहीं।
„ ७०००	गंगाणी (यमुना स्नान)	पैदल	२	१२९	—
„ ८०००	जमुनाचट्टी	„	६	१३५	—
„ ९०००	दण्डोती	„	८	१४३	—
„ १०,०००	हनुमान चट्टी	„	४	१४७	—
„ „	खरसाली	„	४	१५१	—
„ १०,८००	यमनोत्री	„	४	१५५	—

वि० सूचना—कालसी से सीधा वरकोट तक मोटर-रास्ता वन रहा है। इसके पूर्ण होने पर देहरादून से ३ दिन में यमनोत्री पहुँच सकते हैं।

नं० २. यमनोत्री से सिगोट नाकुरी होते गंगोत्री का रास्ता (गोमुख तक)

ऊँचाई	प्रसिद्ध स्थान का नाम	यात्रा-साधन	बीच का अन्तर	कुल अन्तर (मील)	डाक तथा तारघर
१०८००	यमनोत्री (बरकोट नहीं जाना)	पैदल	०	०	
६०००	निमली (पुराने मार्ग में)	,,	२५	२५	—
३४००	सिगोट	,,	७½	३२½	—
३५००	नाकुरी	मोटर-मार्ग यहाँ से है	३½	३६	—
३८००	उत्तरकाशी	,,	६	४२	डाक-तार
४३८०	मनेरी	जीप-मार्ग अथवा पैदल	१०	५२	—
४८५०	मल्ला चट्टी	,,	६	५८	—
६०००	भटवाड़ी	,,	२	६०	—
,, ,,	सुक्की	,,	६	६६	—
७०००	गंगनानी	,,	३	६६	—
,, ,,	लोहारीनाग	,,	४	७३	—
८७००	सूखी	,,	५	७८	—

एक भारी पत्थर उठा लाया जिसको उसने पूरे ज़ोर से वर्फ पर दे मारा । इससे वर्फ के टुकड़े काँच की तरह टूटकर इधर-उधर विखर गये और पत्थर भारी

नं० ३. गंगोत्री से (श्रीनगर) टिहरी होते हुए श्रीनगर के रास्ते केदार को।

ऊँचाई	मुख्य स्थान का नाम	यात्रा-साधन	बीच के अन्तर	कुल-मील	डाक तथा तार-घर
१०,३००	गंगोत्री	पैंदल			—
६०००	भटवाड़ी (से २ मील पर मल्ला चट्टी से पगडंडी जाती है)	जीप का रास्ता	३८	३८	—
३८००	उत्तर काशी	मोटर-मार्ग	१८	५६	डाक-तार
२५२६	टिहरी (नया पुल खुला)	,,	४४	१००	,,
,,	जाखण्ड	,,	२१	१२१	—
	कीर्तिनगर	,,	१३	१३४	डाक
१६००	श्रीनगर	,,	३	१३७	डाक-तार
२०००	रुद्रप्रयाग	,,	२२	१५९	डाक
३०००	अगस्त्य मुनि	,,	११½	१७०½	,,
४८५०	गुप्तकाशी	पैंदल	१२½	१८३	,,
६०००	त्रियुगी नारायण	चढ़ाई	१७	२००	—
६५००	गौरीकुण्ड	,,	६	२०६	—
,,	रामवाड़ा	,,	४	२१०	—
११,७५३	श्री केदारनाथ	,,	.३	११३	—

वि० सूचना—भटवाड़ी के पास जो मल्ला-चट्टी है वहीं से पैदल चलकर बूढ़ाकेदार, त्रियुगीनारायण होते यात्रीगण कठिन रास्ते से भी केदारनाथ पहुँचते हैं। लेकिन वह रास्ता बड़ा विकट है। जिसको जो अनुकूल हो उससे पहुँचे। टिहरी का नया पुल इसी साल खुलने से मोटर-द्वारा यात्रा करने की सुविधा हो गई है।

होने के कारण उसी बर्फ के गड्ढे में दब गया। एक बार में एक ही आदमी के लिए स्नान करने-योग्य जगह बनी। अतः हमलोगों ने एक-एक करके उस में डुबकी लगा ली। किन्तु जिस समय उससे बाहर निकले तो अधिकतर मूर्छित अवस्था में थे और हमें कम्बल लपेटकर निर्जीव अवस्था में लिटा दिया इस कारण थोड़ा विलम्ब हो गया था फिर भी हम सब सामान में

नं० ४. श्री केदारनाथ से तुंगनाथ होते (चमोली) बदरीनाथ को

ऊँचाई	मुख्य स्थान का नाम	यात्रा-साधन	बीच का अन्तर	कुल अन्तर (मील)	डाक तथा तारघर
११७५३	श्री केदारनाथ	पैदल	०	०	डाक
,,	नाला-चट्टी	(मोटर-मार्ग बन रहा है)	२३	२३	—
४३००	ऊखी मठ	,,	३	२६	डाक
१२०७२	तुंगनाथ	,,	१४½	४०½	—
८०००	गोपेश्वर	,,	८	४८½	डाक
३१५०	चमोली	मोटर	३	५१½	डाक तार
४०००	पीपलकोटी	,,	६½	[illegible]	
६१५०	जोशीमठ	,,	२२	[illegible]	
४१००	वि[illegible] प्रयाग				

नं० ५. कैलास-मानसरोवर-यात्रा चार्ट

ठगोदाम से सीधा १३८ मील मोटर-मार्ग है। (रानीखेत अलमोड़ा होते हुए)]

ई	प्रसिद्ध स्थान का नाम	मील बीच में	कुल मील	वाहन-	ठहरने के लिए धर्मशाला
	(बस-मार्ग में कौसानी बागेश्वर आदि दर्शनीय	१३८ बस पैदल	१३८	मोटर से आगे पैदल या घोड़े-खच्चर पर	डाक-बँगला
	स्थान हैं)	११	१४९		डाक बँगला
	शामा (१ पड़ाव)	११	१६०	"	—
	कुइटी	१३	१७३	"	डाक बँगला
	मुनश्यारी (तिक्सेन)	१२	१८५	"	डाक बँगला
	बागेड़यार	७	१९२		धर्मशाला
	रीलकोट	९	२०१	भारतीय सीमा पर	धर्मशाला
	मीलम				डाक-घर
		९	२१०	"	धर्मशाला
	डुंग				
१८०००	छिरचुन (ऊँटा, जयंती बर्फ की चोटी-कुंगरी	२०	२३०		तंबू में वास
	बिंगरी)	१०	२४०	"	"
	ठाजांग	८	२४८	"	"
	गोमचिन	१२	२६०	"	"
	छुगड़	१२	२७२	"	"
	जुटम	१२	२८४	"	"
	तीर्थापुरी	१२	२९६	"	"
	शिलचक	१२	३०८	(कैलास-परिक्रमा	
	लंडिफू (नन्दीगुफा)			प्रारंभ)	गुफा में वास
	डेरफू (कैलास-दर्शन)	८	३१६	"	"
	(२२२०८ फीट)	४	३२०	"	"
१९६००	[illegible]ंड (तालाव)	११	३३१	"	"
	[illegible]फू	९	३४०	परिक्रमा पूर्ण हुई)	
	[illegible]न			नीचे मानसरोवर है)	
		६	३४६		
	वर्खा (मैदान)	१०	३५६	यात्रा पूर्ण हो गई	
१५१५०	ज्यू गुंफा-मानसरोवर				

कैलासपति का स्मरणकर नीचे उतरने लगे। वहाँ पर जो ठंड है वह शून्य से भी कई डिग्री कम थी। उसका वर्णन करना तो असम्भव है। केवल अनुभव ही किया जा सकता है। इस स्थान को छोड़ने से पहले हम पुनः गौरीकुंड के वे स्थान देखने गये जहाँ स्नान किया था जोकि अब फिर जम गया था। शीत की अधिकता का अनुभव इससे भी लग रहा था। गौरीकुंड तक परिक्रमा का पूर्वार्द्ध समाप्त हुआ।

मानसरोवर से वापस लिपुलेक पास होते तनकपुर रेलवे स्टेशन तक।

१५०००	मानस सरोवर (किनारे) मार्ग			वापसी मार्ग में भी तम्बू में ठहरें
	गुसुल गुफा	८	८	
	राक्षसताल	६	१४	
	गौरी उडियाल	१२	२६	
	तकलाकोट मंडी (मठ)	१२	३८	
१७८९०	लिपुलेक घाटी (हिमानी)	१०	४८	
	कालापानी	६	५७	
	गर्ब्यांग (भारत का आखिरी गाँव)	१३	७०	डाक - बंगला व धर्मशाला
	माल्पा	१२	८२	धर्मशाला
	जुप्ती	८	९०	—
	सिर्खा	१०	१००	धर्मशाला

तत्पश्चात् उतराई पर ४ मील जाने पर दो पहाड़ों के बीच से गुज़रना पड़ा। यहीं पर हमारा सामना बन्दूक तथा मन्त्र-चक्र से सज्जित चोरों के गिरोह से हो गया। उस समय इनसे रक्षा करने का सारा श्रेय हमारे मार्गदर्शक कीचू और हरनामसिंह को ही है, जिन्होंने हमारे पीछे आते हुए मुखर्जी के पाँच-छः साथियों को दिखाते हुए चोरों को ललकारा और कहा कि हमारे साहब के पास पिस्तौल है। मेरे संकेत करने पर ही वे तुम सबको उड़ा देंगे। यदि तुम अपनी खैर चाहते हो तो भाग जाओ। यह सुनकर सब चोर डरकर भाग गये और घाटी में जहाँ जिसे जगह मिली जाकर छिप गये। हमने भी राहत की साँस ली। फिर छः मील चलकर तीसरी गुफा (जिंडिफू) पहुँचे। वहाँ थोड़ी देर विश्रामकर, सत्तू का भोजन कर, घोड़ों पर सवार हो दरचिन की ओर चले। वहाँ पहुँचकर हमारी परिक्रमा पूर्ण हुई। अब वहाँ से रास्ते में तीन-चार स्थान पर कैम्प डालते हुए क्रमशः मानसरोवर, राक्षसताल, तकलाकोट होते हुए खोचरनाथ पहुँचे। यहाँ का गुरुकुल आदि देखते हुए उसी लिपुलेक घाटी को पारकर धारचुला पहुँच गये। जहाँ श्रीमती रुमा देवी का आतिथ्य-सत्कार ग्रहणकर और कुछ विश्राम करने के पश्चात् अलमोड़ा, नैनीताल आदि होते हुए वापस यात्रा सम्पूर्ण कर मैं हरिद्वार पहुँच गया।

२. हिमाचल-प्रदेश—काँगड़ा-कुल्लू

भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के उपरान्त कई पहाड़ी रियासतों को मिलाकर हिमाचल प्रदेश बनाया गया। १५ अप्रैल, १६४७को चम्बा, मण्डी, सिरमौर, मुकेत, रामपुर-बुशहरा आदि बड़ी रियासतें तथा बघान, बालसन, भाज्जी, बिजा, दारकोट, जुब्बल, क्योनहान, कुमारसिन, कुनिहार, कुठार, महालोग, मंगल, संघी, मदन, जियोग ग्रौर छोटे आदि २० छोटी रियासतों को मिलाकर इस राज्य का निर्माण किया गया। ८ मार्च, १६४८ को रजवाड़ों के राजाओं से मिलकर हिमाचल प्रदेश बनाने के लिए हस्ताक्षर किये गये तथा सरकार ने अपनी मान्यता दी।

इस तरह यह प्रदेश १०, ६०४ वर्गमील क्षेत्र में १२ लाख की जनसंख्या से युक्त, ५ जिलों में बाँटा गया है। ये जिले हैं—महासु, सिरमौर, मण्डी, चम्बा और बिलासपुर। समस्त प्रदेश की राजधानी शिमला है। काश्मीर को छोड़कर ऐसा स्थान सपूर्ण हिमालय में नहीं है। इसके चारों ओर बसे सोलन, कसौली, नरकंडा और किन्नर-कैलास आदि कई रमणीय स्थान यात्रियों को आकर्षित करते हैं। इनके अलावा कई जलप्रपात, सरोवर, बुद्ध-मन्दिर आदि प्रसिद्ध हैं। अब सात-आठ सौ मील कच्चा मार्ग व पाँच-छः सौ मील मोटर-मार्ग बन जाने से यात्रियों को प्रायः सभी सुविधाएं मिल जाती हैं। कालका से शिमला तक रेल और मोटर

और त्रिलोकीनाथ मन्दिर यात्रियों के मन को हरनेवाले हैं। भाखड़ा-नांगल-बांध तो जगत्प्रसिद्ध है ही। इसके अतिरिक्त जोगेन्द्रनगर का हाइड्रो-इलेक्ट्रिक वर्क्स आदि कई प्रसिद्ध स्थान हैं। यहाँ के ९४ प्रतिशत लोग खेती करते हैं और बकरियों को पालकर उनका व्यापार करते हैं। ये लोग ऊन कातने और बुनने में भी दक्ष होते हैं। आजकल यहाँ कई नये उद्योग-धन्धे भी प्रारम्भ हो चुके हैं। यहाँ के कई स्थानों में सेब, नाशपाती, आलूबुखारा अंगूर आदि पैदा होते हैं। यहाँ के निवासियों का मुख्य देवता भी 'महासू' है। महासू मेला में इनके नृत्य-गीत आदि दर्शनीय होते हैं।

मैंने देहरादून से चकराता होते हुए शिमला तक की पैदल-यात्रा स्वामी ब्रह्मानन्दजी के साथ की। स्वामी ब्रह्मानन्दजी स्वामी रामतीर्थ के साथ अमरीका में घूम चुके थे। इस यात्रा में हिमालय के स्वर्गीय सौन्दर्य को देखते हुए, देवबन, मंडाली, कथियान, तिवूणी, हाटकोट और जुब्बल होते हुए १५८ मील शिमला पहुँचने में बड़ा ही आनन्द मिला। हम देवबन से १२ मील जाकर मण्डाली के फॉरेस्ट बँगले में ठहरे। यहाँ से आगे १२ मील जंगल के बीच चलकर हम कथियान पहुँचे। यहाँ भी अन्य स्थान की सुविधा न होने के कारण फॉरेस्ट बँगले में ही ठहरे। इस मार्ग में देवदारु, चीड़, बाँझ-राँझ आदि कई प्रकार के वृक्षों से भरे हुए जंगल हैं। ये तीनों स्थान जंगल के बीच में हैं, अतः पैदल-यात्रियों को सब सामान अपने साथ ले जाना पड़ता है। यहाँ तक जौनसार की संस्कृति है और आगे क्रमशः बदलती जाती है। हम दोनों जंगली मार्ग से चलते हुए बावुर नामक गाँव में पहुँचे। यहाँ पोस्त (अफ़ीम) तम्बाकू, गेहूँ और धान की खेती होती है। यहाँ के लोगों ने खसखस और मट्ठा से ही हमारा स्वागत किया। यहाँ से आगे ३ मील चलकर हमने टोन्स नदी में स्नान किया। उसी के तट पर भोजन बनाकर क्षुधा शान्त की और वृक्ष के नीचे विश्राम किया। यह नदी हिमालय से निकलकर यमुना में मिलती है। सायंकाल तिवूणी पहुँचकर फॉरेस्ट बँगले में विश्राम किया। चकराता से यहाँ तक मोटर-सड़क बन रही है।

दूसरे दिन चार मील चलकर एक गाँव के पास झूलते हुए पुल से 'टोन्स' नदी पार की और यहाँ से आगे इससे मिलनेवाली 'पावर' नदी के साथ-साथ चले। एक मील में ही इन दोनों नदियों का संगम है जहाँ लुत्कोट फॉरेस्ट-बँगला है। आगे एक मील पर नदी के दाहिनी ओर आराकोट नामक एक बड़ा गाँव है।

यहाँ पर हमने भोजन किया। शाम को ४ मील आगे चलकर कुड्डू ग्राम में विश्राम किया।

कुड्डू से ५ मील पर हाटकोट नामक एक प्राचीन ग्राम है। यहाँ मकर-संक्रान्ति के दिन मेला लगता है। यहाँ एक देवी का मन्दिर है। यहाँ के लोगों में हिन्दू-संस्कार ही पाये जाते हैं। यहाँ स्त्री-पुरुषों के पहनने के वस्त्रों में विशेष अन्तर नहीं पाया जाता। भेद केवल इतना ही है कि स्त्रियाँ सिर पर एक कपड़ा बाँधती हैं और पुरुष टोपी पहनते हैं। शिमला में भी (सिर पर) कई प्रकार के रंग-बिरंगे कपड़े बाँधते हैं, चाँदी के गहने पहननेवाले लोग शहरों में ही अधिक दिखाई देते हैं। गाँवों में सादे वस्त्र पहननेवाले परिश्रमी लोग रहते हैं। यहाँ के घर देवदारु की पट्टियों से बने हैं। यहाँ के मकानों की निचली मंजिल में पशु बाँधे जाते हैं और ऊपर की मंजिल में मनुष्य रहते हैं। हमें इन मकानों में भी रहने का अवसर प्राप्त हुआ।

जुब्बल—हाटकोट से ७ मील कठिन चढ़ाई पार करके हम लोग जुब्बल नामक एक बड़ी बस्ती में पहुँचे। इस बस्ती की जनसंख्या आठ-दस हजार है। यहाँ सेब, तम्बाकू, खुमानी, धान, अखरोट आदि कई चीजें पैदा होती हैं। जंगलों से भी यहाँ काफी आय होती है। लकड़ी काटकर पावर और टौन्स नदी की सहायता से बहाकर मैदान में पहुँचाई जाती है। इस जंगल में कस्तूरी-मृग, तेंदुआ, भालू आदि कई जंगली जानवर पाये जाते हैं। यहाँ रामपुर में भी बहुपतित्व की प्रथा है। धनन्दोत्सव में इनके नृत्य-गान आदि मादकतापूर्ण होते हैं। अब अन्य प्रदेशों से सम्बन्ध होने के कारण यहाँ की पुरानी प्रथाएँ मिटती जा रही हैं। यहाँ से १५ मील पर कोटखाई नामक एक छोटा-सा शहर है। यहाँ पर पंजाब और कांगड़ा के

शिमला

नगाधिराज के वक्षस्थल में देवपुरी की तरह देदीप्यमान शिमला को स्वयं देखकर ही आनन्द प्राप्त हो सकता है। देवदारु के जंगलों से वेष्ठित पर्वत-श्रेणियों के मध्य यह स्थान इन्द्रपुरी के सामान शोभायमान है। इस नगर के पार्श्व भागों के सभी स्थानों के देखने में लगभग २५ मील की परिधि होगी। यहाँ पर काँगड़ा से आये हुए सूद जाति के लोग पुरातन-काल से रहते हैं। इसका पहले का नाम शूमला था। वही अब परिवर्तित होकर शिमला बन गया है। तब यह स्थान गोरखों के हाथ में था। १८२५ में यह भारत-सरकार के गर्मियों में रहने का स्थान बन गया। तभी से इसका विस्तार होता गया और अब लाख से अधिक लोग यहाँ रहते हैं। ठण्डे और सुहावने जलवायु के कारण ग्रीष्म-काल में भारत के विभिन्न प्रदेशों के लोग यहाँ आकर रहते हैं। यहाँ पहुंचने के लिए कालका तक बड़ी रेलवे लाइन और शिमला तक छोटी लाइन है। मोटर मार्ग भी अच्छा है अतः कार में शीघ्र पहुँच सकते हैं। यहाँ पर ठहरने के लिए धर्मशालाएँ, होटल और किराये के मकान मिल जाते हैं। धर्मशालाओं में लाला पूरणचन्द जैन-धर्मशाला, सनातन धर्मशाला और आर्यसमाज आदि मुख्य हैं। धनवान लोग पर्यटक केन्द्रों से पूछताछ करके अपने योग्य होटल या उसके केन्द्रों में ही ठहर सकते हैं। यहाँ कई अच्छे होटल हैं।

शिमला के दर्शनीय स्थान—इस स्वर्गीय नगरी में गिरजा मैदान, मालरोड, लक्कड़ बाज़ार, पूर्व और पश्चिम शिमला, छोटा शिमला, बेंटलोई, संजोली, जाखू, लोअर बाज़ार, मिडिल बाज़ार, एडवर्डगंज, गंजरोड, राम बाज़ार, कार्टरोड, फागली, अनंडेल (रेसकोर्स), टूटीकण्डी, बालूगंज, समरहिल और कैथो आदि दर्शनीय स्थान हैं जो १२ मील के क्षेत्र में फैले हुए हैं।

इनके अतिरिक्त कुफरीजुंगा, चाइलटिहवा, तारादेवी, जुगोट, सोलंज, तूतापानी आदि कई दर्शनीय स्थान हैं जो शिमला से १५-२० मील दूरी पर हैं। इनमें से अधिकांश स्थानों के लिए मोटरें जाती हैं। कुछ ही स्थान ऐसे हैं जहाँ पैदल-यात्रा करनी पड़ती है। सवारियों का किराया निश्चित रहता है। उसकी जानकारी यात्रा-केन्द्र से प्राप्त हो सकती है। शिमला का सबसे ऊँचा स्थान जाखू है। वहाँ से नगर के निम्नतम भाग में आने के लिए ५ मील उतरना पड़ता है। सामने पर्वत-श्रेणी पर खड़े होकर यहाँ की छवि पर दृष्टिपात करने से ऐसा प्रतीत

होता है कि यह सब एक पर्दे पर किसी चित्रकार की तूलिका से चित्रित दृश्य हो। खेल-कूद और मनोरंजन आदि के लिए यहां पर पर्वतों को काटकर मैदान और उद्यान बनाये गये हैं। अंग्रेज़ों की समय में ग्रीष्मकालीन राजधानी होने के कारण यहां पर कई बड़ी-बड़ी इमारतें हैं। उनमें राष्ट्रपति-भवन, राज्यपाल-भवन, अखिल-भारतीय रेल विभाग, विधान सभा, सेना का मुख्य कार्यालय आदि हैं। ठहरने के लिए सेसिल होटल, रायल होटल आदि अनेक स्थान हैं।

इस नगर में राजा-महाराजाओं के कई अनुपम भवन भी देखने-योग्य हैं। इन सब स्थानों के साथ-साथ नगाधिराज हिमालय की हिमाच्छादित पर्वतमालाओं के दर्शन के लिए ८-१० मील घूमना पड़ता है। कई ऊँचे-ऊँचे स्थानों से ये सब अलग-अलग दृश्य देखे जा सकते हैं।

शिमला का हृदय-स्थान गिरिजाघर का मैदान है। यहां के पर्वतीय नगरों में यह सबसे बड़ा मैदान है। यहां प्रत्येक समय सजे-धजे लोग दिखलाई पड़ते हैं। माल बाज़ार के दृश्य को देखकर तो भ्रमणार्थी चकित हो जाते हैं। माल बाज़ार से ४ मील पर राजकीय कार्यालय हैं। हम लक्कड़ बाज़ार होते हुए सजोली स्नोडन, मशोबरा, नाईधिक की ओर गये। वहां पर इस पर्वतीय नगरी का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। प्रकृति की आभा हृदय को स्तब्ध कर देती है। यहां एक हास्पिटल भी देखने-योग्य है।

गिरिजाघर के पीछे जाखू पर्वत पर मारुति-मन्दिर पर लंगूर और वानरों का राज्य है। वहां उनके लिए चना आदि लेना आवश्यक होता है। यहां से शिमला नगरी घूंघट में स्थित-सी दिखाई पड़ती है। उस समय इसकी आभा मोहक होती है। इसके पीछे वार्नर्स कोर्ट, प्रोस्पेक्ट हिल, यूनाइटेड क्लब आदि हैं और सामने

आदि को देखते हुए वापस आ गये। इस प्रकार शिमला की पूरी प्रदक्षिणा हो गई।

यहाँ से चाडविक आदि स्थानों के लिए भी मार्ग जाता है। शिमला के सभी दर्शनीय स्थानों को देखने के लिए ५०-६० मील घूमना पड़ता है। यह यात्रा सवारी से भी की जा सकती है। इसमें १५-२० दिन लगते हैं। मासोब्रा नामक स्थान से नीचे की तरफ़ सीपी नामक स्थान है। यहाँ प्रतिवर्ष मई मास में मेला लगता और यात्री दूर-दूर से आते हैं। उस समह वाहर के व्यापारी भी कम्वल आदि वेचने के लिए यहाँ आते हैं। यहाँ के लोगों के लोक-गीत और नृत्य अत्यन्त मोहक होते हैं।

शिमला के समान वैभवपूर्ण और स्वर्गीय सौन्दर्ययुक्त नगर भारत भर में नहीं हैं। यहाँ से चारों ओर के पर्वतीय प्रदेशों के लिए मार्ग जाते हैं। कुल्लू का मार्ग विलासपुर और मण्डी होते हुए जाता है। अव शिमला से चकराता के लिए भी मोटर-मार्ग वन रहा है जो जुब्वल तक है। शिमला से नारकण्डा, चिनी (किन्नर देश) होते हुए तिव्वत की सीमा तक का मार्ग दुर्गम है। १४० मील यह लम्बा मार्ग वनकर पूरा हो रहा है। यहाँ से आगे सिप्की दर्रा होते हुए कैलास तक की यात्रा की जा सकती है।

राजकुमारी अमृतकौर का कताई-वर्ग—शिमला में रहते हुए मैं एक दिन खादी-भण्डार में पहुँचा। उस समय वहाँ के मैनेजर श्री गिरधारीलाल पुरी थे। पारस्परिक वातचीत में मैनेजर साहव ने मुझको राजकुमारी का सन्देश दिया कि वह यहाँ पर चर्खा की कक्षाएँ चलाना चाहती हैं। वापू का चरणसेवक होने के कारण मैं राजकुमारी के सन्देश से वहुत प्रसन्न हुआ। राजकुमारी से मिलने का सभी प्रवन्ध पुरीजी द्वारा हो गया था। जव मैं राजकुमारी के निवास-स्थान पर पहुँचा तो वहाँ मेरा वड़ा स्वागत हुआ। जलपान के वाद राजकुमारी ने मुझे अपने चरखे की क्रियाओं से परिचित कराया। उन्होंने एक कमरे में ले जाकर अपने हाथ का काता हुआ सूत भी दिखलाया। उस सूत को देखकर तो मुझे वड़ी प्रसन्नता हुई; पर उनकी वेश-भूषा से मैं अवाक् रह गया। गांधीजी का कट्टर अनुयायी मैं अपनी भावनाओं को न रोक सका और कुमारीजी से पूछ ही वैठा, "आप इस सूत का क्या करती हैं?"

राजकुमारी ने उत्तर दिया, "इसे मैं वापू के लिए भेजती हूँ।" मैंने कहा—'क्या वापू सूत की माला पहनकर प्रसन्न हो जाएँगे?" राजकुमारी अपनी वात

पर कुछ लज्जित-सी थीं; परन्तु मेरे वाक्-प्रहार को नहीं समझ पाई थीं। मैंने कहा कि गांधीवाद का अनुकरण केवल सूत कातने से ही नहीं होता, उ य सन्देश है कि जो सूत काता जाय उसी से बुना हुआ वस्त्र पहना जाय और आप रेशमी तथा अन्य विदेशी वस्त्रों को धारण करती हैं। आप चर्खावर्ग चलाने की अधिकारिणी नहीं हैं। आप बापू के दर्शन करें, तभी आपको गांधीवाद का - हो सकेगा। उन दिनों श्री सी० एफ० एण्ड्रूज साहब भी उनके घर में थे। उनसे भी मेरी मुलाकात हुई। वे वहां जानेवाले थे अतः मैंने उनसे ये सब बातें बापूजी से सुनाने के लिए कह दीं। बच्चों-जैसे सरल स्वभाववाले एण्ड्रूज ने मुझे भारत के सम्बन्ध में लिखी हुई अपनी पुस्तक पढ़कर सुनाई।

जब मैंने राजकुमारीजी से इस प्रकार कहा तो वह अपनी त्रुटि को समझ गई और उन्होंने मुझे खादी पहनने का वचन दे दिया। मैं कक्षा खोलने के लिए तैयार हो गया और बारडोली से ५० चरखे मँगाये। कक्षा का कार्य प्रारम्भ भी हो गया। कई प्रतिष्ठित घरों के व्यक्ति प्रशिक्षण के निमित्त आने लगे। फिर कुछ दिनों के बाद मैं कांगड़ा चला गया। कुछ मास व्यतीत होने पर सेवाग्राम में राजकुमारीजी से फिर मेरी भेंट हुई। अब राजकुमारीजी गांधीजी से दीक्षा प्राप्त कर चुकी थीं, और मोटी-सी खादी पहनकर बापू के पास ही झोंपड़ी में रहती थीं। उनके इस परिवर्तन को देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। वह मुझे बापू के पास ले गईं और बापू ने मुझे देखते ही कहा, "मैं इसे पहचानता हूँ, साबरमती में था।" इतना कहकर उन्होंने बात समाप्त कर दी। मैं श्री अरविन्द-आश्रम
रहा था और वहाँ

काँगड़ा में ग्रामोद्योगशाला खोली और उधर की सम्पूर्ण घाटियों का भ्रमण किया। यह प्रबन्ध लाला कन्हैयालाल तथा डा० गोपीचन्द भार्गव ने किया था। अब शिमला से कूल्लू-काँगड़ा के लिए मोटर-सड़क भी बन गई है। इस मार्ग से मंडी होते हुए उस घाटी में पहुँच सकते हैं। पहले शिमला से काँगड़ा के लिए कालका, जालंधर, अमृतसर और पठानकोट तक गाड़ी से चलना पड़ता था और उससे आगे छोटी गाड़ी या मोटर से काँगड़ा पहुँचा जाता था। पालनपुर में लाला कन्हैया-लालजी के साथ रहते हुए मैंने वहाँ की सारी स्थिति और मुख्य स्थानों को देख लिया। उसका विवरण आगे है।

काँगड़ा की भौगोलिक स्थिति—यह घाटी हिम-गिरीन्द्र के मुकुटमणि काश्मीर के दक्षिण-पूर्व भाग में धवलधारा के पार्श्व में स्थित है। यह पंजाब का एक ज़िला है। इसके पूर्व में शिमला, पश्चिम में पठानकोट, उत्तर में काश्मीर और दक्षिण में जालंधर और होशियारपुर हैं। धवलधारा हिम-शिखर इस क्षेत्र के उत्तर की दीवार के समान है। कांगड़ा-कुल्लू का विस्तार ६६७८ वर्गमील है। हिमालय से निकलनेवाली अनेक नदियाँ इस भाग को अनाज और फल-उत्पादन की शक्ति देती हैं। काश्मीर के समान यहाँ भी नदियों से नहरें निकालकर उनके जल का उपयोग किया गया है। यहाँ व्यास, पार्वती, उड़ा, वाणगंगा, सरवरी, निगुल, आवा, तीरथन्, नंजा, अहिल्या, गज और चक्किवोल आदि कई छोटी-बड़ी नदियाँ हैं। इनसे निकाली हुई नहरों से धान के खेतों और फल व चाय के बागों को सींचा जाता है। इन्हीं से हाइड्रो-इलैक्ट्रिक कारखाने भी चलते हैं। यहाँ गेहूँ, मक्का, मल्टा, बेगन, सील और धान आदि नाना प्रकार के अनाज पैदा होते हैं। कुल्लू घाटी में सेव, अनार, अखरोट, दाख, आड़ू, जापानी फल, खुमानी, चेस्टनट आदि कई प्रकार के फल पैदा होते हैं।

काँगड़ा की ऐतिहासिक स्थिति—महाभारत-काल में सुश्रम नामक राजा हुए थे। उन्हीं के वंश में अठारहवीं शताब्दी में यहाँ राजा संसारचन्द हुए। उनके समय तक यह भाग हिन्दुओं के ही हाथ में था। यह क्षेत्र विद्या और कला-कौशल के लिए प्रसिद्ध था। सतलुज, व्यास और चिनाव नदियों के बीच में होने से इस भाग का नाम 'त्रिगर्त' भी पड़ गया था। उस समय काँगड़ा में राजधानी थी। उसी के किले में जो मातादेवी का मन्दिर है वही इसकी कीर्ति का गान कर रहा है। यदि किसी को यहाँ का दूसरी-तीसरी शताब्दियों का इतिहास जानना हो तो

हरिपुर, नूरपुर, कांगड़ा और बैजनाथ आदि के मन्दिरों के पार्थिवल चित्रों (भित्तिचित्रों) से कई बातें जान सकते है। बौद्ध काल में तो इसकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। सातवीं शताब्दी में यहाँ पर ५० सघों में २००० भिक्षुओं का प्रबन्ध था। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेन-सांग ने इसका उल्लेख किया है। इस प्रकार के चित्र बड़े-बड़े म्यूजियमों में अब तक सुरक्षित रखे हुए है। अधिक जानकारी के लिए ऐतिहासिक ग्रन्थों को पढ़ना चाहिए।

बंडला टी इस्टेट (पालनपुर)—श्री लाला कन्हैयालाल के खादी-प्रेम ने मुझे यहाँ आने के लिए प्रेरित किया। मैं राजकुमारी अमृतकौर की आज्ञा से कालका तक कार से और आगे रेल-द्वारा पठानकोट होते हुए पालनपुर पहुँचा। लालाजी की इच्छा के अनुसार यहाँ कातने (पिरोने) आदि के अलावा दरी और आसन बुनने का विभाग भी खोल दिया गया। उनके परिवारवालों ने और समीपवर्ती ग्रामवासियों ने इस कार्य को सीख लिया। इसका उद्घाटन डा० गोपीचन्द भार्गव से कराया गया। हमने वहाँ के गाँवों में 'गद्दी' लोगों की बस्ती भी देखी। वहाँ की अग्रेज महिलाओं ने इस कार्य में दिलचस्पी ली और उन्होंने अपने घरों में दरी बुनने का नया तरीका भी प्रारम्भ कर दिया। उनमें मिसेज फेयरवेंक, मि० मारटिन, मैडम मेकार्थ (एप्रोव एण्ड लन्दन-सस्था की मेम्बर) और एक फ्रेंच महिला ने इस कार्य को पूर्ण मनोयोग से सीखा। वे पहले भी इस प्रकार के कार्यों को जानती थी अतः उन्हें काम सीखने में असुविधा नहीं हुई। मैं छुट्टी के दिन उनके घर जाता था। उनके घरों में कला-कौशल की कई

कहते हैं। इसके आश्रय में अनेक भाषा और जाति के लोग निवास करते हैं। यहाँ सूद, ब्राह्मण, राजपूत, भोजकी, घार्य, जाट, महाजन, गुसाईं, सादाकार, कंगहड़े, दुसाली, राठी, डूमने, शालभाषा, जुलाहे, कोली, गूजर, सकीहड़े, गद्दी, कण्वात, लाऊली, वटवाल, मुसलमान और ईसाई आदि जाति के लोग रहते हैं। इसी प्रकार यहाँ पंजाबी, उर्दू, हिन्दी, गाडू, हंडोरी, टाँकरी, सपट्टी, पहाड़ी, लाहुली, कुल्लवी आदि कई बोलियाँ प्रचलित हैं। जब एक ज़िले में इतनी बोलियाँ हैं तो यदि सम्पूर्ण भारत में दो सौ-तीन सौ बोलियाँ हों तो आश्चर्य की कोई बात नहीं है। किन्तु यह निर्विवाद है कि अन्य किसी ज़िले में इतनी बोलियाँ नहीं हैं। यहाँ के रीति-रिवाज कुल्लूवाले अंश में वर्णित हैं।

ज्वालामाई—इस क्षेत्र के लिए पठानकोट से मीटरगेज में ज्वालामुखी रोड स्टेशन पहुँचकर १८ मील मोटर से चलना पड़ता है। अथवा सीधे मोटर से भी पहुँचा जा सकता है। मार्ग में हरिपुर, नूरपुर आदि ऐतिहासिक किलों को अवश्य देखना चाहिए। यह प्रसिद्ध स्थान काली पहाड़ के पार्श्व भाग में है। यहाँ के मन्दिर में मूर्ति नहीं है; परन्तु भूमि से जो ज्वाला ऊपर उठती है वह लाल जिह्वा-सी प्रतीत होती है। यहाँ बारह मास अग्नि, नैसर्गिक रूप से धधकती हुई बाहर निकलती है। यही भगवती की शक्ति है। इसलिए यह क्षेत्र ज्वालामाई के नाम से प्रसिद्ध है। मन्दिर की दीवारों में बने हुए आलों में भी छोटी-छोटी ज्वाला-लपटें कभी-कभी निकलती रहती हैं। मन्दिर के पीछे एक कुण्ड में 'ढफ-ढफ' की आवाज़ से पानी उछलता रहता है। यही मूल ज्वाला का केन्द्र माना जाता है। लोग ज्वाला में घी, दूध, पेड़ा आदि डालकर पूजा करते हैं। यह ज्वाला वर्ष भर में कई महीनों में कम या अधिक धधकती रहती है, किन्तु बुझती कभी नहीं है। आश्विन मास के नवरात्रि में यहाँ की जात्रा (यात्रा) होती है। सारे भारत के हिन्दू और सिख उस समय यहाँ आते हैं। यहाँ से मोटर-द्वारा कांगड़ा जाना सुविधापूर्ण है।

काँगड़ा (नगर)—यह नगर ज्वालामुखी से २४ मील पर बाणगंगा के तट पर बसा हुआ है। ज़िले के मुख्य कार्यालय यहीं हैं। निवास के लिए यहाँ धर्मशालाएँ हैं। यहाँ विजयेश्वरी नामक मातादेवी का बहुत प्राचीन मन्दिर है। इसीलिए यह भी एक पवित्र क्षेत्र माना जाता है। यहाँ पाण्डवों के समय का पुराना किला है। अठारहवीं शताब्दी में राजा संसारचन्द ने इसका जीर्णोद्धार

कराया था। सन् १८६५ में यहाँ ब्रिटिश सेना रहती थी। किले के ऊपर खड़े होकर धवलधारा हिम-शिखरों का रमणीय दृश्य दिखाई देता है। बाण-गंगा में कल-कल नाद करके बहनेवाली बाणगंगा का दृश्य भी मोहक है। यहाँ से धर्मशाला नामक स्थान के लिए मार्ग जाता है।

धर्मशाला—यह स्थान कांगड़ा से ११ मील दूर ४५०० फीट की ऊँचाई पर (नीचे के भाग में) स्थित है, और जिले का केन्द्र स्थान है। धर्मशाला शहर, ऊपर और नीचे दो भागों में विभक्त है। ऊपर का भाग ६००० फीट पर है। यहाँ पर गोरखा सेना रहती थी और उससे सम्बन्धित आफिस भी यहीं थे। यहाँ अब भी कुछ सेना रहती है। धर्मशाला के ऊपरी भाग में 'डल' नामक तालाब है। यहाँ से दूर-दूर के गाँवों का सुहावना दृश्य दिखाई देता है। यहाँ से कुछ आगे चलने पर जंगल में 'मैकलियोडगंज' नाम का गाँव है और उससे भी आगे एक मील पर उत्तर में 'भागसूनाथ' महादेवजी का मन्दिर है। यहाँ से कांगड़ा के घगली वन दिखाई देते हैं। अतः एक दिन यहाँ अवश्य ठहरना चाहिए। यहाँ कई पर्वत निर्झर हैं। मन्दिर के पास सिंहमुख से जो पानी गिरता है वह पीने के योग्य है और उसी से बना हुआ कुण्ड स्नान करने के लिए अच्छा है। यहाँ से तीन मील नीचे शहर है। डेढ़ मील नीचे ही डिपो बाजार, कालेज, सेनेटोरियम, फोरसीथगंज, सिविल लाइन्स और गोरखा बस्ती आदि हैं। धर्मशाला में मेरे मित्र मन्नरामजी थे, अतः मैंने उनके साथ चार-पाँच दिन में यहाँ के सभी दर्शनीय स्थान देख लिये। यहाँ से पालनपुर २० मील है और यहाँ सीधी मोटर जाती है।

पालनपुर— । मे तहसील और कई स र्गों आदि

भोजन और यहाँ तक कि नमक भी नहीं खरीदते। यहाँ की मिट्टी में एक प्रकार का नमक होता है उसे पानी में मिला दिया जाता है। जब मिट्टी नीचे बैठ जाती है तो उसी नमकीन पानी को नमक के स्थान पर प्रयोग किया जाता है। मक्की ही इन लोगों का मुख्य खाद्य है। गांधीजी के उपदेश तो यहाँ पहले से ही कार्यरूप में चलते आये हैं।

बैजनाथ—यह स्थान पालनपुर से दस मील है। इस भाग में बैजनाथ मन्दिर के समान कलापूर्ण मन्दिर दूसरा नहीं है। यह मन्दिर हज़ारों वर्ष पूर्व का बना होगा। शिवरात्रि में यहाँ यात्रा होती है। मुझे योगिनी आनन्दमयी के प्रथम दर्शन यहीं पर हुए थे। यहाँ सिद्धनाथ नामक एक अन्य मन्दिर भी है। यहाँ के चारों ओर का दृश्य मोहक और रमणीय है। यहाँ से आधा मील पर 'कठाते' नाम का स्रोत (चश्मा) है, उसका जल आरोग्यप्रद है। नदी के दूसरी ओर पप्रोला नाम का गाँव है, यहीं से आगे मंडी होते हुए कुल्लू का मार्ग है।

जोगिन्द्रनगर का जलविद्युत् गृह—हिमालय प्रदेश में इतना बड़ा विद्युत्-शक्ति का केन्द्र दूसरा नहीं था। परन्तु अब भाखड़ा-नांगल सबसे बड़ा है। जोगिन्द्र-नगर काँगड़ा घाटी का रेल-मार्ग भी बना। यहीं के प्रसिद्ध इंजीनियरों के एक दल ने १०-१२ साल तक बरौट नामक स्थान में काम किया। हिमालय में ८००० फीट की उँचाई पर ऊला नामक नदी है। उसके ६००० फीट पर बाँध बनाया गया। ढाई मील तक पहाड़ को काटकर वहाँ से ६ इंच व्यास के नल में १५००० फीट लम्बी सुरंग से पानी लाया गया है। इस जल को १८०० फीट नीचे गिराकर विद्युत्-शक्ति पैदा की गई है। इससे पंजाब और हिमाचल प्रदेश को सस्ती बिजली मिल जाती है। इस बाँध के पर्वत-शिखर पर होने के कारण वहाँ से सामान लाने के लिए बिजली की गाड़ी बनाई गई है। यह गाड़ी एक सप्ताह में रविवार और गुरुवार—दो ही दिन चलती है। इसमें बैठने से डर तो लगता है लेकिन अब तक किसी प्रकार की दुर्घटना नहीं हुई। यहाँ जाने के लिए वहाँ के दफ़्तर से आज्ञा लेनी पड़ती है।

जो बिजली का कारखाना बना है उससे पहले ४८,००० किलोवाट विद्युत्-शक्ति उत्पन्न होती थी। बरौट तक जाने में पहाड़ों का स्वर्गीय सौन्दर्य दृष्टिगत होता है। वहाँ से शिमला की बस्तियाँ और बर्फीले पहाड़ दिखाई देते हैं। बरौट से ५ मील नीचे इसका बाँध है। वहाँ से २ मील नीचे सुरंग मार्ग से पाइप में पानी

लाकर बिजली पैदा की गई है।

कुल्लू घाटी—इन सब दृश्यों को देखकर मैं कुल्लू घाटी की
मस्तरामजी मेरे साथ ही थे। कुल्लू भी कांगड़ा जिले की एक
में मण्डी नामक स्थान है जहाँ से शिमला के लिए मोटर जाती
बीच में ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं। इसलिए ये दोनों भाग अलग-
पठानकोट से कुल्लू होते हुए मनाली तक मोटर-सड़क है।
नामक स्थान में नमक की खान देखने-योग्य है। हम सन्ध्या-समय
हमने रात्रि में भटिंग नामक ग्राम में विश्राम किया। पास ही में
का एक पुराना (७००० फीट ऊँचाई पर) महल है। यहाँ के
चीता, शेर आदि जंगली जानवर पाये जाते हैं। यहाँ प्रवासियों के
है। यह शिखर भब्बूजोत नाम से प्रसिद्ध है।

हमने भटिंग नामक स्थान से रात के ३ बजे उठकर लालटेन के
प्रारम्भ कर दिया। उस दिन हमें दो बड़े ऊँचे पहाड़ों को पार करके
३२ मील चलना था। मार्ग में जंगली जानवर और चोरों का भी भय
मील पर ऊला नदी का पुल पार करके बँगड़ू घाट के शिखर पर पहुँ
वह ३ मील ऊँचा है। जब हम वहाँ पहुँचे तो सूर्य भगवान अपनी किरणों
संसार को स्वर्णरंजित कर रहे थे। अब हमें ६५०० फीट ऊँचे भब्बूजोत
शिखर को पार करने के लिए नया बल मिला।
भब्बूजोत शिखर पर प

में बसा हुआ है।

कुल्लू—गिरि-शिखरों से घिरा हुआ यह स्थान व्यास और सर्वरी के संगम पर है। फलों के लिए उपयुक्त भूमि होने से यहाँ कितने ही बगीचे हैं। यहाँ तहसील होने से असिस्टेण्ट जज कोर्ट, हाई स्कूल आदि हैं। ग्रामोद्योग से सम्बन्धित मधुमक्खी-पालन-विभाग और ऊन कातने-बुनने आदि की संस्थाएँ हैं। यहाँ रघुनाथजी का बड़ा मन्दिर है। दशहरे के अवसर पर कुल्लू में बड़ा मेला लगता है। रघुनाथजी की उत्सव-मूर्ति के दर्शन के लिए यहाँ के सभी ग्रामवासी आ जाते हैं। मेले के समय रघुनाथजी की उत्सव-मूर्ति को पालकी में रखकर एक मैदान में लाया जाता है। उस समय प्रत्येक गाँव के देवी-देवता इनके दर्शन के लिए यहाँ आते हैं। नृत्य और संगीत इस मेले की शोभा को और अधिक बढ़ा देते हैं। यहाँ पट्टू, पश्मीना, शाल, अलवान, कम्बल आदि ऊनी वस्त्रों का और शिलाजीत, कस्तूरी, खच्चर, घोड़े आदि का व्यापार होता है। मेले के समय तिब्बत, शिमला, चम्बा, लाहुल, सुपित्ती, लद्दाख, पांगी आदि स्थानों के व्यापारी यहाँ आते हैं। यह इन सभी स्थानों का व्यापार-केन्द्र भी है। यहाँ नमक, चमड़ा फल आदि का व्यापार भी होता है। इस स्थान के उत्तर में लाउल, केलिंग तक १२० मील का क्षेत्र है। केलिंग में एक अवैतनिक मजिस्ट्रेट रहता है। यह नगर अखाड़ा बाजार, सुलतानपुर और कुल्लू इन तीन भागों में बँटा हुआ है। सुलतानपुर में पुराना राजमहल और पुरानी वस्तुओं का संग्रहालय है। अखाड़ा बाजार व्यापारिक केन्द्र है। कुल्लू में आफिस व स्कूल आदि हैं। दशहरे के मेले की झाँकियाँ यहाँ की संस्कृति की प्रतीक हैं। ऊँचाई ४५०० फीट है।

मनाली (वशिष्ठ)—कुल्लू से २३ मील दूर हिम-शिखरों के पास मनाली नामक स्थान है। यहाँ तक मोटर-मार्ग है। व्यास नदी के किनारे जाता हुआ यह मोटर-मार्ग दर्शनीय है। यहाँ पर निवास के लिए डाक-बँगले, होटल और सराय हैं। यहाँ से रोटांग दर्रा होते हुए लद्दाख और काश्मीर का मार्ग है। यहाँ से २ मील दूर वशिष्ठ नामक स्थान पर गरम जल का कुंड है। वहाँ रघुनाथजी व वशिष्ठजी आदि के मन्दिर हैं। आगे १२ मील चलकर हिम-शिखरों से भरा हुआ रोटांग दर्रा है। उसकी ऊँचाई १४,५०० फीट है। वहाँ बहनेवाली तेज़ हवा में कभी-कभी घोड़े और खच्चर भी उड़ जाते हैं, ऐसा सुना जाता है। इसलिए वहाँ पर गुफा के आकार के पत्थर के बने हुए सरकारी मकान हैं। हवा चलने पर आदमी उनमें

छिपाकर बैठ जाते हैं।

इस मार्ग पर प्रातः १० बजे से पूर्व ही चलना पड़ता है
के ५ बजे तक हवा नहीं रुकती है और इधर-उधर चलना
है। यहाँ से आगे चलकर लामोन्नी बुद्ध मठ में बौद्ध लोग रहते
मील दूर पर केलिंग में एक अवैतनिक मजिस्ट्रेट रहता है। पी
नेहरू प्रायः मनाली में आकर रहते हैं। लाहुल-स्पिति भाग
तरह छः-सात पुरुषों की एक स्त्री होती है। इस जिले के मुख्य
जीप-मार्ग बन रहा है। इससे एक ही दिन में मनाली से केलिंग
है। इस भाग में जो 'सतलुज ताल' है वह देखने ही योग्य है।
हैं। यहाँ के पहाड़ी इलाकों में कई अजीब रीति-रिवाज हैं। मनाली
पार करके 'लेह' तक एक मोटर-मार्ग बन रहा है। अब रोटांग
सकते हैं। इस मार्ग के बनने से सीधा काश्मीर पहुंच सकते हैं।

मणिकरण क्षेत्र—यह पवित्र स्थान कुल्लू से २८ मील दूर है।
ऐसे उष्ण जल के स्रोत हैं जिनमें खिचड़ी पक जाती है। उस पर कम
गेर वा पत्थर रखना पड़ता है। इस स्थान के सम्बन्ध में एक कहान
बार पार्वतीजी की मणि गिर गई थी। जब बहुत प्रयत्न करने पर भी
तो शेषनाग ने वह मणि पानी में से फुंकार मारकर निकाली थी।
जी का एक मन्दिर है। यह स्थान पर्वतों
धार मान के

मसूरी, शिमला और नैनीताल न जाकर यहाँ रहते हैं। यहाँ सस्ते मकान और सस्ती भोजन-सामग्री मिल जाती है।

डलहौज़ी में वालुन, कथलाग, पोर्टेन, टेहरा और वाक्रोता नामक ५ अलग-अलग पहाड़ हैं जिनकी उँचाई ५ हज़ार से ७ हज़ार फीट तक है। यह स्थान चारों ओर से घने जंगलों से घिरा हुआ है, अतः नाना प्रकार के रंग-विरंगे पक्षी और जंगली जानवरों का निवास-स्थान है। यहाँ का वाक्रोता वाज़ार सुन्दर और वड़ा है। दक्षिण की तरफ वड़ा मैदान है और उत्तर में हिमाच्छादित शिखर हैं जिनसे इस स्थान की शोभा और भी अधिक वढ़ गई है। तेहरामल नामक मैदान डेढ़ मील लम्बा है और चारों ओर सुन्दर पर्वतों से घिरा हुआ है। जव आकाश साफ होता है उस समय पंजाव की रावी, सतलुज और व्यास नदियों का दृश्य दूर से अत्यन्त सुन्दर दिखलाई देता है। उत्तर में १६००० फीट ऊँचे हिम-शिखरों का दृश्य नयनाभिराम है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में इतना सस्ता पर्वतीय प्रदेश दूसरा नहीं है। आधुनिक युग की सभी सुविधाएँ यहाँ प्राप्त हैं। नल, विजली तथा अन्य वस्तुओं से सुसज्जित मकान, वैंक, होटल आदि सव कुछ हैं। भोजन-सामग्री, फल और साग-सब्ज़ी यहाँ सस्ती मिलती हैं।

डलहौज़ी के कई स्थान पिकनिक के योग्य हैं। इनमें कालाटोप, डैनकुण्ड और खज्यार मैदान प्रसिद्ध हैं। डैनकुण्ड तो 'देवताओं का पर्वत' कहलाता है। चम्वा के मार्ग में ११ मील जो खज्यार मैदान है वह अतीव चित्ताकर्षक है। इसके पास के सरोवर और सुवर्णकलश-युक्त मन्दिर से यहाँ का सौन्दर्य और भी वढ़ गया है। इस सरोवर में रोहालसर-जैसे घूमनेवाले द्वीप सवको आश्चर्य में डाल देते हैं। यहाँ दो डाक-वँगले भी हैं। चम्वा के डिप्टी कमिश्नर से स्वीकृति लेकर उनमें रह सकते हैं। यहाँ से आगे चम्वा के लिए मोटर-मार्ग भी है।

चम्वा—डलहौज़ी से २६ मील पर इटालियन नमूने का यह सुन्दर स्थान है चम्वा। यह जलवायु के लिए प्रसिद्ध है। रावी नदी के तट में वसने से इसकी शोभा और भी वढ़ गई है। पठानकोट से यहाँ नित्य ही मोटर-लारियाँ और कार आती रहती हैं। यह ऐतिहासिक स्थानों के लिए भी प्रसिद्ध है। २५०० फीट ऊँचा होने से यहाँ गर्मियों में थोड़ा पसीना भी निकलता है। यह पर्वतीय प्रदेशों का व्यापारिक केन्द्र है; अतः समीपवर्ती पर्वतीय लोग अपनी वस्तुओं के क्रय-विक्रय के लिए यहाँ आते हैं। यहाँ से ४०० फीट नीचे वहने वाली रावी नदी का दृश्य देखने-योग्य है।

यहाँ कलापूर्ण मन्दिर बाहर से आनेवालों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इन मन्दिरों का निर्माण राजपूत राजाओं के समय में हुआ है। इसीलिए राजपूत मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। राजमहल के पास तीन विष्णु-मन्दिर और तीन शिव-मन्दिर प्रसिद्ध हैं। इनमें सबसे बड़ा मन्दिर लक्ष्मीनारायण का है।

यहाँ का पुराना म्यूजियम भी देखने लायक है। इसमें कांगड़ा के मनोहर रंग-बिरंगे चित्रों को देखकर यात्री प्रसन्न हो जाते हैं। चित्रों के अतिरिक्त अनेक कला-कौशलयुक्त वस्तुएँ भी वहाँ रखी हैं। चम्बा से कश्मीर और मायपानी के रहनेवाले पांगी, कुल्लू और लाहुल आदि पहाड़ी लोगों की बस्तियों के लिए भी यहीं से मार्ग जाते हैं, किन्तु वहाँ जाने के लिए घोड़े, खच्चर आदि सवारियों पर ही जाना पड़ता है। पांगी नामक स्थान अत्यन्त आश्चर्यक है। यहाँ पर चन्द्रभागा-जैसी नदियों ने ८००० फीट से वेगपूर्वक बहते हुए कई स्थानों पर जल-प्रपातों का निर्माण किया है। लोग इन्हें देखने के लिए ही यहाँ आते हैं। यहाँ के घने जंगल, घाटियाँ आदि हरे-भरे खेत सब देखने योग्य हैं। ये सब स्थान भास्कर श्रेणी के अन्दर हैं। इनमें साहूल, धीरपुर, कुगाऊ और भूसल घाटियाँ सबसे सुन्दर हैं। इनके बीच में कई गाँव बसे हुए हैं। १८,५०० फीट ऊँचाई पर किलार ही प्रधान-प्रिय स्थान कहलाता है। चम्बा से ७२ मील दूर पुखी मसुरुड, कन्हेल, टिम्बा, अल्लास, वृन्दावनी और किलार आदि ७ स्थानों में कैम्प डालते हुए यहाँ पहुँचा जाता है। यहाँ का सबसे प्रसिद्ध स्थान 'त्रिलोकनाथ मन्दिर' है जिसका मेला अगस्त के महीने में लगता है। उस समय हिन्दू और बौद्ध सब यहाँ पर आ जाते हैं। मेले में ऊनी वस्त्र बिकते हैं।

३. कश्मीर-प्रवास

काश्मीर-प्रवास—महाभारत काल से ही काश्मीर भारतीय संस्कृति, संगीत, कला-कौशल, शिल्प-साहित्य तथा काव्यादि में प्रसिद्ध होने के कारण 'श्री शारदा का ननिहाल' के नाम से विख्यात है। प्राचीन काल में राजा-महाराजाओं द्वारा बनवाये गये भव्य मन्दिर तथा भवन अब भी उन हिन्दू-राजाओं की कीर्ति के द्योतक हैं। इतिहास से ज्ञात होता है कि सम्राट् अशोक के काल में यह एक प्रसिद्ध बौद्ध केन्द्र भी था। कनिष्क के समय में तो यहाँ अनेक भिक्षु-केन्द्र थे। वर्तमान काल की मसजिदों और मन्दिरों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि ये सब किसी समय बौद्ध-मन्दिर ही थे। अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थों से भी इन सब बातों का स्पष्टीकरण हो जाता है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक कवि 'कल्हण' की 'राजतरंगिणी' नामक पुस्तक से भी काश्मीर के इतिहास का पर्याप्त परिचय मिल जाता है।

विश्वविख्यात इतिहासकार कवि 'कल्हण' ने ई० स० ११४८ से ११५० के बीच के काल में 'राजतरंगिणी' नामक ऐतिहासिक संस्कृत काव्य की रचना छन्दोबद्ध शैली में की। इसमें ११८४ ईसा पूर्व से ई० स०, ११५१ तक का अर्थात् २३३५ वर्षों की लम्बी अवधि का इतिहास है। यह केवल राजाओं के जन्म-मरण अथवा युद्धों आदि की ही सूचीमात्र न होकर एक रोमांचकारी सुन्दर महाकाव्य है। अब से ८०० वर्ष पूर्व रचित इस बृहद ग्रन्थ में काश्मीर के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन अत्यन्त ही ओजपूर्ण तथा सुकोमल शैली में किया गया है। इसमें महाभारत काल से लेकर कवि ने अपने काल तक का काश्मीर का अत्यन्त ही सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। इसमें राजा प्रवरसेन, ललितादित्य तथा अनन्त वर्मा के सदृश नरेशों की अद्भुत वीरता, रण-कौशल तथा अतीत गौरवमय कश्मीर की सुर-सुन्दरियों का पूर्ण सजीव चित्रण है जिसको पढ़कर मानस-पटल पर सब चित्र अंकित हो जाते हैं। 'कल्हण' काश्मीर से पूर्ण परिचित थे, अतः उनके सजीव वर्णन से वहाँ के प्राचीन राजाओं के उत्कर्ष, षड्यन्त्र, प्रगति, अवनति, साहित्य, संगीत, कला आदि का पूर्ण परिचय मिल जाता है। उदाहरणस्वरूप निम्न श्लोक लें—

"त्रिलोक्या रत्नः सुस्नाप्याः तस्या धनपतेर हरित ।
यत्र गोरी गुरुः शैलो यतस्मिन्नपि मंडलम् ॥"

—राज-तरंगिनी 1/४३

—अर्थात् त्रिलोकी में प्रसिद्ध है रत्नगर्भा वसुन्धरा, पृथ्वीतल में प्रसिद्ध है उत्तर दिशा, उत्तर में प्रशंसनीय है पार्वतीजनक के नाम से पुकारे जाने वाले हिमालय पर्वत और हिमालय में भी अति रमणीय स्थान है कश्मीर।

उपर्युक्त श्लोक से इस स्थान की महिमा भली-भाँति ज्ञात हो जाती है। कास्मीर की वर्तमान राजधानी श्रीनगर है। श्रीनगर के विषय में यशस्वी कवि 'कल्हण' ने लिखा है कि :

ऋद्धापणां राजपथन्, पार्श्वगपर्ययम निमग्नम् ।
पर्वत पुष्पः कल्लोलानः, स्वर्गेष्वेवाभिदाम्बरम् ॥
धिग्जयांपौर्याजितविनाजितश्रितेश्वरनम् ।
वितास्ता पुलिने तेन नगर, निर्मीयत् ॥

—राज-तरंगिनी, २०१, २०२

—अर्थात् कुबेर की नगरी को भी मात करनेवाली वितस्ता नदी के किनारे एक नगर (श्रीनगर) का निर्माण किया, क्योंकि दूर-दूर के राज्यों पर विजय प्राप्त कर उन्होंने अपने नगर को धनधान्यादि से भरपूर किया था। नगर के दोनों ओर राजमार्गों में गगनचुम्बी दुकानें थीं। फल एवं पुष्पों से भरे हुए यहाँ के नन्दन वन को देखने से प्रतीत होता था कि यही दूसरा स्वर्ग है। कास्मीर का मनोहर वर्णन सुनने के लिए महाकवि 'कल्हण' का ही आश्रय लेना उचित होगा। उपरोक्त श्लो

के काल में अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ, किन्तु औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् ई० सन् १७५१ से फिर हिन्दू-राज्य स्थापित हो गया। इसके बाद अल्पकाल में ही अफगानों ने काफी लूट-मार तथा अत्याचार किये। काश्मीरियों ने सिक्खों से सहायता की याचना की। तत्स्वरूप १८१४ में रणजीतसिंह ने अपनी सेना सहित पठानों पर आक्रमण कर दिया; परन्तु वह भी १८१९ में पूर्ण रूप से हार गये। इस युद्ध में गुलाबसिंह ने अत्यन्त पराक्रम एवं निज रण-कौशल दिखाया था। फलस्वरूप १८२० में उन्हीं को जम्मू के राज्य-सिंहासन पर विभूषित कर गौरव प्रदान किया गया। उन्होंने थोड़े ही समय में काश्मीर, गिलगित तथा छोटे तिब्बत (लद्दाख) पर भी कब्ज़ा कर लिया। १८४५ में अंग्रेज़ों तथा सिक्खों में युद्ध छिड़ गया; परन्तु गुलाबसिंह ने सिक्खों को मदद न देकर अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए भी इस भाग को बचा लिया। सिपाही-विद्रोह में इनके पुत्र रणवीरसिंह ने अंग्रेज़ों की मदद की। इससे गिलगित के खोये हुए भाग को भी उन्होंने प्राप्त कर लिया। १८६० में इनकी मृत्यु के पश्चात् इनके पुत्र प्रतापसिंह काश्मीर तथा जम्मू के एक-छत्र अधिपति बन गये। उन्हीं के राज्य-काल में राज्य के सारे मार्गों—राजपथों का निर्माण हुआ, नष्ट हुए मन्दिरों का जीर्णोद्धार हुआ तथा उनमें मूर्तियों की स्थापना पुनः की गई। इसके पश्चात् हरिसिंह ने राज्यभार सँभाला। भारत के स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इनको अलग कर इनके पुत्र युवराज कर्णसिंह को सदरे-रियासत के पद पर आसीन किया गया। वहाँ अब भी अशोक-कालीन इमारतें खड़ी हैं।

भूगोल—इसका क्षेत्रफल ८४४७१ वर्गमील विस्तार में फैला हुआ है। श्रीनगर के चारों ओर की घाटियाँ ६० मील लम्बी तथा २० मील चौड़ी और सुन्दर झीलों से सुशोभित मैदान-सी हैं। सम्पूर्ण एशिया में वूलर जैसा मीठे पानी का कोई दूसरा सरोवर देखने को नहीं मिलेगा। इसके पूर्व में तिब्बत, उत्तर में रूस, सिंकियांग तथा पामीर और पश्चिम में पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान और दक्षिण में पंजाब तथा हिमाचल प्रदेश हैं। यहाँ के लोग आर्य जाति के हैं। इनके संस्कार भी इसी के अनुसार ही हैं। काश्मीर अपने सौन्दर्य के कारण पृथ्वी पर स्वर्ग के नाम से प्रसिद्ध है। संसार के भिन्न-भिन्न भागों से असंख्य नर-नारी काश्मीर के सौन्दर्य को देखने के लिए आते रहते हैं। यहाँ के भिन्न-भिन्न सुन्दर स्थानों को देखकर मनुष्य आनन्द-विभोर हो उठता है।

काश्मीर-वर्णन—भारतमाता की मुकुटमणि काश्मीर भूलोक में नन्दनवन के

नाम से विख्यात् है। इसका प्रमुख कारण वहाँ का अगाध प्राकृतिक सौन्दर्य, कला-कौशलयुक्त वस्तुएँ, फल-फूलो से युक्त सुन्दर वन-उपवन आदि है। प्रकृति मे पले यहाँ के निवासी भी अत्यन्त सरलहृदय व्यक्ति हैं। इस यान्त्रिक युग का प्राणी जो कि सदैव ही कृत्रिमता के आवरण में रहता है यदि अल्प समय के लिए भी यहाँ के वातावरण में रहे तो वह समस्त सासारिक दु.ख तथा बन्धन भूलकर सृष्टिकर्ता गुण-गान मे ही लीन हो जाता है। पौराणिक काल से ही इस स्वर्गीय स्थान का नाम 'कश्यप-मेरु' अर्थात् काश्मीर चला आ रहा है। पौराणिक विवेचनानुसार तो सृष्टि का आरम्भ हो यही से हुआ है। इसकी कथा इस प्रकार है कि जिस समय समस्त पृथ्वी जल-प्लावित थी तथा कही भी रहने-योग्य स्थान न होने के कारण देवताओं ने भगवान से प्रार्थना की, उस समय भगवान ने मेरु-पर्वत का जल से सृजन किया तथा सृष्टि की समस्त सुन्दरता का दान इस पर्वत को ही दिया। आजकल धनिक लोगों का यह एक परिभ्रमण-क्षेत्र है। यहाँ वे लोग उस अनिर्वचनीय आनन्द का उपभोग करते हैं जिसे यदि स्वर्गीय आनन्द कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। यूरोप में वेनिस नामक एक नगर है जो जल के अन्दर बसाया गया है। इससे वहाँ घूमना-फिरना सब जल मे ही होता है। यूरोप मे एक कहावत भी है कि 'See Venis and die' किन्तु काश्मीर तो इस यूरोपीय नगर से भी कही अधिक सौन्दर्यशाली है, क्योकि इसकी सबसे बडी विशेषता इसका स्वाभाविक सौन्दर्य है न कि कृत्रिमता। इस नगर के चारों ओर सदैव बर्फ से ढकी रहनेवाली ऊँची-ऊँची हिमालय-श्रेणियाँ नजर आती हैं, जिनके नीचे देवदारु के घने जं— त

तथा बाद में मोटर से मरी, क्वाला, डुमेल, उर्री तथा बारामुल्ला होते हुए श्रीनगर पहुँचते थे। परन्तु अब इन स्थानों के पाकिस्तान में चले जाने के कारण भारत-सरकार ने नये रास्ते का निर्माण किया है, जो पठानकोट तक रेल द्वारा तय करना होता है, फिर मोटर द्वारा जम्मू, ऊधमपुर, कुड बटोट, रामबन और बनिहाल नामक सुरंग पार करते हुए काश्मीर घाटी तक पहुँचाता है। दिल्ली से हवाई जहाज द्वारा भी जा सकते हैं।

पठानकोट से जम्मू ६७ मील है, जिसकी उंचाई १००० फीट है। जम्मू से ऊधमपुर ४२ मील है, जिसकी उँचाई २३४८ फीट है। ऊधमपुर से कुड २४ मील है जिसकी उँचाई ५७०० फीट है। कुड से बटोट १२ मील है, जिसकी उँचाई ५,११६ फीट है। यहाँ पर उँचाई कुछ कम हो जाती है। कुड से रामबन १७ मील है, किन्तु यहाँ उँचाई केवल २२५० फीट की रह जाती है। यहाँ से बनिहाल सुरंग, जो ६५० फीट लम्बी और ८९८५ फीट उँचाई पर स्थित है, पार करनी पड़ती है। इस सुरंग से ऊपर का मुंडा २६ मील है, जिसकी उंचाई ७२२८ फीट है। ऊपर का मुंडा से खाजीगुंड १० मील और यहाँ से खन्नाबल १२ मील है, जिसकी उँचाई ५,२३६ फीट है। खन्नाबल से अवन्तीपुर (इसको अवन्ति वर्मा ने बसाया था) १४ मील है, जिसकी उँचाई ५,२२३ फीट है। इसके बाद पाम्पूर होते हुए, सुन्दर दृश्यों का अवलोकन करते श्रीनगर पहुँचते हैं, जिसकी उँचाई ५,२०० फीट है। पठानकोट से श्रीनगर तक का कुल मार्ग २६७ मील लम्बा है। यह मार्ग कार-द्वारा तो एक दिन में और बस-द्वारा दो दिन में तय किया जा सकता है। इस यात्रा में पूर्ण आनन्द का उपयोग तभी किया जा सकता है जबकि कुछ समय बीच-बीच में ठहरते हुए यात्रा को पूर्ण किया जाय। ठहरने की सुविधा भी प्रत्येक स्थान पर मिल जाती है, क्योंकि हर स्थान पर डाक-बँगलों का प्रबन्ध है जहाँ यात्रियों के भोजनादि की भी व्यवस्था की जाती है, परन्तु यदि इस प्रकार डाक-बँगलों में ठहरना हो तो इसका प्रबन्ध कुछ दिन पूर्व ही किया जाता है। जम्मू, काश्मीर ट्रांस्पोर्ट आफ़िस से, जो पठानकोट में है, पूरी व्यवस्था हो जाती है। 'आल इण्डिया टूरिस्ट ब्यूरो' के दफ़्तर भारत के सब बड़े-बड़े नगरों में हैं। इनसे भी पूरा विवरण मिल सकता है। अब तो यह उपरोक्त मार्ग २० मील और कम हो जाने के कारण २६७ मील के स्थान पर २४७ मील ही रह गया है। दिल्ली से अमृतसर होते हुए कुछ ही घंटों में हवाई जहाज़ से श्रीनगर पहुँच सकते हैं।

जम्मू शहर—यह काश्मीर की शीतकालीन राजधानी है। यह पठानकोट से ६७ मील की दूरी पर है। यहाँ पर भी सदरे-रियासत के राजमहल, सरकारी दफ्तर, धर्मशालाएँ और अनेक होटल हैं, जिनसे यहाँ यात्रियों को पूर्ण सुविधाएँ मिल जाती हैं। रघुनाथ-मन्दिर तथा रणवीरेश्वर-देवस्थान विशेष दर्शनीय हैं। इन मन्दिरों में अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ, शालिग्राम तथा लिंग आदि लाखों की संख्या में स्थापित हैं। यहाँ सब मन्दिरों के कलश, स्वर्णनिर्मित हैं। अतः यह नगर 'मन्दिरों का नगर' के नाम से भी प्रसिद्ध है। नगर में आवागमन के लिए घोड़ा-गाड़ी, मोटरकार आदि सब वाहनों की सुविधा है। अतः घूम-फिरकर सब स्थानों को देखा जा सकता है।

त्रिकूट-क्षेत्र—इसे 'वैष्णवदेवी' के नाम से भी पुकारते हैं। काश्मीरी लोगों के लिए इससे बढ़कर और कोई दूसरा तीर्थस्थल नहीं है। यहाँ त्रिकूट नामक पर्वत में गुफा के अन्दर 'वैष्णवदेवी' की स्थापना है। यहाँ पहुँचने के लिए जम्मू से कटरा शहर तक मोटर-मार्ग है, जिसकी दूरी २६ मील है। पहाड़ी मार्ग से २६१८ फीट चढ़कर कटरा घाटी में से होते हुए पहले कटरा शहर में पहुँचना होता है। शहर में कई धर्मशालाएँ भी हैं। यहाँ से सब सामान साथ लेकर बाणगंगा नदी के किनारे-किनारे पहाड़ पर चढ़ना होता है। नदी में स्नान करके ढाई मील दूरी पर 'चरण-पादुका' नामक स्थल दर्शनीय है, जिसकी ऊँचाई ३३७८ फीट है। इस मन्दिर में देवी की खड़ाऊँ रखी है। इससे आगे ढाई मील पर एक ऊँचा स्थान 'भटकन बाडी' है जिसकी ऊँचाई ४६८४ फीट है। [illegible] को रखना होता है। य

के लोग इस क्षेत्र को जितना पवित्र मानते हैं, उससे अधिक अन्य किसी भी स्थान को नहीं मानते। प्रारम्भ में इस स्थान को देखकर फिर हिमालय को देखते हुए श्रीनगर जाने में बड़ा आनन्द आता है। पंजाब, उत्तरप्रदेश के लोग भी मेला (नवरात्र) के समय यहां आ जाते हैं।

बनिहाल सुरंग-मार्ग—जम्मू से पहाड़ों को पार करते हुए ऊधमपुर, कुड, बटोट, रामबन आदि स्थानों को देखते हुए बनिहाल पहुँचने के लिए ११८ मील का रास्ता तय करना होता है। यहां पर 'पीर-पंजाल' नामक पर्वत को काटकर जो सुरंग बनाई गई है, वह संसार भर में प्रसिद्ध है। यह ८६८५ फीट ऊँची है। इतनी अधिक उँचाई पर कोई दूसरा सुरंग-मार्ग इसके मुक़ाबले का नहीं है। कुड और बटोट अपने अच्छे जलवायु के लिए प्रसिद्ध है। यहां पर कई स्थानों का जलवायु तो इतना स्वास्थ्यप्रद है कि कुड के पास की उन सभी जगहों को लोग आरोग्य-दायक स्थान कहने लगे हैं, जहां पर रहने से अनेक बीमारियां दूर हो जाती हैं। आशय यह है कि जलवायु ही इतना गुणदायक है कि औषधोपचार की आवश्यकता ही नहीं होती। रामबन के पास ही झूलनेवाला पुल है, जिससे कि चिनाब नदी को पार किया जाता है। इन सब स्थानों पर खाने तथा ठहरने की पूर्ण व्यवस्था के साथ ही साथ डाक-तार की भी पूर्ण व्यवस्था है।

वेरीनाग—बनिहाल सुरंग को पार करते ही रम्य काश्मीर घाटी का स्वर्गीय दृश्य दृष्टिगोचर होता है। मुंडा (नीचे का) नामक स्थान से दो मील दूरी पर प्रसिद्ध 'वेरीनाग' बगीचा है, जो झेलम नदी का उद्गम-स्थल है। यहां पर कई शिला-लेख हैं और ज़मीन में से कल-कल निनाद करते कूदते हुए झेलम नदी का उद्गम होता है। इसके चारों ओर मन-भावन उपवन हैं तथा यहां पर 'टार्च फिशरी' होने के कारण अनेक व्यक्ति शिकार खेलने आते हैं। जाते समय ही यदि इस स्थान को देख लिया जाय तो फिर दुबारा यहां आने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। झेलम नदी का उद्गम स्थान यही है; ऊलर सरोवर नहीं, जैसा कि अधिकांश लोग कहते हैं।

अवंतीपुर के मन्दिर—वेरीनाग से आगे काजीकुंड और खन्नाबल होते हुए अवंतीपुर पहुँचने पर पुरातन मन्दिरों के दर्शन होते हैं। कुछ दूर और चलने से 'पांपुर' की केशर की खेती देखने को मिलती है। इसी रास्ते में खन्नाबल से मोटर बदलकर दूसरे रास्ते से अनन्तनाग, अच्छाबल और कोकरनाग-जैसे

प्रसिद्ध स्थानों को भी देखा जा सकता है जिनके बारे में अन्यत्र वर्णन है। यात्री अगर अमरनाथ-यात्रा को जानेवाले हों तो इस ओर आकर अनायास ही एक-दो दिन में वे सब स्थान देखे जा सकते हैं। अनन्तनाग में भी कई झरनें तथा मन्दिर देखने-योग्य हैं। यहीं से पहलगाँव होते हुए अमरनाथ के लिए मार्ग है और दूसरे मार्ग से अच्छावल और कोकरनाग को भी जा सकते हैं। परन्तु अधिकतर यात्री जम्मू से होकर सीधे श्रीनगर ही पहुँचते हैं। वहाँ से कार-द्वारा इन सब स्थानों को देख सकते हैं, जिसको जैसा अनुकूल हो वह वैसा ही रास्ता अपना सकता है।

श्रीनगर—श्रीनगर में किसी होटल या धर्मशाला में या तैरनेवाले मकान (हाउस बोट) में ठहरकर मुख्य स्थानों को देखा तथा घूमा जा सकता है। यहाँ सनातन धर्मशाला, आर्य धर्मशाला, सिक्ख धर्मशाला, दसनामी अखाड़ा, हजूरी बाग और दुर्गाना आदि किसी भी अनुकूल स्थान में ठहरा जा सकता है। यहाँ पौर्वात्य तथा पाश्चात्य दोनों ही प्रकार के अच्छे होटल भी हैं, परन्तु कुछ महँगे होने के कारण धनिकवर्ग ही इनका अधिक उपयोग कर सकते हैं। इनमें न्यू बाम्बे, गेस्ट हाउस, ग्रेंड होटल, टूरिस्ट होटल, काश्मीर हिन्दू होटल आदि प्रमुख होटल हैं। इन होटलों में शाकाहारी तथा मांसाहारी दोनों प्रकार की व्यवस्थाएँ हैं। परन्तु शाकाहारियों के लिए गुजराती होटल-जैसे भी एक-दो शुद्ध भोजनालय मिल जाते हैं। उपरोक्त सभी होटलों में प्रतिदिन रहने तथा खाने के लिए सात से पच्चीस रुपये तक देने पड़ते हैं। परन्तु पाश्चात्य पद्धति के होटलों में तो प्रति व्यक्ति लगभग २५ रुपये से ४५ रुपये प्रतिदिन के हिसाब से भी देना होता है।

मुख्य स्थानों के बारे में विशेष जानकारी प्राप्त हो जाती है। कई स्थानों को देखकर उसी दिन वापस आ जाना अधिक उचित होता है, क्योंकि वापसी टिकट में किराया कुछ कम पड़ता है। यहाँ मध्य तथा धनिकवर्ग दोनों ही के लिए सुविधाएँ मिल जाती हैं।

श्रीनगर के दर्शनीय स्थल—हिम-शिखरों से घिरा हुआ श्रीनगर (५२०० फीट) झेलम नदी के दोनों किनारों के साथ दूर तक फैला हुआ है। एक ओर हरि-पर्वत और दूसरी ओर शंकर-पर्वत रक्षकों की भाँति खड़े हैं। अगल-बगल में डल और अंचार सरोवर, कई नहरें, निशात, शालीमार, नसीम तथा चश्माशाही-जैसे अनेक सुन्दर उपवन सुशोभित हैं। इन स्थानों को शिकारे, मोटर आदि वाहनों में बैठकर देख सकते हैं; परन्तु इनके पूर्णानन्द का उपभोग स्वतः घूमकर देखने से ही प्राप्त हो सकता है। शहर में और भी अनेक दर्शनीय स्थल हैं जैसे म्यूज़ियम, परीमहल, रघुनाथ मंदिर, शंकरमठ-दुर्ग्याना, शंकराचार्य मन्दिर, जुम्मा मसजिद, हज़रतबल, शाही मुहम्मद, अशोक द्वारा निर्मित पंडरीनाथ-मन्दिर, सिल्क फैक्टरी, अमीरा क़दल ब्रिज, प्रताप कालेज, रूपलंका, टेकनिकल इन्स्टीट्यूट आदि। बाज़ार में शाल, पश्मीना, अल्वान पट्टू, थुलमा आदि कई प्रकार के ऊनी तथा रेशमी कपड़े, लकड़ी का सामान, पेपरमसी की कारीगरी भी देखने-योग्य वस्तुएँ मिलती हैं। इनके अतिरिक्त हरिपर्वत, किला, मन्दिर, गांधी पार्क, नेहरू पार्क, मानसबल, नगीना, अंचार-सरोवर भी देखने-योग्य स्थान हैं। परन्तु शारदा, खीरभवानी, अमरनाथ, माउंट महादेव, महाकाली, गंधारबल, कपाल-मोचन आदि स्थान काफ़ी दूर-दूर हैं, जो दूरी होने के कारण भी छोड़ने-योग्य नहीं हैं। अखिल भारतीय चर्खा संघ का खादी-ऊनी कपड़ों का केन्द्र भी दर्शनीय है। इसके अलावा गुलमर्ग, खिलनमर्ग, आलोपथर, ऊलर सरोवर, पहलगाँव, कोलाहाई, सोनमर्ग, युसमर्ग, नीलांग, लोहान आदि भी अनेक रमणीक स्थान देखने-योग्य हैं।

शंकर-पर्वत—शंकर-पर्वत का प्राकृतिक सौन्दर्य अनुपम है। ६५०० फीट ऊँचे इस पर्वत का जितना भी वर्णन किया जाय थोड़ा ही है। किंवदन्ती है कि श्री अरविन्द जी इस पर्वत पर पहुँचकर स्वयं ही बहुत दिनों अनन्त में व्याप्त रहे। इस बात की सत्यता में भी कोई सन्देह नहीं क्योंकि इसका तो मुझे भी आत्मानुभव है। मैं यहाँ महीनों तक रहता और साधना करता रहा। प्रतिदिन समाधि के उपरान्त मुझे मन्दिर में फल रखे मिलते थे। उन फलों को परमात्मा को अर्पण कर प्रसादरूप

मैं ग्रहण करता रहा। नित्य की संध्या तक मैं बड़ी शांति का अनुभव किया करता था। भगवान भास्कर संध्या-समय जब अस्ताचल की ओर गमन करते हैं तो अनेक पाश्चात्य पर्वतारोही उस दृश्य को सदैव के लिए अंकित करने के हेतु अपने अपने कैमरे लेकर व्यस्त हो जाते तथा इनके ही द्वारा मन्दिर में करीब १०-१५ रुपये प्रतिदिन कोष में आ जाते थे। एक अंग्रेज-अधिकारी ने एक सूचना के साथ एक पर्यटक-सूचना-पुस्तक (Visitors' Book) वहाँ रख दी थी जिसमें पर्यटक अपनी दान-राशि लिखकर रख जाते थे। वह सब मैं रात को शंकराचार्यजी की सेवा में अर्पण कर देता था। शंकरमठ की ही ओर से एक सेवक प्रतिदिन स्वच्छ, शीतल जल का एक घड़ा भरकर ले आता था जिसके द्वारा मैं शंकरजी की पूजा कर अपनी नित्य-साधना में निमग्न हो जाता था। इस मन्दिर का निर्माण अशोक के पुत्र जलौक राजा (२०० ई० पू०) ने कराया था।

यहाँ चारों ओर अत्यन्त रम्य दृश्यावली दृष्टिगोचर होती थी। वज्र की दीवार की भाँति चमकनेवाले हिम-शिखर तथा उनके नीचे देवदार के हरे-भरे वृक्षों के दूर-दूर तक फैले हुए वन तथा उनकी गोद में नाना प्रकार के पशु-पक्षी, फल-पुष्पों से सुशोभित उपवन, और उपवन की पूर्व की ओर से बलखाती, कल-कल ध्वनि करती, आती हुई झेलम वास्तव में अपूर्व दृश्य प्रस्तुत करती थी। उत्तर की ओर भी डल-सरोवर और उसके बीच में तैरनेवाले खेत, हाउस बोट और शिकारे तथा दूसरी ओर रेसकोर्स एव पोलो ग्राउण्ड तथा उसमें (दूर से दीखनेवाले) दौड़ते हुए घोड़े तो एक अजीब समाँ बाँध देते थे। सरिता के दोनों [illegible] पर पंक्तियों में खड़े [illegible] तथा आर-पार जाने के लिए

पानी पिया। तत्पश्चात् साधना के सम्बन्ध में उन्होंने अनेक प्रश्न पूछे जिनका मैंने अपनी सामर्थ्यानुसार समुचित उत्तर दे उनकी जिज्ञासा शान्त करने का प्रयत्न किया। ये महाशय बिड़लाजी के तत्कालीन सेक्रेटरी और मैनेजर थे। इनके नाम क्रमशः श्री भगीरथजी कनोड़िया तथा श्री सीतारामजी खेमका थे। इन्होंने अनेक बार मंदिर में जाकर मुझे अपने यहां आने के लिए आमंत्रित किया। उनके स्नेही स्वभाव से आकर्षित होकर मैं उनके 'रामबाग' के 'कुंजवन' (Boat house) में कुछ दिन के लिए रहने को चला गया। उनके साथ रहने के कारण अनेक बार उनके ही साथ कार तथा घोड़ों पर श्रीनगर के आसपास अनेक रम्य स्थलों को देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। रामबाग में मेरे लिए एक अलग तम्बू डाल दिया गया था। उसके चारों ओर खूब झाड़ियां थीं तथा नगर से दूर होने के कारण वहाँ किसी प्रकार का कोलाहल नहीं था। दिन भर मैं वहीं रहता और रात को हाउस-बोट में सोने चला जाता था। आश्रम के नियमानुसार नित्य दोनों समय प्रार्थना, भजन तथा गीतादि सामूहिक रूप से होते थे। उसी समय अनेक वेदान्त-तत्त्वों पर भी विवेचन होता था। वे सबलोग शाकाहारी ही थे, इसलिए भोजन सात्विक ही मिलता था। वहां पहुंचने के दो-तीन दिन बाद श्री जुगलकिशोर बिड़लाजी भी वहाँ पधारे। जिस समय मैं समाधि से उठकर तम्बू से बाहर आया तो मुझे उनके दर्शनों का अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने भी अनेक योग-सम्बन्धी प्रश्न किये जिनका मैंने समुचित उत्तर दिया। इनके साथ ही मैं श्रीनगर के कई हस्त-कौशल-केन्द्र देखने गया तथा इनके साथ ही आर्यसमाज के कुछ अन्य लोगों से भी भेंट हुई।

कुंजवन में निवास—रामबाग में बिड़ला पार्टी के लिए दो हाउस-बोट थे। उनमें एक का नाम कुंजवन था। इसमें हम रहते थे। इस हाउस-बोट का कुछ विस्तृत वर्णन कर रहा हूं। हमारे 'कुंजवन' में चार कमरे थे, जिनमें छः खाट, बारह कुर्सियाँ और चार मेजें थीं जो हमलोगों के उपयोग के लिए पर्याप्त थीं। इसमें दो बड़े शीशों की भी व्यवस्था थी। ऊपर खुली छत पर एक छोटा-सा सुन्दर बगीचा भी गमलों आदि की सहायता से बनाया हुआ था जिसमें कुर्सी आदि डालकर उस हरियाली का भी आनन्द लिया जा सकता था। एक परिवार के लायक सभी वस्तुएँ उसमें मौजूद थीं तथा रसोई बनाने के लिए भी अलग एक बोट का प्रबन्ध था। घूमने के लिए शिकारा भी साथ रहता था। इस घर में सबसे बड़ी आसानी यह थी कि इसे इच्छानुकूल किसी भी जगह ले जाया जा सकता था और रास्ते भर

निशात बाग—डल-सरोवर के पश्चात् हमारा शिकरा श्रीनगर से क़रीब तीन-चार मील दूरी कर निशात बाग के तट से जा लगा। इस उपवन में अनेक प्रकार के रंग-बिरंगे पुष्प खिले थे और बीच-बीच में चलते हुए फव्वारे अनायास ही अपनी ओर आकर्षित कर लेते थे। इस उपवन के मध्य एक नहर बहती है जो अनेक जलप्रपातों की जननीस्वरूपा है। यह दृश्य देखकर मैं तो एकदम ही आत्म-विस्मृत हो गया। इसमें उँचाई पर बने हुए हरबन नामक तालाब से पानी आ रहा था। रविवार के दिन अनेक नर-नारी जल-विहार करते हुए इस बाग में पहुँच जाते हैं। रंग-बिरंगे कपड़ों से सज्जित स्त्री-पुरुष एक अपूर्व दृश्य की सृष्टि कर देते हैं। इन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो नर-नारीरूपी रंग-बिरंगी तितलियाँ प्रफुल्ल मन से विचरण कर रही हों। यहाँ भोजन तथा चाय का भी प्रबन्ध है। इस बाग का सौन्दर्य पानकर हम निसर्ग-सौन्दर्य-लोभी आधे घंटे के पश्चात् शालीमार बाग की ओर अग्रसर हुए।

शालीमार बाग—निशात बाग से शिकरे में बैठ डल-सरोवर में किनारे-किनारे लगभग दो मील चलने के पश्चात् हम शालीमार बाग पहुँचे। कहा जाता है कि इस बाग में नूरजहाँ के लिए गुलाब का इत्र निकाला जाता था। इत्र निकालने की सामग्री आज भी दर्शकों के कौतूहल को शान्त करने के हेतु यहाँ रखी हुई है। यहाँ भी अनेक प्रकार के पुष्प अनुपम छटा दिखा रहे थे। यह सब देखने के पश्चात् हमारा शिकरा एक नहर के द्वारा अंचार-सरोवर में पहुँचा। इसमें जहाँ तक दृष्टि जा रही थी, कमल-दल ही दिखाई पड़ रहे थे। हम पुनः दूसरी नहर के द्वारा शहर के दूसरी ओर झेलम नदी में जा निकले। शहर में घूमने के लिए तथा शिकरों में इधर-उधर जाने के लिए, सरोवर तथा नदियों को मिलाने के हेतु अनेक नहरें हैं। झेलम नदी के बीच से होते हुए हम नगर के वैभव को निहारते हुए रामबाग की ओर चल पड़े। मार्ग में हमारे शिकरे को अनेक पुलों के नीचे से (श्रीनगर में नौ पुल हैं) गुजरना पड़ा। रात्रि के आठ बजे हम 'कुंजवन' में वापस पहुँच गये। इस नौका-विहार की स्मृति सदैव के लिए हृदय में अंकित हो गई जो समय के प्रभाव से धुँधली तो अवश्य पड़ सकती है, पर इसका मिटना असम्भव ही है। रात्रि में भी कुँजवन की छत पर बने बाग में बैठे हुए दिन भर के नौका-विहार की हृदय-हारी चर्चा चलती रही जो मानव-प्रकृति के अनुसार स्वाभाविक ही थी। इसी समय नित्य नियमानुसार आश्रम में प्रार्थना प्रारम्भ हो

गई। उस समय हृदय में यही विचार आ रहे थे कि इस सम्पूर्ण सौन्दर्य-सृष्टि कर्ता वही अनन्त, अनादि ईश्वर है जिसका जितना भी गान किया जाय कम क्योंकि उसे तो वेद भी नेति-नेति कह चुके हैं। काश्मीर बाहर पर्यटक बोट ८१८ तथा नौका-विहार के आनन्द से वंचित रहना पसन्द नहीं करते। आजकल तो बोट-हाउस दो-दो मंज़िल के बड़े-बड़े मकानों के समान बन गये हैं जिनमें एक ... २०-२० आदमी तक रह सकते हैं इनमें इंजिन भी लगे रहते हैं जिससे ... पूर्वक इन्हें कहीं भी ले जाया जा सकता है।

गुलमर्ग—एक दिन प्रातःकाल नित्य-कर्म से निवृत्त होकर आया देखा कि पार्टी के सदस्य कहीं जाने की तैयारी में व्यस्त हैं और कई ... बाहर खड़ी प्रतीक्षा कर रही थीं। इतने में ही मनोरथजी ने आकर एक का बना ओवरकोट मुझे पहना दिया जिससे मुझे इतना तो आभास हो गया किसी ठंडे स्थान पर जाने की तैयारी है। परन्तु निश्चित रूप से यह पता न पाया कि कहाँ जाना है। अतः मन में उत्सुकता लिये कारों द्वारा हमारी प्रारम्भ हुई और हम लोग सफेदा के पेड़ों के बीच से होते हुए बारामूला की ओर एकदम बाईं ओर मुड़े तो समझ में आया कि हमारा गन्तव्य-स्थान गुलमर्ग है श्रीनगर से टानमर्ग तक आकर कारों को खड़ी हो जाना पड़ा क्योंकि हमें का मार्ग घोड़ों-द्वारा पार करना था। अतः कारों से उतरते ही हमें यात्रा के लि तैयार घोड़े मिले, जिन पर सवार हो हम कठिन चढ़ाई पारकर एक हरे-भरे मै में आ पहुँचे जिसमें कुछ अंग्रेज पोलो खेल रहे थे। वहाँ से हम अपने पूर्व-निर्

चार चाँद लगा रहे थे। यहाँ ठहरने के लिए होटल तथा बंगलों का भी प्रबन्ध है। साधारण वर्ग के लिए भी सिक्खों की धर्मशाला तथा महादेव का मन्दिर था। परन्तु पाकिस्तानियों ने विभाजन के समय जाति-द्वेष में पड़कर यह सब नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। यहाँ के लोगों की दैनिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए एक छोटा-सा बाज़ार भी है। यहाँ आने का समय जुलाई से नवम्बर तक रहता है। जून तक तो यहाँ इतनी अधिक बर्फ पड़ी रहती है कि मकानों से भी बर्फ काटकर बाहर निकलना पड़ता है। ठहरने और खाने-पीने के लिए कई होटल भी हैं। (जीप जाती है)

खिलनमर्ग—गुलमर्ग देखने के पश्चात् दो मील दूर १०५०० फीट उँचाई पर स्थित खिलनमर्ग पहुँचे। यहाँ कोई गाँव आदि नहीं था। यहाँ केवल बर्फ पर स्केटिंग करने के लिए उपयुक्त स्थान है। श्री भगीरथजी और उनकी पत्नी, बच्चों सहित इस खेल में सम्मिलित हो गये। श्री जुगलकिशोर बिड़ला ने भी दो-एक बार बर्फ पर फिसलने के असफल प्रयत्न किए। हमसब तो काफ़ी ऊँची-ऊँची जगहों पर चढ़कर लेट जाते थे और फिर लेटे-लेटे ही फिसल कर बर्फ पर फिसलने का आनन्द ले रहे थे। पहाड़ के ऊपर इतनी अधिक बर्फ होने पर भी कहीं-कहीं हरे-हरे घास के मैदान तथा देवदार के वृक्ष नज़र आ रहे थे। यहाँ से अफरवत पर्वत जो कि १४,५०० फीट ऊँचा है, अत्यन्त ही सुन्दर प्रतीत होता है। इसके ऊपर एक जमे हुए बर्फ का सरोवर भी है। रात्रि होने से पूर्व ही हम सब घर में पहुँचकर अँगीठी जला उसके इर्द-गिर्द बैठ गये, किन्तु सर्दी की अधिकता के कारण उस रात हम लोग सोने में असमर्थ रहे।

आलो पत्थर—दूसरे दिन सुबह पार्टी के अन्य सब सदस्य तो श्रीनगर वापस चले गये, किन्तु एक अन्य सदस्य श्री सीताराम तथा मैं दो घोड़ों पर सवार हो आलो पत्थर (१४,५०० फीट) की ओर रवाना हो गये। पर्वत पर चढ़ते समय पीछे देखने पर गुलमर्ग और खिलनमर्ग का अत्यन्त ही चित्ताकर्षक दृश्य दृष्टिगोचर होता था। १४,००० फीट की उँचाई पर चढ़ते-चढ़ते घोड़े थक गये। यहाँ आकर बर्फ भी अधिक मिली; परन्तु फिर भी चलते ही रहे और इस हिम-मंडित स्थान के मध्य में स्थित सरोवर के तट पर पहुँच गये। इस हिम-शिखरों से घिरी हुई छोटी-सी झील में तैरते हुए हिमखंड अत्यन्त ही सुन्दर लग रहे थे। जल भी एक-दम स्वच्छ तथा शीतल था अतः अनायास ही स्नान की इच्छा प्रबल हुई। मैंने

कपड़े उतारकर लोटे से स्नान करना आरम्भ कर दिया। इस शीतल पानी स्नान करते देख एक अंग्रेज पर्यटक को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने अपने कैमरे से ले लिया। वहाँ से हम एक नजदीक मार्ग से गुलमर्ग गए। गुलमर्ग से हम टानमर्ग आ गये। वहाँ हमें कार खड़ी हुई मिली हम वापस श्रीनगर में अपने निवास-स्थान 'कुँजवन' में पहुँच गये।

श्री शारदा-यात्रा—काश्मीर में पहुँचे हुए अभी दो माह भी नहीं हुए एक दिन शंकर-पर्वत के नीचे दुर्गान में श्री शंकराचार्यजी के पास स सज्जन आये। उस समय मैं उन्हीं के पास बैठा हुआ उनसे कुछ बातचीत क था। आगन्तुक अपने उस भाई को जो मुसलमान हो गया था, हिन्दू धर्म में कराना चाहते थे। अतः स्वामीजी ने उनकी इच्छा की पूर्ति की। फिर उन ने मठ के हेतु कुछ दक्षिणा दी। उनसे पूछने पर ज्ञात हुआ कि ये सब लोग क्षेत्र के पास ही स्थित खरीग्राम के निवासी थे जो गिलगित के मार्ग में है। मैंने भी श्री शंकराचार्यजी से उनके साथ शारदा-यात्रा करने का निवेदन इस पर उन्होंने मेरी यात्रा का सारा प्रबन्ध करा दिया। तब तक विभ काश्मीर नहीं आई थी। यह उससे पूर्व की यात्रा का वर्णन है।

मनोपोरा—श्रीनगर से सोपुर तक मोटर से पहुँच गये फिर आगे सरोवर को एक तरफ छोड़कर सन्तरामजी के साथ चलते-चलते मनोपोरा

भोजन-सामग्री का प्रवन्ध किया। संध्या को वावरा ग्राम में पहुँचकर हमें मुसलमान परिवार का ही आतिथ्य ग्रहण करना पड़ा। उन्होंने हमारे लिए सारी सामग्री का प्रवन्ध किया जिससे हमने स्वयं ही भोजन वनाया।

पैसा न जाननेवाली जनता—सन् १९२७ में इस यात्रा पर गया था। उस समय वहाँ वस्तु-विनिमय-पद्धति ही प्रचलित थी। यहाँ से आगे मुझे अकेले ही जाना पड़ा। अतः मैं कई ग्रामों से गुज़रता हुआ जा रहा था कि एक स्थान पर क्षुधा का अनुभव हुआ। ग्रामीणों से कहकर मैंने फल मँगाये तो वे टोकरियों में रखकर अखरोट, वादाम आदि ले आये। वदले में मैंने उन्हें केवल एक चवन्नी दी जिसे वे लेकर आपस में एक-दूसरे को वह चवन्नी दिखाकर हँसने लगे और वाद में वह मेरे पास ही फेंक दी। इसका कारण पूछने पर उन्होंने वताया कि यहाँ पैसे से व्यापार नहीं चलता; अपितु वस्तु-विनिमय की प्रथा चलित है। यहाँ के जीवन का अध्ययन करने पर मुझे पता चला कि वे लोग वड़े सरलहृदय व्यक्ति हैं जवकि हम पैसे को ही सर्वस्व मानकर कृत्रिम जीवन विता रहे हैं। इनके प्राकृतिक आदर्श जीवन के सम्मुख मुझे अपने लोगों का जीवन अत्यन्त कृत्रिम प्रतीत हुआ। एक व्यक्ति ने तो मेरी छपी हुई खादी की शाल ले ली जिसे देखकर उन्हें वड़ा ही आश्चर्य हुआ। वे उसकी छपाई पर हाथ फेर-फेरकर उसकी वुनाई पर विस्मित होने लगे और उसके वदले में मुझे अपनी काश्मीरी शाल देने लगे। तव मैंने वताया कि मेरी शाल तो केवल ढाई रुपये की है और तुम्हारी तीस रुपये की, इसलिए मैं यह शाल नहीं वदलूंगा। वहाँ की जैसी विशुद्ध प्रकृति है वैसे ही उस प्रकृति में पले विशुद्ध सरलहृदय वहाँ के निवासी भी हैं।

रुद्रवन—वावरा से चलकर दूसरे दिन मैं रुद्रवन में जेठालाल की दूकान में पहुंचा। उस समय लालाजी हजामत वनवा रहे थे, उनका सिर तो एकदम मुंड़ा हुआ था; पर उन्होंने दाढ़ी वड़े यत्न के साथ रखी हुई थी, क्योंकि यहाँ यह मुस्लिम-संस्कार अत्यन्त प्रवल है। यहाँ मैं एक दिन ठहरा। यह दुकान एकदम जंगल में है। आस-पास एक दो मकान हैं। वहुत दूर-दूर से लोग यहाँ से सामान खरीदकर ले जाते हैं। यहाँ मुझे एक संन्यासी मिल गया जिनके संग दूसरे दिन मैं आगे के लिए चल पड़ा। दूसरे दिन वीसों मील आवादी-विहीन पर्वतीय जंगलों में होकर यात्रा करनी पड़ी। मार्ग में कोई गाँव आदि भी नहीं था। रास्ते में कोई गाँव न होने के कारण मार्ग में मैंने तथा साथी-संन्यासी ने मक्की की रोटी वनाकर क्षुधा शान्त की।

मार्ग निश्चित न होने के कारण बर्फ में से मार्ग निकालने में कई स्थानों पर कठिनाई का सामना करना पड़ा। श्याम अनुभव होने पर बर्फ में ही तु करनी पड़ी। सन्ध्या तक निरन्तर चलने पर भी मार्ग में कोई ग्राम नहीं धीरे-धीरे अब अँधेरा भी होने लगा था। पर्वतों की रम्य सम्पदा आनन्दमग्न चले जा रहे थे कि एकाएक बहुत-से घोड़े तथा खच्चरों के आवाज़ सुनाई दी, जिसे सुनकर हम अनायास ही घबरा गये। सा उन पर के सवार सब व्यक्ति उतर गये और हमें रोककर बोले कि ईश्वर रक्षा कर दी। इस जंगल में शेर, चीता, भालू आदि हिंसक जानवर अभी आगे सात-आठ मील तक कोई गाँव नहीं है। यह कहते हुए घोड़ों पर का सारा सामान तथा जीन वगैरह उतार दी और जंगल लकड़ियाँ लाकर चारों ओर मण्डलाकार आग जला दी। आग के में हमसब आदमी तथा घोड़े, खच्चर आदि हो गये ताकि हिंसक वन्यपशु हम पर आक्रमण कर हमें हानि न पहुँचा सकें के मध्य ही सबने रसोई बनाई तथा घोड़ों को भी दाना-पानी सो गये। सारी रात शेर आदि जानवरों की भयंकर आव

रात में नींद ठीक प्रकार से न

कृष्णगंगा—इस भाग में जो प्राकृतिक सौन्दर्य है वह हिमालय के अन्य किसी भी भाग में मुझे देखने को नहीं मिला। चारों ओर सुन्दर पर्वतों पर हरे-भरे देवदार के वृक्षों के बीच से बहती हुई कृष्णगंगा नदी अत्यन्त ही मनोहर दृश्य की सृष्टि कर रही थी। काश्मीर के वनों में तरह-तरह के फलों को खरीग्राम पहुँचकर हमलोगों ने श्री सन्तराम के घर आतिथ्य ग्रहण किया। यहाँ से शारदा क्षेत्र दो ही मील के अन्तर पर था। दो दिन पश्चात् यहाँ से शारदा क्षेत्र के लिए चल पड़े। बीच-बीच में कई वर्फ की चट्टानें पार करनी पड़ीं। बाद में कृष्णगंगा का रस्सी का पुल पार करना पड़ा जो मेरे लिए जीवन-मरण का प्रश्न बन गया। केवल चार घास की रस्सियों द्वारा ही यह पुल बनाया हुआ था जो चलने पर अथवा तेज हवा से झूले की तरह झूलता था। क़रीब एक फर्लांग इस पुल को पार करने के बाद शारदा-मन्दिर पहुँचे। इस मन्दिर में कोई मूर्ति नहीं थी। चारों ओर लकड़ी के खुले चबूतरे ठहरने के लिए बने थे। यह स्थल शारदा, नारदा तथा कृष्णगंगा नामक तीनों नदियों का संगम-स्थल है।

शारदा-क्षेत्र-दर्शन—यह मन्दिर पांडवों के समय का बताया जाता है। मुसलमानों के भारत में आने से पूर्व यह सम्पूर्ण मन्दिर मणि-माणिक्यों से जड़ा हुआ था। वर्ष में छः माह यह भी हिम से ढका रहता है। इसीलिए यह अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। मैं जब वहाँ पहुँचा तो स्वामी तपोवनजी योगी जो उत्तर काशी के रहनेवाले थे, योगाभ्यास में लीन थे। इनके परिचय से मुझे साधना करने की कई विधियाँ ज्ञात हुई। तीन दिन तक हम इस मन्दिर में ठहरे। वहाँ पुजारी ने हमारा सत्कार किया। मन्दिर से थोड़े ही अन्तर पर अमृत कुंड तथा शाण्डिल्य गुफा है जहाँ शाण्डिल्य ऋषि ने तपस्या की थी।

इस क्षेत्र के सम्बन्ध में किंवदन्ती प्रचलित है कि श्री शंकराचार्यजी जब शारदा-क्षेत्र पहुँचे तो वहाँ एक मनोहर मंडप था। उसके चारों ओर चार द्वार थे। मंडप के मध्य एक रत्न-जड़ित सिंहासन शोभायमान था। पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर से आये विद्वान् लोग अपनी विद्वत्ता प्रकट कर रहे थे; किन्तु दक्षिण द्वार अभी तक खुला नहीं था, अर्थात् दक्षिण से अभी कोई विद्वान् नहीं आया था। वहाँ पर आसीन व्यक्ति जब गंगा-स्नान कर रहे थे तो एक आकाशवाणी हुई कि दक्षिण से एक विद्वान् आ रहे हैं और उसी क्षण शारदा-क्षेत्र में शंकराचार्य जी ने प्रवेश किया। उनके प्रवेश करते ही दक्षिण-द्वार खुल गया। परन्तु इनके मंडप के अन्दर प्रवेश

ारते समय वहाँ के पंडितों ने उन्हें रोक दिया और कहा कि आप विजयी होकर ही यहाँ पर बैठ सकेंगे, अन्यथा नहीं। अतः विवाद के लिए तैयार हो गये और उन्होंने वाद-विवाद में अन्य पराजित कर दिया। इसी समय श्री शारदाजी की एक देववाणी निस्सन्देह सर्वज्ञ तो हो; किन्तु परकाय-प्रवेश करके भी वाद-ि अतः मेरे सिंहासन पर आरूढ़ होने के तुम अधिकारी नहीं।" यह चार्यजी ने कहा—"इस जन्म में इस शरीर से तो कोई पाप नहीं प्रवेश में किया गया विषय या पाप इस शरीर से भिन्न है।" इस में शारदा को सन्तुष्ट करने के पश्चात् वह उस रत्न-सिंहासन पर गये और उन्होंने सिंहासनारूढ़ हो दिग्विजय की। अपने शिष्य को पर बैठाकर शंकराचार्यजी बदरिकाश्रम लौटे, जहाँ उन्होंने बदर मन्दिर की स्थापना की। शंकराचार्य का अन्तिम समय उत्तराखंड में उन्होंने केदारनाथ में मुक्ति पाई, जहाँ उनकी समाधि अभी तक बनी किन्तु शारदादेवी की प्रतिमा कहाँ गई, यह अभी तक ज्ञात न हो सका। क्षेत्र के दर्शन कर, क्षीरभवानी, गंधारबल तथा अचाल सरोवर को श्रीनगर वापस पहुँच गया।

श्री अमरनाथ की यात्रा

अनन्तनाग—'

हो आयें। अतः हम सब कार में बैठ गये और अनन्तनाग पहुँचे। यहाँ तक वही पुराना पहले का देखा हुआ रास्ता था। आगे पहाड़ों तथा नदी का सौन्दर्य-पान करते हुए एक बड़े से गाँव में जा पहुँचे। यहाँ पर जमीन फोड़कर आनेवाले कई चश्मे थे, इनके ऊपर एक मन्दिर भी था। इसीलिए इस स्थान को अनन्तनाग के नाम की प्राप्ति हुई। वहाँ पर उस समय भी एक आने में चार सेब मिलते थे। सुनकर आप अवाक् रह जायँगे, पर वहाँ तो एक सेब ही क्या अन्य सब फल भी इसी प्रकार सस्ते थे।

अच्छाबल—यहाँ से दस मील पर ही नूरजहाँ का बनाया हुआ एक सुन्दर उद्यान है जिसे 'अच्छाबल' का नाम मिल गया है। यहाँ भी जमीन मे से अनेक चश्मे स्रवित होते हैं तथा कुछ फ़व्वारे भी बनाये हुए हैं। प्रत्येक ऋतु में इस उद्यान में फूलों की रंग-बिरंगी छटा फैली रहती है। यहाँ पर भी टार्चफ़िशरी हैं, इसलिए शिकार खेलने अनेक लोग आते रहते हैं। यहाँ ठहरने के लिए डाक-बँगले का भी प्रबन्ध है। यहाँ से कोकरनाग भी समीप ही है जिसका जल खनिज-सम्पत्ति से परिपूर्ण होने के कारण रोग-निवारक भी है। अनेक रोगी देश-देशान्तरों से यहाँ आरोग्य-लाभ के लिए भी आते हैं। यहाँ से पैदल के रास्ते से भी बेरीनाग (जो लगभग दस मील है) जा सकते हैं। (श्रीनगर से 'अच्छाबल' ४० मील है। आगे लगभग १० मील पर कोकरनाग है।)

मार्तण्ड (मटन)—वापस अनन्तनाग पहुँचकर उत्तर की ओर कुछ दूरी पर भवन के समीप ही मार्तण्ड नामक प्रसिद्ध मंदिर है, जिसे आठवीं शताब्दी में राजा ललितादित्य ने बनवाया था। यहाँ का कला-कौशल दर्शनीय है। किन्तु अब तो यहाँ खंडहर मात्र ही रह गए हैं जो अपने प्राचीन वैभव के प्रतीक हैं। यहीं मटन नामक ग्राम में अमरनाथ के पंडे रहते हैं।

पहलगाँव—गुलमर्ग के बाद वायु-सेवन की दृष्टि से पहलगाँव का स्थान आता है। यहाँ ठहरने के लिए सुन्दर होटल व तम्बू आदि की श्रेष्ठ व्यवस्था है। यह स्थान श्रीनगर से ६० मील की दूरी पर ७००० फीट उँचाई पर स्थित है। इस घाटी का नाम लिडार घाटी है। शेषनाग और लिड्डर दो नदियों के संगम पर यह स्थित है। लिड्डर वर्त और तरसर का दृश्य काश्मीर में प्रसिद्ध है। यहाँ पर शेषनाग नदी भी आके लिड्डर नदी से मिलती है। जलवायु की दृष्टि से स्वास्थ्यप्रद स्थान होने के कारण बहुत-से लोग यहाँ आते रहते हैं। भगीरथजी और उनके परिवार के लोग केवल एक रात तम्बू में ठहरकर अत्यधिक ठंड न सह सकने के कारण दूसरे ही दिन

वापस लौट गये। यहाँ से २८ मील के अन्तर पर अमरनाथ की गुफा है। यद्यपि अमरनाथ यात्रा का अनुकूल समय एक माह पश्चात् था; किन्तु मैंने साहस से कार्य लिया और उसी समय यात्रा पर जाना निश्चित किया। अतः भागीरथजी ने मुझे यात्रा के लिए तत्पर देख मेरी यात्रा के लिए घोड़े तथा साथ ही एक गाइड का भी प्रबन्ध कर दिया। घोड़ेवाला स्वयं गाइड भी था। उसका नाम पं० सुलतान था। दूसरे दिन प्रातः हमने अमरनाथ के लिए प्रस्थान किया। उस दिन आषाढ़ मास की शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी थी। लगभग दो मील चलने के पश्चात् मैं घोड़े पर सवार हो गया। एक घने वन को पारकर हम शेषनाग नदी के किनारे-किनारे चलकर चन्दनवाड़ी पहुँच गये। यहाँ तक मोटर सड़क बन गई है। आजकल तो यहाँ पर ठहरने के लिए कई सुविधाजनक होटलों का प्रबन्ध हो गया है। परन्तु पहले तो यहाँ तम्बुओं में ही आश्रय लेना होता था। पहलगाँव से मिद्दासन, कोलाहु य ग्लेशियर २० मील की दूरी पर देखने-योग्य स्थान है। साथ ही तरसर को भी अवश्य देखना चाहिए। पहलगाँव से चन्दनवाडी तक मोटर-मार्ग बन गया है।

चन्दनवाड़ी—यहाँ दोनों पर्वतों के मध्य हिम विस्तृत रूप से फैला हुआ था। उस हिम के नीचे से शेषनाग नदी नैसर्गिक पुल बनाकर अत्यन्त तीव्र गति से बहती है। पहलगाँव आनेवाले पर्यटक इस पुल को अवश्य देखने आते हैं। यहाँ से पिस्सू घाटी तथा अस्थान मर्ग के मार्ग अलग-अलग हो जाते है। अमरनाथ के लिए मुझे मुख्य मार्ग से न लेजाकर प० सुलतान मुझे एक (पगडडी) से ले गया, जहाँ मझे कई नवीन व हुए। इस मार्ग मे ठहरने के लिए कोई प्रबन्ध नही है। मैं

बीच एक लकड़ी गाड़कर उसके ऊपर छोटे-छोटे चद्दर के टुकड़े फैला दिये, जिससे एक छोटी-सी कुटिया तैयार हो गई। उस समय हम दोनों ही सर्दी से ठिठुर रहे थे। अतः सुलतान तो मेरी आज्ञा लेकर बकरीवालों के तम्बू में सोने चला गया। उस समय हिमपात तीव्र गति से हो रहा था। रात-भर हिमपात के कारण लगभग दो फीट ऊँची बर्फ वहाँ जम गई। मेरे ऊपर तनी हुई चादर अब कुछ ढीली पड़ने लगी थी; पर उस सर्दी में एकमात्र सहारा वह काँगड़ी ही थी, जिसे सुलतान मुझे दे गया था। मैंने उसे मन-ही-मन धन्यवाद दिया। उस समय तो एकमात्र यही विचार मन में आ रहा था कि आज यदि यह काँगड़ी न होती, अपनी प्राण-रक्षा असम्भव थी। ऊपर जो चादर तनी हुई थी उसमें छोटे-छोटे छेद होने के कारण चन्द्रमा की किरणें छन-छनकर मेरे ऊपर पड़ रही थीं सो प्रतीत हो रहा था कि मानो चन्द्रमा भी अपनी किरणों के मिस मेरी शोचनीय अवस्था देख हँस रहा है। सारी रात निद्रा के अभाव में भगवत्-स्मरण में ही व्यतीत हुई।

इस प्रकार हिम-कुटीर में पूरी रात्रि व्यतीतकर प्रातः होते ही उस प्राण-रक्षक को धन्यवाद दिया जिसकी कृपा से पुनर्जीवन की प्राप्ति हुई थी। अब तक पं० सुलतान भी आ चुका था। आते ही उसने पुकारा, "स्वामीजी ज़िन्दा हो?" मैंने प्रत्युत्तर में कहा—"अल्लाह की मेहरबानी है।" किन्तु कुटिया से बाहर निकल आने में मैं असमर्थ था, क्योंकि रात-भर हिमपात होने के कारण वह कुटीर मेरी जीवित समाधि बन गई थी। सुलतान ने बर्फ और सामने के तीन-चार पत्थर हटाकर मेरे बाहर निकलने-योग्य एक छोटा-सा रास्ता बना दिया, किन्तु इस द्वार को मैं पेट के बल ही लेटकर पार कर सकता था। अतः मैं सर्प की-सी गति से बाहर तक रेंग-रेंगकर आया। समाधि भंग होने के पश्चात् मैंने उस कुटीर की ओर पुनः देखा तो प्रतीत हुआ मानो जीवित समाधि ताजमहल के रूप में परिवर्तित हो गई, क्योंकि तब मैं एक-एक क्षण मृत्यु का आवाहन करता हुआ कैदी न होकर स्वतन्त्र दर्शकमात्र हो गया था। उस समाधि से बाहर आने में पं० सुलतान ने जो सहायता दी उसके लिए मैंने उसे हार्दिक धन्यवाद दिया और ईश्वर के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना तो स्वाभाविक ही था। इस समय विचार आया कि ताजमहल के कुशल शिल्पी ने शायद हिम के ऐसे अनेक मकबरे देखे होंगे तभी वह ताजमहल-जैसा सुन्दर मकबरा बना सका, किन्तु जो जीवित उस कब्र के बाहर आ गया उसके लिए बने ताजमहल का क्या महत्त्व?

हथियार नाग (१३,५०० फ़ीट)—हिम-कुटीर के बाहर ही पं० सुलतान ने मेरे लिए घास की चप्पलें लाकर रखी हुई थीं जिन्हें वह तम्बूवालों से माँग लाया था। अब मुझे उन्हें पहनकर हिम-शिखर पर चढ़ना था जिसका नाम दवासकट घाट है जिस पर फिसलनेवाली नर्म वर्फ जमी हुई थी। बर्फ में चलने में अनभ्यस्त व्यक्ति इस पर कुछ ही उँचाई पर चढ़ पाते हैं और फिर फिसलकर नीचे ही आ जाते हैं। अतः मेरे साथ भी ऐसा होना स्वाभाविक था। यह चढ़ाई मुझे अत्यन्त ही कठिन मालूम हो रही थी। इसलिए सुलतान ने मुझे एक लाठी दी और बताया कि हिम में किस प्रकार लकड़ी के सहारे पैर मार-मारकर खच्चर की भाँति टेढ़ा-मेढ़ा चढ़ा जाता है। इस प्रकार ५-६ मील की चढ़ाई ३-४ घंटे में समाप्त कर हथियारनाग पहुँच गये। यहाँ आकर बहुत थकान हो चुकी थी। अतः विश्राम के लिए रुक गये। इस स्थान का नाम हथियारनाग इसलिए पड़ा कि यहाँ पर बादल कभी तो जम जाता है, कभी छँट जाता है और कभी-कभी तो कई दिन तक घिरा रहता है। उस समय यहाँ मार्ग नहीं दीखता जिसके फलस्वरूप अनेक यात्री यहाँ पर बलि चढ़ चुके हैं। यहाँ कुछ मैदान होने के कारण मैं घोड़े पर चढ़कर ही यात्रा कर रहा था कि एकाएक घोड़ा कमर तक बर्फ में धँस गया। यह देख सुलतान दौड़कर घोड़े के सामने आया और फिर मुझे उतार लिया घोड़े के अगले पैरों के आगे की वर्फ काटकर उसे पीछे से हाँका जिससे घोड़ा झटके के साथ वर्फ से बाहर निकल आया। इस कठिन मार्ग पर दो-तीन मील चलने पर पंच-तरणी स्थान में पहुँचे, जहाँ पर शेषनाग और भोजपाल दोनों पर्वतों के मुख्य मार्ग आकर मिलते हैं। पंचतरणी से आगे जाकर दोनों मार्ग एक ही हो जाते हैं।

नदी पहलगाँव की ओर बहती है। श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को जिस समय अमरनाथ की यात्रा चलती है उस समय यात्रियों को तम्बू, कांगड़ी, लकड़ी छड़ी तथा खाने की सामग्री साथ ही मिल जाती है। शुक्ल पक्ष होने के कारण चारों ओर चाँदनी छिटकी रहती है, जिससे रात्रि में दृश्य अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होते हैं, जो केवल देखकर ही अनुभव किया जा सकता है।

पंचतरणी (१२,५०० फीट)—शेपनाग से आठ मील चलकर यात्री पंचतरणी पहुँच जाते हैं। प्रारम्भ में दो मील की कठिन चढ़ाई चढ़नी पड़ती है। इसका नाम वावुजान है। यहाँ पर हिम के तूफान चलते हैं। अनेक यात्रियों को श्वासावरोध हो जाने के कारण यहाँ की चढ़ाई पर चलना असम्भव मालूम होने लगता है, क्योंकि यहाँ पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन (प्राणवायु) नहीं मिल पाती। इस चढ़ाई के पश्चात् लगभग तीन मील की उतराई पार करने के वाद पंचतरणी पहुँचते हैं। पंचतरणी में कुछ हरी घास थी। इसलिए घोड़े को वहीं छोड़कर आगे के कठिन मार्ग पर पैदल ही चलना आरम्भ किया। यहाँ पर ठहरने के लिए किसी स्थान का प्रवन्ध नहीं। केवल चारों ओर दीवारें वनी हैं जिस पर वाटर प्रूफ (त्रिपाल) डालकर तम्बू वनाये जा सकते हैं। यहाँ चारों ओर हिमाच्छादित शिखर खड़े हैं, जिनके मध्य से पाँच नदियाँ वहकर आती हैं। इसी से इस स्थान का नाम पंचतरणी पड़ा है। यहाँ का यह दृश्य अत्यन्त ही मन-भावन है। यहाँ पाँचों नदियाँ संगम पर एकाकार हो आगे को वह जाती हैं। नदी के किनारे छोटे-छोटे मैदान भी हैं।

अमरनाथ की गुफा—पंचतरणी से पाँच मील का कठिन रास्ता पारकर हम एक वर्फीले पहाड़ पर पहुँचे। यहीं पर अमरनाथ की गुफा थी। अमरगंगा नदी के किनारे-किनारे दो पर्वतों के वीच स्थित एक सँकरी घाटी से जाना होता है। ज़रा-सा पाँव चूक जाने से अमरगंगा में अमर हो जाने का भय सदैव सतर्क वनाये रखता है! नीचे देखने से अनेक हिम-नदियाँ दिखाई पड़ती हैं। कई स्थानों पर तो इनका पानी उछल-उछलकर ऊपर भी आ जाता है। पर्वत की ऊँचाई तो १८,००० फीट है; किन्तु गुफा १३,००० फीट की ही उँचाई पर स्थित है। गुफा की लम्बाई ५५ फीट, चौड़ाई ५० फीट तथा उँचाई आरम्भ में तो १५ फीट है; किन्तु जैसे-जैसे अन्दर जाओ उँचाई कम होती चली जाती है। पर्वत पर हिम पिघलने से गुफा के अन्दर कई स्थानों पर वूंद-वूंद पानी टपकता है

जो गुफा में जम जाता है। इस गुफा में पार्वती, गणपति तथा अमरनाथ नामक तीन लिंग प्रतिष्ठित हैं। ये लिंग पूर्णिमा को पूर्ण हो जाते हैं और अमावस्या को पिघल जाते हैं। इसलिए इस यात्रा का महत्त्व इतना अधिक है। इस प्रकृति द्वारा निर्मित लिंग की चमत्कारिकता देखकर ऐसा कौन व्यक्ति है जो आश्चर्याभिभूत नहीं हो जायगा। अतः यही सोचकर जिज्ञासा का समाधान करना होता है कि उस परम पिता परमात्मा की महिमा अपरम्पार है। अतः वहाँ इसकी महिमा का ज्ञान रखते होंगे।

वहाँ गंगा-स्नान कर अमरनाथ के दर्शन किये। तत्पश्चात् भोजन किया जैसा कि लगभग सभी यात्री वहाँ जाने पर करते हैं। मैं जब गुफा के द्वार पर पहुँचा तो वहाँ पर एक योगी बैठे तपस्या कर रहे थे। उन्होंने मुझे वहाँ से सम्बन्धित अनेक बातें बताईं और आदर-सत्कार भी किया। इनका चेहरा देखने से प्रतीत होता था कि यह कोई महान् साधक हैं। उनका सारा प्रबन्ध महाराजा जोधपुर की ओर से होता था। उन्होंने मुझे वहाँ पर ठहरने के लिए निमंत्रित किया, किन्तु मैं अवकाश न रहने के कारण इस निमन्त्रण को स्वीकार न कर सका। लौटने का सबसे सुविधाजनक मार्ग बाबुजान, शेषनाग तथा चन्दनवाड़ी होते हुए ही है। यहाँ से सोनमर्ग तथा लेह के लिए भी मार्ग है; किन्तु हिम-पर्वत को पार करके ही यहाँ पहुँचा जा सकता है जो केवल साहसी व्यक्तियों का ही कार्य है। मैं पुनः उसी स्थल पर पहुँचा जहाँ यात्रा को जाते समय 'ताजमहल' का निर्माण किया था। हथियारनाग से ही इस कठिन मार्ग का आरम्भ होता है। जाते समय जो कठिन चढ़ाई चढ़नी पड़ी थी उसका उतरना तो और भी भयंकर प्रतीत हुआ।

इस यात्रा के बीच जब हम एक मील के ही लगभग पहुँच पाये थे कि मेरी टाँगें ऊपर और सिर नीचे हो गया अर्थात् इच्छा न होते भी मुझे शीर्षासन की इस स्थिति में करीब दो या तीन फर्लांग फिसलना पड़ा जो उस समय दो या तीन मील के ही समान प्रतीत हुए। मेरी यह दशा देखकर व्यथित एक व्यक्ति के, 'यारे अल्लाह' कह रोने की आवाज सुनाई दी। जब मैंने उससे कारण पूछा तो उसने बताया कि पिछले दिनों यहीं पर एक रानी पहाड़ टूट जाने के कारण बनी दरार में गिरकर मर गई थी। मेरी भी दशा देखकर उसे वही बात याद आ गई थी; किन्तु मैंने उसे अपने सम्बन्ध में सांत्वना दी। तत्पश्चात् कुछ दूर फिसलकर और कुछ दूर चलकर जैसे-तैसे कर अस्थानमर्ग पहुँच गये। यहाँ से आगे का मार्ग शेषनाग नदी के किनारे-किनारे था जो अपेक्षाकृत अत्यन्त सरल प्रतीत हुआ। अतः मैं यहां घोड़े पर सवार हो निश्चिन्तता से बिना रकाब में पैर डाले ही चला जा रहा था कि अचानक भालू को ऊपर से आते देख घोड़े ने पीछे झुककर छलांग लगाई और मैं असावधान होने के कारण अपने-आपको सँभाल न सका। अतएव घोड़े की पीठ से गिरकर ढाल पर लुढ़कने लगा। इसी समय भाग्यवश एक पौधा हाथों में आ गया और यह तो चिरप्रचलित कहावत है कि 'डूबते को तिनके का सहारा' होता है, तभी तो मुझ-जैसे भारी व्यक्ति को एक छोटे-से अशक्त पौधे ने बचा लिया। किन्तु मृत्यु से बच जाने पर भी चोट से मैं बच न सका। अब तक सुलतान भी घोड़े को पकड़ लाया था और हमने चलना आरम्भ कर दिया। सो चन्दनवाड़ी में ही आकर विश्राम लिया। यहां विश्राम करके राम-राम करते हुए पहलगांव पहुँच ही गये। सुलतान का और मेरा वहीं तक का साथ था। अतः मैं दस रुपये उसे पुरस्कार स्वरूप देकर कार में सवार हो सीधा श्रीनगर पहुँच गया। श्रीनगर से मुझे दो-तीन दिन बाद ही बिड़ला पार्टी के साथ कलकत्ता जाना था। अतः दो-तीन दिन 'कुंजवन' में विश्राम किया।

सिन्धुनाला की घाटी—श्रीनगर से ५१ मील के अन्तर पर सिन्धुनाला की घाटी में स्वर्णमर्ग नामक एक अत्यन्त ही आकर्षक स्थान है। पहले तो वहां जाने के लिए मोटर-मार्ग नहीं था, किन्तु अब श्रीनगर से लद्दाख को जानेवाले मार्ग के बीच में यह स्थान आ जाता है। मार्ग में अंचार, वूलर-सरोवर पड़ते हैं तथा अन्य कई देखने-योग्य स्थान हैं, जिनका वर्णन मैंने अन्यत्र आगे किया है।

अंचार-सरोवर—श्रीनगर से हरिपर्वत का किला पार करने के बाद कमल के

सुन्दर पुष्पों से युक्त अंचार-सरोवर पडता है। इसे देखने के लिए अगस्त का विशेष उपयुक्त है। कमल के फूलों के बीच तैरती हुई सफेद बत्तखें तो एक ही समां बांध देती हैं। किन्तु मनुष्य इतना क्रूर प्राणी है कि ऐसी सुन्दर सरल चीज को भी रहने नहीं देना चाहता जो किसी का भी कुछ नहीं बिगाड़ती। इन सर जीवों को हिंसा-निमित्त भी यहां मनुष्य आ पहुँचते हैं। श्रीनगर से अंचार को शिकरों से भी जाया जा सकता है।

खीर भवानी—अंचार-सरोवर देखकर गंधारबल जाने के मार्ग में ही खी भवानी क्षेत्र आता है, जहां चारों ओर पानी ही पानी होने के कारण नाव में जाया जा सकता है। यहीं पर एक कुंड के अन्दर एक मन्दिर स्थित है जिसके च ओर यात्रियों के ठहरने के लिए धर्मशाला बनी हुई है। इस कुंड का पानी दिन में कई रंग बदलता है। अभी आपने देखा कि पानी लाल रंग का है कि तुरन्त ह आपको हरा पानी दिखाई पडने लगेगा। इसी भांति दिन-भर यह सरोवर गिरगि के समान रंग बदलता रहता है। यही इस स्थान की महान् विशेषता है।

गंधारबल—श्रीनगर से १२ मील के अन्तर पर सिन्धु नाले के किनारे गंधार बल नामक एक चश्मा है। यह स्थान जलवायु-परिवर्तन की दृष्टि से ८ • उपयुक्त है। यहां पर जलविद्युत्-केन्द्र की स्थापना की गई है। यहां पर भी अंचार सरोवर से हाउसबोट द्वारा जाया जा सकता है।

मानसबल—श्रीनगर से १८ मील के अन्तर पर स्थित लघु किन्तु देखने-योग्य अत्यन्त ही मनोहर मानसबल नामक झील है। इसका जल अत्यन्त ही स्वच्छ है

पहुँचा जा सकता है। इस सरोवर के किनारे वण्डीपुर नामक स्थान है।

गोण्ड—सोनमर्ग के मार्ग में वईल नामक स्थान पर मिलनेवाले पुल को पारकर सिंधु नदी के दाहिने किनारे पर जाकर गोंड नामक स्थान आ जाता है। गोंड से मार्ग ज़रा संकीर्ण हो जाता है, इससे यहाँ मोटर अत्यन्त कुशलता से चलानी पड़ती है, यह अत्यन्त रम्य स्थान है। सोनमर्ग से पूर्व थाजीवास स्थान आता है। यहाँ कैम्प डालने के लिए छोटे मैदान हैं तथा एक विश्रान्तिगृह भी स्थापित है। यहाँ से दो मील चलकर प्राकृतिक वैभव से पूर्ण सोनमर्ग आता है।

सोनमर्ग—सोनमर्ग ९००० फीट की उँचाई पर एक विशाल हरा-भरा मैदान है। इस मैदान के एक ओर गगनचुम्बी हिम-मंडित पर्वत-शृंखला है। गर्मी की ऋतु में अनेक व्यक्ति यहाँ तम्बू डालकर रहते हैं। यहाँ पर ग्लेशियर भी विशेष दर्शनीय हैं। इनमे मुख्य चार हैं। सबसे ऊपर जो हिमनद है उसका दृश्य सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होता है। उसी के पास एक ओर हिम नदी है और एक कैम्प डालने के स्थान के समीप ही है। यहाँ बकरियाँ चरानेवाले चरागाहों के ठहरने के लिए वर्थ नामक जंगली वृक्षों के झुण्ड में एक स्थान है। चौथे हिमनद तक पहुँचने के लिए नाले के दाईं ओर से जाना पड़ता है। ९००० फीट की उँचाई पर बहने-वाले इस नद के सदृश सुन्दर दृश्य अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। अमरनाथ श्रेणी के हिमनद तथा झरने यहाँ से पास ही हैं, किन्तु इसका सीधा कोई मार्ग नहीं है। अब जम्बू-काश्मीर सरकार की ओर से कुछ सुविधाएँ प्रदान की गई हैं। यहाँ अनेक कुटीर तथा विश्राम-गृह भी स्थापित कर दिये गये हैं। इसीलिए काश्मीर का नन्दनवन यात्रियों के स्वर्ग के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ से लद्दाख तक मोटर का मुख्य मार्ग बन गया है। श्रीनगर-कारगिल-लेह जिस मार्ग का नाम है वह मार्ग बाबुजान को भी जाता है। यहाँ से आगे तिब्बत का मार्ग भी कोंकापास होते हुए जाता है।

लद्दाख-लेह—लद्दाख पर्वतावली (१९००० फीट) सिन्धु के ऊपरी पार्श्व में स्थिति है जो काश्मीर का ही एक भाग माना जाता है। नदी ने इसके दो भाग कर दिये हैं। इसमें कुछ खेती भी होती है जिसमें जौ, दाल, मडुवा और हल्दी की उपज मुख्य है। यहाँ के खेतों की जुताई मुश्किल से होती है, और अनेक घुमक्कड़ जातियाँ वहाँ गड़रियों का काम करती हैं। यहाँ की एकमात्र मुख्य बस्ती लेह है। लेह ११,५०० फीट की उँचाई पर बसा है। यहाँ की आबादी १९४१ ई० में

११०८ थी। यहाँ रंग-बिरंगी ऊनी कपड़े, पट्टे, नक्काशी पदार्थ, बाजार के ... मस्जिदों में मिलते हैं। भारत से इसका सीधा सम्बन्ध हवाई जहाज और मोटर है। शेर से आगे बिल्कुल सब मोटर-मार्ग है।

मैं यात्रियों के स्वर्ग जगत्-प्रसिद्ध काश्मीर के सुन्दर-सुन्दर स्थल स्थानों भ्रमण कर अगस्त मास के आरम्भ में (चार मास बाद) श्री भगीरथजी की ... के साथ रावलपिंडी होते हुए पंजाब मेल से अम्बाला तक तत्पश्चात् कालका-मेल से सीधे कलकत्ता पहुँच गया। यह मेरा कार्यक्रम दार्जिलिंग होते हुए शिलांग रंगून जाना था, किन्तु साथी न मिल सकने के कारण वीरगाँव से ही वापस आ जाना पड़ा, जिसका वर्णन मैंने अन्त में दिया है।

४. नैपाल-यात्रा

हिमालय के मध्य में स्थित एक स्वतन्त्र राज्य 'नैपाल' के नाम से प्रसिद्ध है। इसी भाग में दुनिया की सबसे ऊँची चोटियाँ हैं जो कि एवरेस्ट, कंचनजंघा, मनास्लु, गोसाईनाथ, धवलगिरि, गौरीशंकर आदि नामों से विख्यात् हैं। पहले तो नैपाल में प्रवेश पाने के लिए प्रवेश-पत्र (पासपोर्ट) अनिवार्य था, पर बीच में यात्रियों को बिना पासपोर्ट के भी प्रवेश प्राप्त होने लगा था। किन्तु अब नैपाल की सीमाओं के अन्दर, पुनः इस नियम का कठोरता से पालन होने लगा है। यह एक क्रान्तिपूर्ण देश है अतः इसके शासन-नियमों में किस समय क्या परिवर्तन हो जाए, कुछ कहा नहीं जा सकता। नैपाल में प्रवेश के लिए अपने प्रदेश के ज़िला मजिस्ट्रेट से सन्नागरिकता का प्रमाण-पत्र तो लेना चाहिए (भारतीय यात्री के लिए यह बात है)। काठमांडू तक मोटर सड़क बन जाने के कारण ७-८ दिन में ही नैपाल के मुख्य-मुख्य स्थान घूमकर वापस आया जा सकता है। पटना से हवाई जहाज़ द्वारा भी काठमांडू तक आया जा सकता है। इससे समय की बहुत बचत हो जाती है। पटना से हवाई जहाज़ द्वारा काठमांडू पहुँचने में कुल पचपन मिनट ही लगते हैं।

भूगोल—नैपाल के उत्तर में ऊँचे हिमशिखर, तिब्बत और देश पूर्व में सिक्किम, दार्जिलिंग, भूटान पश्चिम में कुमायूं (उत्तर प्रदेश) तथा दक्षिण में उत्तर प्रदेश तथा बिहार हैं। इसका क्षेत्रफल तो ५४,००० वर्ग मील है तथा जनसंख्या ८५ लाख है। इस भाग में धवलगिरि (२६,८२६ फीट), गोसाईनाथ (२६,३५० फीट), कंचनजंघा (१८,१४६ फीट) तथा संसार की सबसे ऊँची चोटी एवरेस्ट (२९,१४१ फीट) है। यहाँ से गोगरी, गंडकी, कोशी, बागमती आदि कई नदियाँ निकलती हैं जो कि भारत के पठारों में बह जाती हैं। हिमालय को पारकर तिब्बत जानेवालों के लिए कई घाटियों से होकर मार्ग है। इनमें थकला, खोरघाट, मुक्तिनाथ, मसांगघाट, केरंगघाट तथा कुटिघाट मुख्य हैं।

भीमफेरी से काठमांडू (राजधानी) तक—भारत के सीमान्त में रक्सौल स्टेशन तक पहुँचकर आगे अमलेखगंज तक नैपाल की रेल द्वारा पहुँचना होता है।

किन्तु जिस समय मैं इस यात्रा पर गया था उस समय अमलेखगंज से भीमफे तक मोटर जाती थी। उन दिनों में शीशागढी तथा चन्द्रागढी को पार करके ही थानकोट तक पहुँचने के बाद लगभग आठ मील फिर से मोटर में बैठकर पर नेपाल की राजधानी काठमाडू पहुँचते थे। लेकिन अब रक्सौल से सी काठमांडू तक मोटर जाती है। यहाँ के सिंह-दरबार, हनुमान ढोका, र बाज़ार आदि देखने-योग्य स्थल हैं। यहाँ पर मैंने पैदल-मार्ग का किया है।

रक्सौल पहुँचने के बाद अमलेखगंज का टिकट खरीदते समय ही एक का टुकड़ा भी मिला, जिस पर नेपाली चिह्न अंकित था। उस समय यह कागज़ पासपोर्ट माना जाता था। इस पासपोर्ट से दस-पन्द्रह दिन तक नेपाल में रुकने अनुमति होती थी। मेरे पीछे उस समय कई खुफिया पुलिस के आदमी लगे हुए रेल से उतरकर मैं अमलेखगंज की धर्मशाला में गया जहाँ भोजन वगैरह से नि होकर मैं भीमफेरी को रवाना हो गया (साथ में नौ जन थे)। यहाँ पहुँचते-पहुँ रात हो गई, यहीं पर मेरे प्रान्त के और यात्री साथ हो गये। अतः जगह का ठी प्रबन्ध न हो पाने के कारण रात्रि अत्यन्त कठिनाई से व्यतीत हुई। हम कुल ि कर नौ यात्री थे और आनन्द यह था कि सभी कर्नाटक के रहनेवाले ब्राह्मण अतः सबके साथ रहने से खूब आनन्द आया।

भीमफेरी से कुलियों ने सामान उठवाकर सुबह ही सुबह उन्नत गिरि-दुर्गों चढना आरम्भ कर दिया। साढे चार मील चढने के बाद वह स्थान आया

थककर चूर हो रहे थे, अतः यहीं भोजनादिकर हमलोगों ने विश्राम किया।

दूसरे दिन माखू नदी में स्नानकर भोजनादि से निवृत्त होकर अपनी यात्रा पर पुनः अग्रसर हुए। यहाँ पर एक पुल पार किया तथा अधर में रस्सी के सहारे लटककर जानेवाले मार्ग (रोपवे) का दृश्य भी देखा। यही सब देखते-भालते हम थोड़ी उतराई उतरकर पुनः एकदन्ती तथा चन्द्रागढ़ी की गम्भीर चढ़ाई पर बढ़े। यह चढ़ाई अत्यन्त दुर्गम प्रतीत हुई। इतनी कठिन चढ़ाई तो मुझे बदरी-केदारनाथ मार्ग में भी नहीं चढ़नी पड़ी थी, अतः थक जाना स्वाभाविक ही था। इसी रस्सी में बीच-बीच में लोहे के जंगले लटकते रहते हैं जिनमें संदूक जैसा भारी सामान रखकर भी एक जगह से दूसरी जगह भेजा जाता है। पहाड़ों पर सामान ढोने के लिए इस ढंग का प्रचलन विशेष रूप से दिखाई पड़ता है। सन्ध्या-समय हम पानीघाट पहुँचे जहाँ रात-भर विश्राम करने के पश्चात् एक मील उतरकर थानकोट पहुँचे। वहाँ हमें मोटर मिली अतः अब मोटर पर सवार हो हम सीधे काठमांडू पहुँच गये।

श्री पशुपतिनाथ का मंदिर—हम वागमती नदी पारकर सीधे पशुपतिनाथ जी के मन्दिर में गये। यहाँ के पुजारी से मिलने पर अत्यन्त खुशी हुई क्योंकि वह भी हमारे कर्नाटक (कुंदापुर) के निवासी थे अतः सात-आठ दिन इन्हीं के घर में रहकर सब स्थान घूम लिये। ये पुजारी श्री सुब्राह्मण्य शास्त्री ही यहाँ के मुख्य पुजारी थे। मन्दिर का समस्त कार्य-भार इन्हीं के कन्धों पर था तथा इनकी सहायता के लिए अन्य चार-पाँच महाराष्ट्र के ब्राह्मण भी नियुक्त थे। इस मन्दिर का वैभव अपूर्व है। इसके महाद्वार चाँदी से मढ़े हुए हैं तथा उन पर सोने के पानी से चित्रकारी हुई है। यहाँ स्थापित पंचमुखी शिवलिंग मुख्य है तथा चारों ओर अनेक लिंगों तथा मूर्तियों से सुशोभित छोटे-छोटे मन्दिर हैं। इनमें लक्ष्मीनारायण, शालिग्राम, दाहिने मुखवाला शंख, एकमुखी रुद्राक्ष आदि मुख्य हैं। सामने बैठा हुआ नंदी बैल पीतल का बना हुआ है। यहाँ के प्रदेश में वागमती, हनुमन्ती तथा रुद्रमन्मथी आदि प्रसिद्ध नदियाँ हैं। श्री सुब्रह्मण्य शास्त्रीजी ने ही हमें सब विशेष-विशेष स्थान साथ चलकर दिखाये, इस से हम अल्पकाल में ही सब स्थान देख सके। काठमांडू के पास अन्नपूर्णा, महेन्द्रनाथ, आकाश भैरव, कटिशिभु, तारादेवी, अत्तकनारायण, जैसीदेवल, कामेश्वरी, विजेश्वरी, इंद्राणी, भीमसेन आदि कई मन्दिर देखने-योग्य हैं।

लगभग आधा मील के फासले पर गुह्येश्वरी का मन्दिर है। यहाँ पर पान का चश्मा ध्वनि करता हुआ जमीन से स्रवित होता है। अभिषेक किये हुए तथा फलादि सब अन्दर चले जाते हैं। राजघराने की इष्टदेवी का मन्दिर ह के सबब से यहाँ सब राज-परिवार के व्यक्ति भी आते हैं तथा यहाँ शक्तिपीठ भ है। यहाँ से पाँच मील की दूरी पर 'बूढा नीलकंठ' नामक तालाब के अन्दर वि काय शेषशायी मूर्ति विशेष रूप से देखने-योग्य है। गोरखनाथ-द्वारा स्थापि आद्यपीठ, मृगस्थली नामक स्थान पर एक महात्मा के दर्शन हुए जिनकी १५२ वर्ष की थी। यह महान् विद्वान् होने के कारण यहाँ 'शिवपुरी' नाम (यारके) से प्रख्यात् थे। इनके अतिरिक्त गोकर्णेश्वरलिंग, गोसाई कुंड, द कालो तथा वज्रयोगी मन्दिर दर्शनीय हैं। वीरगंज से २० मील के अन्तर पर कुटा नामक स्थान है। यहाँ रुद्राक्ष के पेड पाये जाते हैं जिनमें रुद्राक्ष लगते है इनके अलावा बुढनाथ, स्वयंभूनाथ के चैत्यालय भी देखने-योग्य स्थान है। बुधगाँव तथा भगतपुर मे भी अनेक भव्य मन्दिर है। इनमें महाबुद्ध, कुम्भे लक्ष्मीनारायण(पाटन) मे दत्तात्रेय, भैरवनाथ आदि प्राचीन मन्दिर हैं। दर चौक मे श्रीकृष्ण और राजा जोगेन्द्र की बडी-बड़ी मूर्तियाँ हैं तथा १५ बडे व विहार हैं। वुद्धगाँव सात मील के अन्तर पर है। यहाँ दरबार-चौक, सोने दरवाजा, राजा भूपेन्द्रमल की मूर्ति तथा अन्य अनेक प्राचीन भवन देखने- हैं। यहाँ से और सात मील की दूरी पर चाँगूनारायण पगोडा कला-कौ की दृष्टि से अद्वितीय है। यहाँ से हिमालय का अत्यन्त मनोमुग्धकारी दृश्य दि

संस्कृत नाम 'कान्तिपुर' है जो कालान्तर में बिगड़ते-बिगड़ते 'काष्टमण्डप' से काठमाण्डू बना। १५९६ ई० से इस नाम का ऐतिहासिक प्रमाण मिलता है; किन्तु कान्तिपुर नगर की स्थापना तो ७२३ ई० में ही हुई थी और इसके संस्थापक थे राजा गुणकामदेव। काठमाण्डू में बागमती और विष्णुमती नदियाँ आकर मिलती हैं। काठमाण्डू पहाड़ी पर बसा है इसलिए उसकी सुन्दरता निखर पड़ी है।

तुण्डीखेल—कोपचन्द्र मल्ल के शासन-काल में तुण्डीखेल का विस्तृत मैदान निर्मित हुआ था जो सदा हरा-भरा रखा जाता है और जिसमें सैनिक परेड और त्योहार तथा रस्में मनाई जाती हैं। यहाँ भूतकालीन राणा-शासकों की कांस्य-मूर्तियाँ हैं और दक्षिण की ओर शहीदों का नव-द्वार है। घंटाघर और धरहरा है जिसे 'भीमसेन-फोलियो' कहते हैं।

इनके अतिरिक्त सिंह-दरबार, हनुमान-ढोका, नैपाल-संग्रहालय, स्वयंभूनाथ चैत्य, बालाजू बाग, गुह्येश्वरी, बुद्धनाथ-स्तूप, सुन्दरजाल, बूढ़ा नीलकण्ठ आदि हैं।

ललितपुर (पाटन)—ललितपुर के मन्दिरों का सौन्दर्य अद्भुत है। यह काठमाण्डू से २ मील पर है। यहाँ के मन्दिर काठमाण्डू के मन्दिर से भी विशाल हैं जिनसे नैपाल के क्वचित्कालीन वैभव का आभास मिलता है। ललितपुर बौद्ध संस्कृति का केन्द्र है। ललितपुर में दरबार चौक है।

यहाँ के दर्शनीय स्थानों में कृष्ण-मन्दिर, प्राचीन शाही स्नानागार, गरुड़, सुनहली खिड़की, दरबार-चौक, पगोड़ा, भण्डार-खेल, योग नरेन्द्रमल गुप्त आदि हैं।

भक्तपुर (भटगाँव)—यह काठमाण्डू से छः मील पर है। यह मध्ययुग की राजधानी थी इसलिए यहाँ उस काल के सुन्दर भव्य मन्दिर हैं। इस नगर की स्थापना ८८९ ई० में हुई थी। इसके मन्दिर और पगोड़ा मशहूर हैं। दर्शनीय स्थानों में दरबार चौक, नेशनल आर्ट गैलरी, नया टपोला, दत्तात्रेय, सिद्ध पोखरी, सूर्य विनायक, लक्ष्मीनारायण, कुम्भेश्वर आदि पन्द्रह मन्दिर और पॉटरी वर्क्स, बगीचे आदि हैं। ये सभी स्थान पाटन और बुधगाँव के बीच में सात मील में फैले हैं।

नैपाल के प्रसिद्ध स्वास्थ्य-केन्द्रों (हिल स्टेशनों) में नगरकोट है जो ७००० फ़ीट की उँचाई पर है। प्रवासियों के लिए यह आकर्षण का केन्द्र है। यहाँ के प्राकृतिक दृश्य बहुत अच्छे हैं। भक्तपुर से यह केवल ५ मील पर है। यहाँ महा-



देव पोखरी ७,१३३ फीट की उँचाई पर है। यहां से माउण्ट एवरेस्ट साफ दिखाई देता है। यहां से गोसाइंनाथन की चोटी, गौरीशंकर आदि कई शिखर दीखते हैं। सूर्योदय और सूर्यास्त के दृश्य यहां बड़े मोहक होते हैं और पहाड़ों की चोटियाँ विभिन्न रंगों में नहा लेती हैं।

इसके अतिरिक्त ककानी, नागार्जुन और तोखा यहां के प्रसिद्ध स्वास्थ्य-प्रद केन्द्रों में हैं।

गोसाइंकुण्ड—यह १६,७४५ फीट ऊँचा है जिसमें भील भी है। यह नेपाल का एक प्रसिद्ध तीर्थ है। इस भील में अनेक हिमनद आकर गिरते है। नेपाल में इसे सरोवरों का जिला कहा जाता है। जाड़े में यह भील और आस-पास के सभी जलाशय जम जाते है और उस पर लोग चल-फिर सकते है। गोसाइंकुण्ड से ही त्रिशूली और गण्डकी नदी निकलकर बिहार के मुजफ्फरपुर जिले में आती हैं।

मुक्तिनाथ—यह १८,००० फीट की उँचाई पर स्थित एक तीर्थस्थान है यह पोखराघाटी से ४० मील की दूरी पर है। रास्ता राधनगाल होकर है। यहाँ से धवलागिरि-शिखर दिखाई देता है और आगे काली गण्डकी नदी राह में नीचे उतरते हैं। कागवेनी नदी के किनारे-किनारे छः मील चलकर मुक्तिनाथ पहुँचा जाता है।

मुक्तिनाथ में भसार से लेकर आगे शालिग्राम क्षेत्र तक आस-पास के

ग्रास-पास घने जंगल भी हैं। यहाँ पर प्रवासी शिकार करने ग्रौर वर्फ पर फिसलने के खेल के लिए जाते हैं। यहाँ एक जूट-मिल है ग्रौर सूती कपड़ा-मिल, चीनी-मिल, दियासलाई के कारखाने, प्लाई-वुड फैक्टरी, चावल मिलें ग्रौर ग्रनेक ग्रामोद्योगों के ग्रलावा पानी से चलनेवाला बिजलीघर भी है।

नैपाल के त्यौहार

शिवरात्रि—नैपाल का सबसे बड़ा त्यौहार है जिसमें सम्मिलित होने ग्रौर पशुपतिनाथ महादेव के दर्शन करने भारत के हिन्दू भी बड़ी संख्या में ग्राते हैं। यह त्यौहार फाल्गुन वदी १३ (त्रयोदशी) को पड़ता है। उस दिन नैपाली सेना का प्रदर्शन भी होता है।

होली—यह त्यौहार भी वहाँ भारत की ही तरह मनाया जाता है। ग्रबीर-गुलाल ग्रादि डालने की प्रथा वहाँ भी है।

चैत्र सुदी में यहाँ मलकपुर में 'लिंगयात्रा' होती है जिनके सम्बन्ध में यह प्रचलित है कि यह महाभारत-काल से ही मनाई जाती ग्रा रही है।

मछीन्द्रनाथ-रथयात्रा—नैपाल के उत्सवों में मछीन्द्रनाथ-रथयात्रा वहुत प्रसिद्ध है। यह वैसाख के महीने भर रहता है। यह एक ६०-७० फीट ऊँचा रथ होता है, जिसका निर्माण बड़े-बड़े पहियों (रथ-चक्र) के ग्राधार पर हुग्रा है। रथ के ऊपर गर्भ-गृह में देव-मूर्ति होती है। इस रथ को यात्रा के समय सैकड़ों भक्त खींचते हैं ग्रौर मील डेढ़ मील तक ले जाते हैं। रथ के पीछे जुलूस में ग्रौर भी सवारियाँ निकलती हैं जिनमें भाँति-भाँति के बाजे-गाजे तुरही, नगाड़े ग्रौर शंख बजते हैं। ग्रौर लड़कियाँ सुन्दर वस्त्र पहन, पुष्प-माला लिए नाचती-गाती हैं। पुरोहित ग्रौर पुजारी-देवता पर छत्रक ताने घड़ियाल-घंटे बजाते धूप-दीप, नैवेद्य की क्रिया सम्पन्न करते हुए रथ को ग्रागे बढ़ाते हैं। मूर्तियों को स्नान कराकर सजाने ग्रौर नारियल चढ़ाने की व्यवस्था भी यही पुरोहित कराते हैं।

इन्द्रयात्रा—भाद्र महीने में काठमाण्डू में इन्द्रयात्रा होती है जो वृष्टि के देवता को प्रसन्न करने के लिए एक सप्ताह तक चलती है। इन्हीं दिनों देवीकुमारी का त्यौहार भी मनाया जाता है। काठमाण्डू की सड़कें उन दिनों नृत्य ग्रौर गान के कारण भरी रहती हैं। देवी कुमारी-त्यौहार में तीन रथ निकलते है। इस त्यौहारों की ग्रोर नैपाल की स्त्रियाँ स्वभावतः ग्राकर्षित होती हैं।

दुर्गा-पूजा—यहाँ के हिन्दू और बौद्ध निवासी दुर्गा-पूजा मनाते हैं। दस दिन तक घर-घर में देवी-पूजा होती है। नवरात्रों में यह देशव्यापी महोत्सव मनाया जाता है। दुर्गा दिन सैनिक प्रदर्शन होता है और नवें दिन दुर्गा-पूजा होती है। ऐ में बकरों या भैंसों की बलि दी जाती है। लोग मदोन्मत्त होकर हैं। मुर्गे और बत्तखें भी मारी जाती हैं।

तिहार (दिवाली) दुर्गा-पूजा के एक पखवारा बाद नेपाली दीवाली का त्यौहार बड़े चाव से मनाते हैं। यह उत्सव यहाँ चलता है। तीसरा दिन दीवाली का मुख्य दिन या बड़ी दीपावली दिन प्रातःकाल गौ की पूजा होती है और लक्ष्मी के नाम पर इसे जाती है। सन्ध्या-समय लोग अपने घरों, दूकानों, कार्यालयों में भगवती पूजा करते हैं और सिक्के चढ़ाते हैं। रात-भर दीपक जलते हैं। खासकर तेल के मिट्टी से बने दीये। अब मोमबत्ती और बिजली-बत्ती जलाने का भी बढ़ता जा रहा है।

चौथे दिन भी पूजा होती है और तब से नया साल शुरू माना जाता है दिन भाई अपनी बहनों के घर जाते हैं और अविवाहित हुईं तो घर में ही को भाई द्वारा मिठाई, फल, वस्त्र और आभूषण दिये जाते हैं।

गाइयात्रा (गाय-यात्रा)—अगस्त महीने में यह उत्सव मनाया जाता कुछ लोग सिर में सींग बाँधकर गायों के जलूस मे

अवसर पर लोग

नैपाल के पर्वतारोहण स्थान

नैपाल में जितने प्रसिद्ध पर्वत-शिखर हैं, उनका विवरण नीचे दिया जाता है—

चोटी	ऊँचाई
माउण्ट एवरेस्ट	२६,०२८ फीट
कांचन गंगा	२८,१६६ „
गौरीशंकर	२३,४४० „
पूर्वी छ्याचू	२१,८३६ „
दोर्जी लाम्पा	२२,८७० „
लंगटंग	२३,७५० „
गोसाई नाथन	२६,२८६ „
गणेश हिमल	२२,३६१ „
हिमलचुली	२५,८०१ „
अन्नपूर्णा	२६,४६२ „
धवलगिरि	२६,८१० „
साइपाल	२३,१५४ „

नैपाल का राजवंश बहुत प्राचीन है और उसके नये महाराजाधिराज महेन्द्र नये विचार के प्रगतिशील शासक हैं। नैपाल अब बड़ी उन्नति कर रहा है। वहाँ नये-नये कारखाने खुल रहे हैं और सड़कें बन रही हैं। ऐसी आशा की जाती है कि नई दौड़ में वह काफ़ी आगे बढ़ सकेगा।

इस प्रकार नैपाल के सब दृश्य-देवालय, झील, हिमशिखर वहाँ की नृत्य-कला, त्यौहार और रीति-रिवाज जानने के लिए पहाड़ों में पैदल यात्रा करते हुए सात-आठ महीने घूमना पड़ेगा। अभी वहाँ पर मोटर आदि साधन उपलब्ध नहीं हैं। भारत-सरकार की सहायता से कई सड़कें बनाई जा रही हैं और अन्य साधन-सामग्री भी जुटाई जा रही है। और कुछ साल बाद वहाँ भी दूसरे स्थानों की भाँति आने-जाने की सुविधा हो जायगी। इसलिए ऊपर आवश्यक देखने योग्य स्थानों का परिचय मात्र दिया गया है।

५. दार्जिलिंग से नेफा तक

अब तक मैंने काश्मीर से नेपाल तक का वर्णन चार भागों में है। पंचम भाग में दार्जिलिंग से ईशान्य सरहद एजेन्सी का संक्षिप्त वर्णन इस पुस्तक को समाप्त कर दूंगा। पर्वतारोहियों के सम्बन्ध में भी कुछ ि का विचार उत्पन्न हुआ, इसलिए परिशिष्ट प्रकरण में उनके लिए भी बातें लिखी गई हैं। इस भाग में कुर्सियांग, दार्जिलिंग, कालिपेंग, भूटान और (ईशान्य सरहद एजेन्सी) का साधारण परिचय दिया गया है। अब तक से आगे जाने के लिए सवारियों की सुविधा नहीं थी। अतः यहाँ की यात्रा के कोई विरला ही जा सकता था। किन्तु अब यह बात नहीं है। वहाँ के प्रमुख के लिए मार्ग बन रहे हैं और सम्भवतः दो-तीन साल में गाड़ी-मोटर भी लगेगी। यहाँ मैंने उन्हीं मार्गों का वर्णन किया है जिनका निर्माण हो रहा यह नहीं भूलना चाहिए कि ये सभी भाग हिमालय के ही अन्तर्गत है। कोरम-सिन्धु से ब्रह्मपुत्र नदी के निकास (ई० स० ए० प्रवेश) तक ही अपितु उससे भी आगे मिस्मी पहाड़ की आखिर तक हिमालय की सीमा पूर्ण ह है। भूटान और आसाम के उत्तर के हिमगिर इसी विशालकाय पर्वतराज के अं है। इसके लिए कई आधार और मानचित्र है। उनकी सहायता से सब मालूम स॰ ।

नामक सुन्दर पर्वतीय क्षेत्र है। यदि रेल से चला जाय तो एक रात में सिलीगुड़ी पहुँच सकते हैं। और वहाँ से छोटी गाड़ी में पाँच-छः घण्टे में ही दार्जिलिंग पहुँच सकते हैं। कलकत्ता से प्रतिदिन हवाई जहाज़ चलता है और वह २९१ मील वागडोर में उतार देता है। वहाँ से आगे ५६ मील मोटर से चलकर दार्जिलिंग पहुँचा जाता है। रास्ते के रमणीय दृश्यों को देखकर जाना हो तो रेल-मार्ग से ही जाना चाहिए। सिलीगुड़ी से ३२ मील पर कुर्सियांग नामक सुन्दर वस्ती है। वहाँ बौद्ध विहार, डौहिल, इंगल्सकार्ग आदि कई देखने-योग्य स्थान हैं। ४८६४ फीट की उँचाई पर स्थित इस प्रगतिशील नगर में शीतल पवन बहता रहता है यहाँ कई सांस्कृतिक और सार्वजनिक संस्थाएँ हैं जिनसे प्रवासियों को आनन्दपूर्वक समय विताने में सहायता मिलती है। यह छोटा-सा शहर साफ-सुथरा और दर्शनीय है।

दार्जिलिंग (७,००० फीट)—दार्जिलिंग हिमालय के ऊँचे शिखर कांचनजंघा (६८ मील) के समीप में स्थित है। यह मन्दिरों के शिखरों की तरह दिखाई देनेवाले गिरि-शिखरों से घिरा है और सभी पर्वतीय स्थानों में श्रेष्ठतम है। पाइन, चीड़ और देवदारु वृक्षों के जंगल, उँचाई से गिरनेवाले जल-प्रपात, चाय के बगीचे और सुन्दर पुष्पोद्यान यहाँ के आकर्षण को बढ़ा देते हैं। यहाँ बोटानीकल गार्डन, आब्ज़रवेटरी, म्यूजियम, घूम-बुद्ध मंदिर, रेस कोर्स, विर्च हिल, सार्वजनिक उद्यान, विक्टोरिया रेस्टोरेंट, सेचाल सरोवर (रिज़रवायर) नेचूरल हिस्ट्री म्यूज़ियम और हिमालय पर्वतारोही संघ आदि कई दर्शनीय स्थान हैं।

इस नगर में पौर्वात्य पद्धति के कई होटल हैं। उनमें माउण्ट ऐवरेस्ट (गांधी रोड) स्विस होटल, ऐवरेस्ट लाज, ईस्टर्न होटल, स्नोव्यू होटल, इंडियन होटल, सेण्ट्रल बोर्डिंग और हिन्दू बोर्डिंग मुख्य हैं। साधारण स्तर के लोग स्टेशन के समीपवाली धर्मशाला में आराम से ठहर सकते हैं। अधिक समय तक रहनेवालों को किराये के मकान भी मिल जाते हैं। किन्तु इसके प्रवन्ध के लिए दूसरों की सहायता की अपेक्षा होती है। अन्यथा होटल में तो उचित किराये पर कमरे मिल ही जाते हैं।

घूम—दार्जिलिंग स्टेशन पहुँचने से पूर्व ही घूम स्टेशन पर उतरकर वहाँ के बौद्धमठ के दर्शन किये जा सकते हैं। वहाँ लकड़ी की बनी हुई एक विशाल बुद्ध-मूर्ति है। उस मन्दिर में एक तांत्रिक लामा रहता था। वह योग की बातें बतलाता था। मैं जब वहाँ पहुँचा तो एक आदमी जूते पहने हुए एक पैर बुद्ध के कंधे पर

और दूसरा बुद्ध के सिर पर रखकर उस बड़ी मूर्ति की पूजा कर रहा था। यह मन्दिर दर्शनीय है। रेल-द्वारा यहां पहुँचने के लिए कई पहाड़ों के चक्कर लगाने पड़ते हैं। रेल से चलने में ही यहां का स्वर्गीय दृश्य दिखाई देता है।

टाइगर हिल (८,६०० फीट)—'घूम' से छः मील की कठिन चढ़ाई पार करने के बाद कांचनजंघा का दृश्य देखने के लिए यहां पहुँचा जाता है। मैं सिलीगुड़ी के एक मित्र के साथ सायंकाल यहां पहुँचा और यहां के डाक-बंगले में ठहरा। प्रातः चार बजे उठकर एक मील दूरी पर बने हुए प्लेट फार्म पर पहुँचा। यह प्लेटफार्म प्रातः कालीन सूर्योदय के दृश्य को देखने के लिए बनाया गया है। यहां से कंचनजंघा और एवरेस्ट के दृश्य को देखने के लिए दुनिया भर के लोग आते हैं। हम अँधेरे में ही वहां पहुँच गये थे। उसके बाद हम एक ऊँचे स्थान से लाल सोने की तरह चमकनेवाले इस पर्वत को देखकर मुग्ध हो गये और पौने घंटे तक वहीं खड़े रहे। पर्वत की लालिमा कुछ क्षणों के बाद पीला, बैंगनी, हरा, नीला आदि कई रंगों में बदलती गई। इन रंगों को कई दिनों तक प्रतिदिन देखने से आँखों की बीमारी दूर हो जाती है। बाद में सूर्य मंडल में भी इसी प्रकार के रंग दिखाई दिये। एक घंटे से अधिक समय तक इन इन्द्र धनुष जैसे रमणीय दृश्यों का आनन्द लेते हुए हम वापस आये।

अन्य देखने-योग्य स्थान—दार्जिलिंग के चारों ओर कई अच्छे दर्शनीय स्थान हैं। यहां से पुनः 'घूम' पहुँचकर उदयचन्द रोड से विक्टोरिया फाल्स देखना चाहिए। यहां के पहाड़ों से वेगपूर्वक गिरनेवाले जल-प्रपात मनोहारी और नयनाभिराम । यहां से छः मील पर सेंचोली नामक रमणीय सरोवर है। वहां

देखने में एक सप्ताह का समय लग जाता है। मैं बिरला पार्टी के साथ काश्मीर से सीधा कलकत्ता पहुँचा। पाँच-छः दिन तक श्री भगीरथजी के साथ रहा। बाद में, तिब्बत जाने के विचार से दार्जिलिंग पहुँचा, किन्तु वहाँ के लिए पासपोर्ट नहीं मिल सका। इसलिए नैनीताल, अलमोड़ा होते हुए पश्चिम तिब्बत, कैलास-यात्रा करके लौट आया। जिसका वर्णन पीछे किया जा चुका है।

कालिंपोंग (४,००० फीट)—दार्जिलिंग से ३२ मील दूर पर्वतीय प्रदेश में कालिंपोंग नामक छोटा-सा नगर है। यहाँ का सुन्दर बाजार सरकारी आर्ट एण्ड डिमोस्ट्रेशन फार्म और तिब्बती मोनेस्ट्री आदि कई संस्थाएँ देखने-योग्य हैं। मैं यहाँ पैदल ही गया था और दो दिन में सब स्थानों को देखकर रेल से सीधा सिलीगुड़ी पहुँच गया था। अब वहाँ वह रेल बन्द हो गई है किन्तु यात्री मोटर से जा सकते हैं। दार्जिलिंग से जंगल का सौन्दर्य लूटते तिस्ता नदी पार करके कालिंपोंग पहुँचने में बड़ा मजा आया।

जब से तिब्बत चीन में मिला तब से यह एक उपद्रव का स्थान बन गया है। यहाँ पर कई भागों के जासूस भरे रहते थे। निराश्रित तिब्बती लोगों को भारत-सरकार से मदद मिलती है और उनके धर्मगुरु लामा भी अपने परिवार के सहित भारत में डलहौज़ी नामक स्थान में रहते हैं। इन निराश्रितों को मैसूर, मध्यप्रदेश पंजाब आदि कई प्रान्तों में ज़मीन आदि देकर बसाया गया है। यहाँ से सिक्किम होते हुए ल्हासा तक एक अच्छा मार्ग है जिसके द्वारा पहले तिब्बत के साथ व्यापार चलता था। यहाँ से गंगटोक तक मोटर चलती है।

सिक्किम

सिक्किम हिमाचल का एक भाग है जिसमें झीलें, पहाड़ियाँ, घाटियाँ और दर्रे हैं। मैंने यहाँ के जंगलों में होते हुए काफ़ी भ्रमण किया है। पर्वत से नीचे बहनेवाली नदियों के कल-कल नाद का आनन्द लेते हुए मैं आगे बढ़ा हूँ। सिक्किम तिब्बत से उत्तर दिशा में घिरा हुआ है। इसके दक्षिण में पश्चिमी बंगाल है और पश्चिम में नैपाल। इसके उत्तर में हिमालय की ऊँची-ऊँची चोटियाँ हैं और उसका सारा प्रदेश आश्चर्यजनक ढंग से प्रकृत-निर्मित पहाड़ियों से भरा है। यहाँ की किश्तावेली सबसे बड़ी समझी जाती है। दक्षिण की घाटियों से लेकर बर्फ से ढकी पहाड़ियों तक बड़ी सर्दी पड़ती है, किन्तु साल

सिक्किम में खेती

कालिंपोंग का बाजार

में कई महीने यहाँ सूर्य की किरणें सारे प्रदेश को प्रकाशित और सुन्दर बना देती हैं। सिक्किम जंगलों और पर्वतों के लिए सारे संसार में प्रसिद्ध है—खास कर फूलों के बगीचों के लिए। यहाँ की चोटियों में सबसे ऊँची सिलियोचोम कही जाती है जिसकी ऊँचाई २२,६२० फीट है। जो लोग सरकारी बंगलों में ठहरकर यहाँ के दृश्यों को देखना चाहते हैं उन्हें दार्जिलिंग के डिप्टी कमिश्नर से आज्ञा लेनी पड़ती है।

गंगटोक—सिक्किम की राजधानी है और वह भारत से सम्बद्ध है। तिब्बत में फैला हुआ बौद्ध धर्म सिक्किम में भी अपना पूर्ण प्रभाव रखता है। सिक्किम के इष्टदेव 'पद्मसम्भव' कहे जाते हैं, इसीलिए वहाँ 'ओंमणिपद्मे हुम' का मन्त्र जपा जाता है जो कि बहुत व्यापक है। सिक्किम के बहुत-से भाग ऐसे हैं जहाँ मनुष्य का प्रवेश मुश्किल से हो सकता है। यहाँ के निवासियों के साथ भोटियों का व्यापार है। नेपाल की ओर से पहाड़ी भी यहाँ आ गये हैं जो कि अधिकांशतः हिन्दू हैं। ये लोग यहाँ खेती करते हैं।

सिक्किम की राज्य-व्यवस्था—सिक्कम दार्जिलिंग से ५३ मील की दूरी पर है। एक राजा के अधीन होते हुए भी यह राज्य भारतीय यूनियन में सम्मिलित है। कांचनजंघा के इन शिखरों के नीचे बसे हुए इस नगर का वर्णन करना महाकवियों के लिए भी कठिन है। इसीलिए यहाँ ग्रीष्मकाल में फोटोग्राफर और चित्रकारों की भीड़ लगी रहती है। इस भाग में तिस्ता, लाचुंग, रांगयो, रांगनि और कई छोटी नदियों का दृश्य देखने-योग्य है। ये नदियाँ दक्षिण की ओर बड़े वेग से बहती हैं।

हैं। यहां से ल्हासा (नाथुला दर्रा) तक मोटर-मार्ग बन रहा है।

रस्म-रिवाज (रीति-प्रथाएँ)—यहाँ के लीप्चा, सिक्किमी और नैपाली लोगों के रिवाज बड़े विचित्र होते हैं। यहाँ के मूल निवासी तो मंगोलियन रेस से आये हुए लिप्चा ही हैं। इनके रीति-रिवाज तिब्बतियों के समान हैं। ये सब लोग सिक्किमी के नाम से ही पुकारे जाते हैं। खेती के कार्य में तो परिश्रमी नैपाली लोग ही दक्ष हैं। यहाँ के अधिक निवासी हिन्दू हैं और बाकी बौद्ध हैं। यहाँ बौद्धों के चैत्यालय और विहार देखने-योग्य हैं। इन सबकी यात्रा और मेला आदि भी अलग-अलग होते हैं। यहाँ पर कई वृक्षों में रंग-बिरंगे कपड़े के टुकड़े बँधे हुए मिलते हैं और घरों के आँगन तथा बगीचों में हवा से अपने-आप घूमनेवाले प्रार्थना-चक्र बनाये रहते हैं। यहाँ पर कई प्रकार के रंगीन कपड़े पहने हुए स्त्री, पुरुषों के नृत्य-गीत आदि दर्शनीय और श्रवणीय होते हैं। विशेष रूप से इस प्रकार के लोग मेलों में एकत्रित होकर सामूहिक संगीत और नृत्य करते हैं। व्यापारी लोग नाथूला या जेलापल घाटी से तिब्बत के साथ व्यापार करते हैं। दार्जिलिंग आने-वालों को यह स्थान अवश्य देखने चाहिए।

भूटान

संसार की दृष्टि से छुपा हुआ, हिमालय का एक प्रदेश भूतान आज तक निद्रित अवस्था में था। इसको भारतीय नक्शे में देखकर या नाम सुनकर ही लोग जानते थे। इस देश के निवासी मंत्र-तन्त्रों में विश्वास रखते हैं और भूत-विद्या को ही अपना धर्म मानते हैं। यहाँ यातायात के लिए उचित वाहन (सवारी) और मार्गों का अभाव है। आधुनिक सौकर्य (सुविधा) का तो इन्हें ज्ञान भी नहीं है। इस स्थान में भ्रमण करने के लिए घोड़े-खच्चर आदि ही सवारी के काम आते हैं। यहाँ के निवासी सरल और दयालु होते हैं। बौद्ध होने पर भी भूत-प्रेतों में विश्वास करते हैं। हमारे पौराणिक ग्रन्थों में गंधर्व, किन्नर, गुह्यक, पिशाच और सिद्धों का जैसा वर्णन मिलता है वैसी ही यहाँ की स्थिति भी है। वहाँ अब तक चलनेवाले मन्त्र-तन्त्र ही इसका प्रमाण हैं।

भूटान हिमालय की पूर्वी ढलान पर है और वहाँ से भारत का मैदान साफ दिखाई देता है। इसमें बड़ी-बड़ी घाटियाँ हैं। गीचंगचोलिंग यहाँ की ग्रीष्मकालीन राजधानी है। भूटान की नदियाँ ब्रह्म-पुत्र में जा मिलती हैं। भूटान

में बहुत-से मैदान भी है और जगह-जगह झरने दिखाई देते हैं। भूटान जाने लिए दार्जिलिंग से सिक्किम होकर कालिमपोंग-भोसा रोड से पहुँचते हैं। ये लोग बड़े मेहनती होते है और कार्यकुशल भी, इसीलिए पहाड़ियों के किनारे किनारे की तमाम जमीन जोतकर इन्होंने वहाँ काफी खेती कर ली है। भू भारत, सिक्किम, नेपाल और तिब्बत को अपने यहाँ के टट्टू, कस्तूरी, मोटे कम्बल और ऊनी कपड़े आदि माल भेजता रहा है। यहाँ के लोग महायान बौद्ध धर्म उपासक है। भूटान में पारो नाम की एक प्रसिद्ध घटी है। भूटानी व्यापारी भ होते हैं और कलाकुशल भी। उनकी छोटी-मोटी दस्तकारी की चीजें चारो बड़े चाव से खरीदी जाती हैं। धीरे-धीरे भूटान में भी सड़कों का विस्तार रहा है और वहाँ स्कूल आदि खुल रहे हैं। कागटो चोटी २३२६० फीट ऊँची है

भूटान के लामाओं के मठ प्राचीन किलों के समान हैं। यहाँ रहनेवाले बुद्ध उपदेशानुसार शुद्ध आचरण और ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर तपश्चर्या करते हैं। इ मठों में स्त्रियों का प्रवेश वर्जित है। 'नरक' आदि स्थानों के सम्बन्ध में ि न रखनेवाले व्यक्ति भी यहाँ के वीभत्स चित्रों और नरक के दृश्यों को घबरा जायेंगे। इस भयानक हाहाकार के बीच तथागत की प्रशान्त मूर्ति दर्शनी है। कई स्थानों में इनके धर्म-गुरुओं और मृत व्यक्तियों के चित्र भी होते हैं। यह प्रदेश भारत में है फिर भी यहाँ तिब्बतियों के संस्कार ही अधिक पाये जा हैं। मार्ग की सुविधा न होने से यहाँ कोई नही जा सकता है, फिर भी हिमालय एक भाग के नाते यहाँ अवश्य जाना चाहिए। आजकल यहाँ भारत-सरकार क

किया जाता था किन्तु धीरे-धीरे यह प्रथा घटती जा रही है। दवाखाने खुल रहे हैं। सेना विभाग की सहायता तो हर समय पड़ती है।

भारत के समान भूटान भी कृषि-प्रधान देश है। वहाँ का किसान भारत के किसान से अधिक खुशहाल है। वहाँ का किसान अधिक काम करता है और खाता भी अधिक है। यहाँ के मकान प्रायः तीन मंज़िल के होते हैं। सबसे नीचे की मंज़िल में गाय-घोड़े आदि पशु बांधे जाते हैं, बीच की मंज़िल में मनुष्य रहते हैं और सबसे ऊपर तीसरी मंज़िल में पूजा-मंदिर और एक-दो कमरे अतिथियों के लिए होते हैं।

भारत से सहायता—वहाँ की राजधानी पारो और पुनाखा में पहुँचने के लिए भारत-सरकार की सहायता से कई मोटर-मार्ग बननेवाले हैं। यह कार्य शीघ्रता से होगा और उससे यातायात की सुविधा हो जायगी। इससे भारत के साथ व्यापार आदि की भी अनुकूलता हो जायगी। यह मार्ग पुंजेलिंग नगर से पारो तक १२० मील लम्बा होगा। आसाम के दरांग थाना से भूटान के तापिगांग तक १०० मील का दूसरा मार्ग होगा। ये दोनों मार्ग इसी साल तक पूर्ण हो जायेंगे। तीसरा मार्ग १४००० फीट से ऊँचे पर्वतों में से ३०० मील तक घाटियों के मध्य होगा। इसके अतिरिक्त पुनाखा राजधानी से लेकर तिंदु, तोंग्सा घाटी होते हुए 'पारो' और 'तासिगांग' इन दोनों नगरों के मध्य सम्पर्क स्थापित करानेवाली योजना बड़ी महत्त्वपूर्ण है। इस कार्य के लिए वहाँ की जनशक्ति के न मिलने से वहाँ बाहर के आदमी ले जाने पड़ते हैं, फिर भी वहाँ के महाराजा ने वहाँ के निवासियों के लिए यह नियम बनाया है कि—प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने भाग के मार्ग-निर्माण में तेईस दिन तक परिश्रम करेगा। इस कार्य के लिए भारत-सरकार अपने इंजीनियर और अन्य कई प्रकार की सहायता देती रहती है। हमारा भी यह कर्त्तव्य है कि हिमालय की सीमा में स्वतन्त्र कहलानेवाले इन छोटे-छोटे देशों को अन्य राष्ट्रों के दबाव से बचायें। इसीलिए भारत-सरकार सिक्किम, नैपाल, भूटान आदि को सहायता देती रहती है।

नेफा (ईशान्य सरहद एजेन्सी)

भारत के असली नक्शे (ब्रिटिश सरकार के समय का) को देखने से विदित होता है कि यह विशालकाय अखंड हिमालय पूर्व में लुशाई और मिस्मि पहाड़ों से लेकर पश्चिम में काराकोरम हिन्दूकुश तक १६०० मील फैला हुआ है। इस बृहद्

हिमालय रेंज में २४ हजार से २९०२८ फीट उँचाई तक के १४६ उन्नत f शिखर हैं। इसी प्रकार लद्दाख रेंज भी इससे कुछ न्यूनाधिकरूप से काश्मीर लेकर ब्रह्मपुत्र नदी जहाँ भारत में प्रवेश करती है वहाँ तक है। तिब्बत में कैलाश, ग्येंची, टेवललाण्ड्स, रेंले और चाइना के कुन-कुन तक कई छोटे हिम-शिखर फैले हुए हैं। ये सब शिखर पूर्व से पश्चिम मे फैले हुए स्पष्ट दि देते हैं। ये पर्वत पूर्व मे नेफा के अन्त मे जहाँ हिमालय समाप्त होता है वहाँ की सरहद से पहले ही दक्षिणोत्तर होकर फैले हुए है। लुसाई, मिस्मी, नागा आ कई पर्वत भारत और वर्मा की सीमा मे दक्षिणोत्तर रूप से ही है। इससे यह होता है कि १६०० मील लम्बा और २०० मील से भी अधिक चौड़ा f ‹ आसाम से काश्मीर तक एक ही अखण्ड पर्वत है। किन्तु नेफा में जो हिमालय भाग हैं उन्हे मिरि अबो और मिस्मि आदि प्रादेशिक नामो से पुकारते हैं। प्रकार अन्य प्रदेशों मे भी पीरपंजाल, धवलधारा शिवालिक, कुमायूँ, क - आदि कई नाम हैं। एक ही हिमालय के छोटे-छोटे हिस्से होने के कारण इन से नगराज को कोई हानि नही पहुँचती। पाठको को विदित हो गया होगा कि और काश्मीर भी हिमालय के अंग हैं अतः इनके नैसर्गिक सौन्दर्य से भी प्राप्त करना चाहिए। अन्तिम भाग में इन्ही का वर्णन किया जायगा। सरकार ने यहाँ भी नेपाल, सिक्किम और भूटान की तरह मार्ग-निर्माण का प्रारम्भ किया है। इस क्षेत्र मे घूमनेवालो को इन मार्गों के बन जाने पर, बोमf अलोंग, तेभ्रू, भीरो और कोरवो आदि स्थानों को देखने की सुविधा मिल जायग नील पर्वत पर कामाक्षादेवी का दर्शन करना होगा। असम का क्षेत्र

उत्तर में चीन, तिब्बत,पूर्व में चीन और वर्मा, पश्चिम में भूटान तथा दक्षिण में असम प्रान्त हैं। यह पहाड़ों और जंगलों का क्षेत्र है और पूरा क्षेत्र ही ऊँचा-नीचा (ऊबड़-खाबड़) है। ब्रह्मपुत्र में मिलनेवाली सुबनसिरी, भोरेलीडिबांग, लोहित आदि नदियों से 'उपूसी' पांच भागों में विभक्त है। इनके नाम कामेंग सुबनसिरी, सियांग, लोहित और तिरप है। उत्तर में १८-१९ हजार फीट ऊँचा शिखर होने पर भी १२,००० फीट उँचाई पर पार करने-योग्य स्थान हैं। अलोंग, जीरो, तेजू, बोमडिला तथा खेला पाँचों भागों के मुख्य स्थान हैं। तवाँग, अलांग, तेजू आदि स्थानों में बड़े बुद्ध-मंदिर देखने योग्य हैं। यहाँ पर कई भिक्षु रहते हैं। आजकल भारत-सरकार की सहायता से कई रास्ते, स्कूल, अस्पताल और औद्योगिक-शालाएँ यहाँ खोली गई हैं। इनसे हजारों की संख्या में ग़रीब लोगों को फायदा पहुँच रहा है। जमीन अच्छी होने से खेती-बगीचे भी लगाये गये हैं जिसमें कई प्रकार के फ़ल उपजते हैं। बकरी-भेड़ पालना भी मुख्य उद्योग है। आजकल कई संस्थाओं की ओर से सेवा आर्य आरम्भ हुआ है।

जन-जीवन—इस क्षेत्र की सभी जन-जातियाँ पहाड़ी हैं। उनमें तिब्बती, मोनपा, शेरदुकपन, मिजो, अका, खेपा, बंगनी-बाङफला, सुलुंग, तानिग मोया, निस्सी, मिरी, अपतानी, मिस्मी, खंपा, मेम्बा, पद्म, ईद्रू, चुलिकटा, खंपती आदि कई विचित्र जातियों के लोग रहते हैं। ब्रह्मपुत्र घाटी में रहनेवाले खमती लोग स्थानीय समुदाय के हैं। लोकगीत और नृत्य के लिए उनके अलग-अलग क्लब हैं। ब्रह्मचारी क्लब में अविवाहित लोग रहते हैं। इनका काम रात में पहरा देना आदि है। इन भिन्न-भिन्न जातियों के अनुसार यहाँ कई बोलियाँ बोली जाती हैं। कुल लगभग तेंतालीस बोलियाँ हैं, लेकिन लिपिबद्ध कम हैं। इसलिए यहाँ सबको देवनागरी लिपि सिखाने का प्रबन्ध हो गया है। बाहरी दुनिया से इनका सम्बन्ध कम होने के कारण ये शांत-स्वभाव के लोग हैं। ये ५,००० से १२००० फीट तक की उँचाई पर बने दो मंजिले मकानों में रहते हैं। बौद्ध मठों में तेजस्वी लामा लोग हजारों की संख्या में निवास करते हैं। इनके मठ और मंदिर देखने योग्य हैं। इस भाग में प्रवास करनेवालों को भारत-सरकार से इजाज़त लेकर जाना होगा इसलिए पूरी जानकारी शिलांग से मिलेगी।

अंतिम बात—'हिमालय-दर्शन' में हिन्दूकुश, काराकोरम से लेकर मिस्मी पर्वत तक के मुख्य स्थानों का साधारण वर्णन दिया गया है। पूरा विवरण न मिलने

के कारण पाठक इसी से सन्तुष्ट हो जायें। जिन स्थानों में मार्ग-निर्माण हो रहा यहाँ के निवासी शीघ्र ही सचेत हो जायेंगे और कई नये स्थानों का शोध भी जायगा। इस समय काश्मीर, पंजाब के कांगड़ा-कुल्लू हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्र॰ नेपाल, बंगाल, असम, आदि प्रदेशीय सरकारें अपने-अपने प्रदेश के हि सम्बन्धित भाग में मार्ग बना रही हैं। ४-५ साल के अन्दर ही ये मार्ग मोटर, ज आदि के चलने-योग्य हो जायेंगे, तब तक भारत के शत्रुओं को भी हटा दिया जायगा नेफा, लद्दाख, भूटान और नेपाल को भी चीनी शत्रुओं से बचाना भारतीय का कार्य हो गया है। भारत ही इन सबके पिता के समान है।

हिमालय के सम्बन्ध में अब तक जो कुछ प्राप्त हो सका है उन सब स्थानों विवरण यहाँ दिया गया है। इस पुस्तक में सम्पूर्ण हिमालय का और कैलाश-मान तक का वर्णन आ चुका है। उत्तराखण्ड के मुख्य यात्रा स्थान, हिल स्टेशन और कुण्ड, धोना लेक, लोकपाल, फूलों की घाटी आदि कई स्थानों का संक्षिप्त किया गया है। इसी प्रकार काश्मीर, कुल्लू-कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश, नेपा दार्जिलिंग, सिक्किम और नेफा आदि का भी वर्णन आया है। पांच भागों कुल मिलाकर लगभग ३५०-४०० स्थानों का वर्णन दिया गया है। इसमें पां भागों के अलग-अलग नक्शों के साथ अखण्ड हिमालय का नक्शा दिया गया है अतः कौन स्थान कहाँ है यह पहचानने में सुविधा होगी। मुख्य-मुख्य दृश्यों के भी इसमें दिये गये हैं। सम्पूर्ण हिमालय यात्रा के सम्बन्ध में अब तक इस प्रकार क सर्वांगसुन्दर और सचित्र पुस्तक कोई नहीं छपी है। यदि होती तो मैं इस के कार्य को अपने [illegible] में न लेता। भा[illegible]ीय [illegible] से भी [illegible] स

परिशिष्ट

हिमालय पर्वतारोहण

हिमालय पर्वत संसार में सबसे उन्नत और लम्बा चौड़ा है। आसाम में गिरमी से लेकर पश्चिम में काराकोरम पर्वत तक १६०० मील लम्बा, २०० मील चौड़ा हिमालय भारत के उत्तर भाग में दीवार की तरह खड़ा है। इसमें २४,००० से २६,०२८ फीट तक के १४६ उन्नत हिम शिखर हैं। इनमें ७४ शिखर २४,००० फीट के, ४८ शिखर २५,००० फीट के, १६ शिखर २६००० फीट के, ५ शिखर २७,००० फीट के, और ३ शिखर २८,००० फीट के हैं। इन सबसे ऊँचा माउण्ट एवरेस्ट २६०२८ फीट है और दुनिया के पर्वत शिखरों में उच्चतम है। ये सब चोटियां सदा वर्फ से ढँकी रहती हैं और अपने-अपने वैशिष्ट्य से संसार के पर्वतारोहियों को आह्वान करती हैं।

प्रति वर्ष हजारों पर्वतारोही इन चोटियों पर चढ़ने के विचार से आरोहण की सम्पूर्ण सामग्रियों के सहित यहां आते रहते हैं। उनमें से भी बहुत कम लोग मुख्य-मुख्य चोटियों पर मुश्किल से चढ़ पाते हैं और अधिकांश विफल होकर वापस चले जाते हैं। कई साहसी वीर तो वहीं से स्वर्ग सिधार जाते हैं। इन चोटियों पर चढ़ना असाधारण साहस का काम है। व्यक्तिगत रूप से या अपने दल के सहित कई साहसी वीर इन दैत्याकार शिखरों पर चढ़कर अपना झण्डा गाड़कर अपना और अपने राष्ट्र का नाम अमर कर देते हैं। उनका ऐसा करना स्वाभाविक भी है। इस साहस के कार्य में कितने दल सफल हुए और उनके नायक कौन-कौन थे उसका वर्णन भी आगे दिया जायगा। इसके साथ ही तेनसिंह और हिलेरी ने किस तरह अन्तिम विजय प्राप्त की इसका भी निर्देश करूँगा। तेनसिंह और हिलेरी ने एवरेस्ट पर भारतीय तथा तीन और झण्डे चढ़ाकर विश्व को चकित कर दिया था। इस प्रकरण से हिमालय यात्रा और पर्वतारोहण के स्वरूप, उद्देश्य और अन्तिम सिद्धि का भेद स्पष्ट हो जायगा। इसी उद्देश्य से यह प्रकरण 'हिमालय दर्शन' के साथ दिया गया है।

भारतीय संस्कृति का मूल हिमालय-पर्वत से ही प्रारम्भ होता है। पुराने ऋषि मुनियों से लेकर अब तक के साधकों के लिए जप, तप, योगाभ्यास और परम (के चिन्तन के लिए यह स्थान प्रसिद्ध है। जिस प्रकार स्वर्गारोहण करनेवाले अन्त में इसी में समा गये थे, उसी तरह हम में से भी कई चाहते हैं। कई लोग बदरी केदार, कैलाश, मानसरोवर, शारदा, अमरनाथ, पशुपतिनाथ और परशुराम जैसे पवित्र तीर्थक्षेत्रों के दर्शनार्थ यात्रा करते हैं और भावनावश इन स्थानों घूमते हैं। इसी प्रकार सत्संग और एकान्त-साधना के लिए भी कई लोग हि की शरण में आते हैं। पर्वतारोहण इससे भिन्न है। यद्यपि यात्रा में भी सहनशी और साहस आवश्यक है फिर भी दोनों के सिद्धान्त व लक्ष्य अलग-अलग औ स्वतन्त्र हैं। चिरकाल से कितने ही पर्वतारोही हिमालय के उन्नत शिखरों पर कर अपनी कीर्ति दुनिया में फैलाना चाहते रहे हैं। अब इसके लिए दार्जिलिंग एक स्कूल भी खोला गया है वहाँ पर्वतारोहण की शिक्षा दी जाती है। दुनिया के लोग इस विद्या के सीखने के लिए यहाँ आते हैं। कई लोग मुझसे पूछते हैं ि गोस्वामीजी, आप हिमालय में कितने ऊँचे चढ़े थे। इनके लिए मेरा इतना ही होता है कि यात्रा और पर्वतारोहण भिन्न-भिन्न विषय हैं, किन्तु वे इतने से इसकी भिन्नता को नहीं समझते हैं। इसीलिए पर्वतारोहण कब से प्रारम्भ हु इसके सम्बन्ध में इस विषय को भी स्पष्ट करूँगा। यात्रा के सम्बन्ध में तो 'ि दर्शन' के पाँच भागों में यथेष्ठ कहा गया है। अब केवल पर्वतारोहण के में लिखकर इनकी भिन्नता को स्पष्ट करने का प्रयास करूँगा।

ि यात्रियों से ि प्रकार

है ही। यदि पर्वतारोहण की शिक्षा मिली हो तो अच्छा है। इतना सब कराने पर भी हिम की वर्षा से या हिम के गिरने से या वायु आदि के अनुकूल न होने से कई वार खतरे में पड़कर वापस लौटना पड़ता है और कई वार हिम में फँसकर मरना भी पड़ता है। इसलिए सम्पूर्ण तैयारी के साथ भी मृत्यु के साथ संघर्ष करते हुए आगे बढ़ना होता है। आजकल इसके लिए काफ़ी अनुभव और साधन-सामग्री प्राप्त हो जाती है जिससे कम मरते हैं। कई अखबारी कीड़े जिन्हें यहाँ का बिलकुल अनुभव नहीं होता, कहते हैं कि आजकल तो दक्षिण ध्रुव की यात्रा भी हो चुकी है, गागारिन जैसे व्यक्ति अन्तरिक्ष के कई चक्कर लगाकर आ गए हैं और चन्द्रलोक पहुँचने के लिए कई प्रयत्न हो रहे हैं अतः इन पर्वतों पर चढ़ना कौन-सी बड़ी बात है। किन्तु वे लोग यह नहीं समझते हैं कि इन दोनों प्रकार के कार्यों के साधन भिन्न हैं। पर्वतारोहण में निश्चित स्थान पर पहुँचने के लिए समस्त भार को अपनी पीठ पर लेकर बर्फ में चढ़ते हुए और स्थान-स्थान पर कैम्प डालते हुए चलना पड़ता है। वहाँ के वातावरण की प्रतिकूलता का कई दिनों तक सामना करना पड़ता है। इसलिए पर्वत पर चढ़ना और राकेट में उड़ना समान बल का कार्य नहीं है। पर्वतारोहियों के सम्बन्ध में मैं कुछ इतिहास आगे लिखूंगा जिससे पाठकों को उनकी बहादुरी का परिचय मिल जायगा। एवरेस्ट पर आरोहण करने के लिए कई सालों के सतत प्रयत्न से केवल एक बार ही सफलता मिली है अतः उनका साहस, शौर्य और अनुभव प्रशंसनीय है। यात्रा से यह कई गुणा कठिन कार्य है, साहसी वीरों का काम निसर्ग के साथ लड़ाई के समान है।

एवरेस्ट-आरोहण का प्रयत्न

इस कार्य में इंग्लैण्ड की 'रायल ज्योग्राफ़िकल सोसाइटी' और 'एलफ़ाइन क्लब' इन दो संस्थाओं ने भौगोलिक, आर्थिक और खोज सम्बन्धी सहायताएँ प्रदान की हैं। इन दोनों संस्थाओं ने मिलकर एवरेस्ट पर चढ़ने के लिए तथा अन्वेषण के लिए एक मण्डल स्थापित किया। १८९३ ई० में सभी पर्वतारोहियों ने फ्रान्सिस नामक प्रसिद्ध पर्वतारोही के नेतृत्व में इस उन्नत शिखर पर चढ़ने की योजना बनाई, किन्तु १९०८ तक प्रयत्न करने पर भी इस योजना में सफलता नहीं मिली। पुनः इन बातों से न घबराते हुए १९२१ ई० में हावर्डब्री के नेतृत्व में एक दल भारत के लिए रवाना हुआ। उस समय ऐसा विश्वास था कि इस पर्वत पर

तिब्बत की तरफ से ही चढा जा सकता है इसलिए वहाँ के धर्मराज लामा से लेनी पड़ी। इस दल में एक भूगर्भशास्त्री, एक सर्वेयर, एक डाक्टर और एक निक थे। ये सभी अच्छे पर्वतारोही थे। ता० १८-५-१९२१ को ये लोग दार्जि से चले किन्तु इनके समान ढोनेवाले खच्चर थोड़े ही दिनों में मर गये और मान भी बदल गया। फिर भी ये लोग तिस्ता घाटी पार करके किसी तरह के मैदान में पहुँच गये। वहाँ बौद्धमठ के लामाओं ने इनका स्वागत किया। में कई लोगों को दस्त की बीमारी लग गई जिसमें वैज्ञानिक डाक्टर केल्लाम शिकार होकर कैलाश सिधार गये। फिर भी इस दलवालों ने उत्तर की चढ़ने का एक मार्ग ढूँढ निकाला तथा कई प्राणियों और वनस्पतियों की खोज उस समय एकदम वर्षा शुरू होने के कारण इन लोगों को वापस लौटना पड़ा।

आधुनिक सामग्रियों के साथ दूसरा दल

सन् १९२२ ई० में जनरल जी० सी० ब्रूसके नेतृत्व में मेलेरी, मार्सहेड, शफोर्ड डा० समरवेल, फिंच और कर्नल नोयेल आदि तेरह प्रसिद्ध पर्वतारोही ये सब उत्तर ध्रुव की यात्रा में उपयोग की हुई आधुनिक सामग्री के साथ चले दार्जिलिंग पहुँचकर उन्होंने ३५० किराये के खच्चर लिए और अप्रैल में सब के साथ चलकर 'रोनबक घाटी' में पहुँचे। वहाँ पर १६५०० फोट की ऊँचाई प्रथम शिविर स्थापित करके सब सामान ठीक से रख लिया। वहाँ से आगे १७८ फीट पर दूसरा कैम्प और १९८०० पर तीसरा कैम्प डाल दिया गया। यही से

सका। आखिर कुलियों को यहीं से चौथे कैम्प में भेज दिया क्योंकि वे सब सर्दी की बीमारी से ग्रस्त थे। बाकी लोगों ने वहाँ पर जितनी जगह थी उसी में कैम्प डाल दिया। आँधी ज़ोर की चल रही थी अतः तम्बू के ऊपर पत्थर रख दिये गये थे और वे लोग अपने जूते सिरहाने रखकर चमड़े की थैलियों में सो गये।

साहस और प्रयत्न—सारी रात हिम की आँधी जोरों से चलती रही जिससे रात-भर नींद नहीं आई। सवेरे कॉफी पीकर फिर चलने के लिए तैयार हुए। १०० गज जाने में ही मार्सहेड के हाथ-पैर टेढ़े हो गए और उन्हें तम्बू में भेज दिया गया। बाकी सब साहस के साथ २६,९८५ फ़ीट तक चढ़ गये। अब वापस आने के लिए भी शक्ति की आवश्यकता थी किन्तु सब थक गये थे और प्राणवायु भी खत्म हो गई थी। अतः उन्होंने वहाँ पर थोड़ा विश्राम करने के बाद वापस लौटने का निश्चय किया। अँधेरा होने से पहले ही बीमारों के साथ चौथे कैम्प तक पहुँचना था लेकिन चढ़ने की अपेक्षा उतरना कठिन हो गया। ज़रा-सा फिसलने पर पाताल में पहुँच सकते थे। इसलिए एक हिम कुल्हाड़ी को गाड़कर उस पर रस्सी बाँधकर उसी के सहारे किसी तरह चल रहे थे, एकदम बीच में एक खड्डा आ गया। पहले एक आदमी, हिम सख्त है या नहीं, इस बात के परीक्षण के लिए कूदा, बाद में सब कूदे और पार हो गये। उस समय रात के १० बज चुके थे। प्रकाश के लिए मोमबत्ती जलाई तो वह भी बुझ गई। अतः अन्दाज से ही हाथ फेरते हुए चौथे कैम्प तक पहुँचे। वहाँ सबने चाय तैयार करके पी। उनमें से अकेले समरवेल ने ही १६ कप चाय पी।

प्रकृति से पराजय—इस दल के अधिक लोग हार चुके थे किन्तु ४ दिन बाद इनमें से ब्रूस और फिंच, तेजबीर नामक एक शेरप्पा के साथ चल दिये। इस बार ये प्राणवायु सिलेण्डर को अपनी पीठ पर बाँधकर चले। आँधी इतनी ज़ोर से चल रही थी कि तम्बू भी उड़ जाते किन्तु उस समय सबने एक साथ तम्बू से लटककर उसको किसी प्रकार उड़ने से बचाया। उस दिन सब हिम से भीग गये और बिना खुराक के ही बिताया। फिर भी तीसरे दिन साहस के साथ चढ़ाई की और जब २७,३०० फीट की ऊँचाई पर पहुँचे तो ब्रूस गिर गये किन्तु ऑक्सीजन की सहायता से उन्हें बचा लिया गया। सब सामान के समाप्त हो जाने से वापस लौटना पड़ा और बारिश भी शुरू हो गई।

सात व्यक्तियों का बलिदान—इसके बाद ३ जून को एक दल समरवेल के

नेतृत्व में चला। इनके साथ मैलेरी, आफर्ड और १४ कुली थे। ऊपर जाते हुए एक हिम-प्रवाह मिल गया इसमें से गुजरते समय सब फँस गये और प्रयत्न करने पर भी बचने की आशा न रही। उसी समय समरवेल सिर नीचे करके गिर गया। कुलियों में भी केवल ५ ही दिखाई दे रहे थे, बाकी सब के सब ६०फीट नीचे गिर गये थे। बचाने की कोशिश करने पर भी सात आदमी मर गये। बाकी सब लोग बर्फ में फँस गये अतः और किसी को अब ऊपर जाने का साहस न हुआ इसलिए बाकी लोग वापस आ गये।

मानव का अदम्य साहस—हिमालय-आरोहण में प्रकृति के साथ युद्ध करते हुए कई लोगों की मृत्यु हो गई, किन्तु मानव ने हार नहीं मानी। १९२४ में फिर एक दल सी०मी० ब्रूस के नेतृत्व में एवरेस्ट आरोहण के लिए चला। सर्दी बढ़ जाने के कारण तीसरे कैंप तक पहुँच इन्हें वापस लौटना पड़ा। इनमें से कई लोग २६,८००फीट तक चढ़कर लौटे। अन्त में दो व्यक्ति तो २८,२०० फीट पर पहुँच गये किन्तु आँखों की खराबी से उन्हें भी लौटना पड़ा। पुनः वायु के अनुकूल होने पर ६ जून को मैलेरी और आयरविन दोनों ने २५,००० फीट से आरोहण प्रारम्भ किया और २७,००० फीट पर कैंप डाल दिया। इन दोनों का साहस देखने ... ने ये दोनों फिर

था परन्तु प्रयत्न करने पर भी विफल रहे। सन् १९३८ में टेलमन के नेतृत्व में एक पार्टी गई थी जिसमें वे तेनसिंह को सदस्य के रूप में साथ ले गया था। ये लोग अप्रैल के पहले सप्ताह में ही रम्बक घाटी पहुँच गये। सर्दी अधिक होने के कारण हिमालय के रमणीय दृश्यों को देखते हुए जून तक यहीं ठहर गये। बाद में इन्होंने २७ हज़ार २ सौ फीट चढ़कर पहला शिविर लगाया। यहाँ तक सामान पहुँचाने में ही बहुत-से बीमार हो गये थे। आगे हवा अनुकूल न होने से इन्हें वापस लौटना पड़ा। इसके बाद १९४८ में श्री बनर्जी, १९४९ में रिप्ले, १९५० में होस्टन और टेलमन तथा १९५१ में पुनः एरिकसिफटन आदि कई साहसी लोगों के प्रयत्न करने पर भी हिमालय नहीं झुका और उसने सबको अपने चरणों में झुका दिया।

प्राणवायु (ऑक्सीजन) के बिना २८, २१० फीट की चढ़ाई—पर्वतारोहण के ये प्रयत्न निरन्तर आगे चलते रहे। १९५२ में एक प्रयत्न गर्मियों में और एक सर्दियों (अक्तूबर) में हुआ था जिसमें पहले दल का नायक स्विटज़रलैण्ड का रेमण्ड लैम्बर्ट था। उसी समय बिना प्राणवायु के सहारे २८,२१० फीट तक चढ़ने वाले साहसी तेनसिंह का परिचय हुआ। "हाथ में आई हुई खीर की कटोरी मुँह तक नहीं पहुँच पाई।" उस समय यदि गरम पेय मिलता तो वह पूर्णतः ऐवरेस्ट पर आरोहण कर लेता। अब तक बिना प्राणवायु के इतनी उंचाई तक कोई भी नहीं पहुँच पाया था। उसकी यह सफलता आगे आनेवाली विजय की द्योतक थी। अक्तूबर में जो दल चला था उसके नायक स्विटज़रलैण्ड के श्री आर० गेब्री थे। इनके साथ भी तेनसिंह गया, किन्तु सर्दी बढ़ जाने के कारण २४,००० फीट की उँचाई से ही सब वापस लौट आये। इस बार तेनसिंह की आरोहण कला को देखकर सब चकित हो गये। सबको यह विदित हो गया कि यह एक असाधारण आरोही है और इसे साथ लेना कीर्ति और सफलता की ओर बढ़ना है। अन्त में कर्नल हण्ट साहब इसे एक सदस्य के तौर पर अपने साथ ले गया और उन्होंने विजय प्राप्त की। तेनसिंह आकाश में पतंग की तरह चढ़ता देखा गया।

अन्त में हिमालय पर विजय—ऐवरेस्ट विजेता तेनसिंह नोर्के, विजेता नाम-सम्वत्सर में ऐवरेस्ट पर विजय-पताका फहराकर एवरेस्ट विजेता के नाम से दुनिया में प्रसिद्ध हो गया। इसका मूल स्थान नैपाल है। जिस समय तेनसिंह १७ वर्ष का था उस समय इसके माता-पिता जीवन-निर्वाह के लिए दार्जिलिंग में आकर

एक गाँव में बस गये थे। उसी समय से तेनसिंह को वहाँ के पहाड़ों आनन्द आता था। इसी से इनके माता-पिता ने यह सोच लिया दिन हिमालय का शेर बनेगा। १९३५ से ही उनका यह स्वप्न बदलता हुआ दिखाई देने लगा। श्री एरिकशिफटन के आरोहण पहले कुली बनकर गया। पहाड़ों पर चढ़ने का अच्छा अभ्यास होने १९३८ में टलमन के दल में २३,००० फीट की ऊँचाई तक चढ़ा था स्विस, इटालियन, फ्रेंच और भारतीय इस दल में जाकर २५,० रेमण्ड लैम्बर्ट के साथ २८,२१० फीट चढ़े।

श्री तेनसिंह की विजय—युद्ध समाप्त होने के सात साल ने आरोहण कार्य प्रारम्भ किया। उनमें स्विटजरलैण्ड के रेमन से चलने वाले दल में तेनसिंह ने ही २८,२१० फीट चढ़कर अपने आश्चर्यान्वित कर दिया। इससे सबको विदित हो गया कि एक को पदाक्रान्त करेगा। उसी साल अक्तूबर में शब्रिल चवले के गया था। इनके सम्बन्ध में चवले कहते हैं कि—"जैसे पतंग चढ़ जाता है उसी प्रकार तेनसिंह भी पर्वतों पर चढ़ता है।

... ...खाई देता।" इसके अनुसार कर्नल

एक गाँव में बस गये थे। उसी समय से तेनसिंह को वहाँ के पहाड़ों
आनन्द आता था। इसी से इनके माता-पिता ने यह सोच लिया
दिन हिमालय का शेर बनेगा। १९३५ से ही उनका यह स्वप्न
बदलता हुआ दिखाई देने लगा। श्री एरिकसिफटन के आरोहण
पहले कुली बनकर चला। पहाड़ों पर चढ़ने का अच्छा अभ्यास होने
१९३८ में टेलमन के दल में २३,००० फीट की ऊँचाई तक चढ़ा था
स्विस, इटालियन, फ्रेंच और भारतीय इस दल में जाकर २५,०
रेमंड लेम्बर्ट के साथ २८,२१० फीट चढ़े।

श्री तेनसिंह की विजय—युद्ध समाप्त होने के सात साल
ने आरोहण कार्य प्रारम्भ किया। उनमें स्विटजरलैण्ड के रेमन ले
चलने वाले दल में तेनसिंह ने ही २८,२१० फीट चढ़कर अपने
आश्चर्यान्वित कर दिया। इससे सबको विदित हो गया कि ए
को पदाक्रान्त करेगा। उसी साल अक्तूबर में गेब्रिल चवले के
गया था। इनके सम्बन्ध में चवले कहते हैं कि—"जैसे पतंग
चढ़ जाता है उसी प्रकार तेनसिंह भी पर्वतों पर चढ़ता है।
दिखाई देता।" इसके अनुसार कर्नल
बनाय